अनुक्रम

1. कबीर दास....3
2. लाल नाथ कुंभनाथ....4
3. बाबा मलूक दास....8
4. संत सुंदर दास....11
5. बाबा-जग जीवन दास....13
6. संत पलटूबनिया....17
7. संत रज्जब दास....19
8. संत दादू दयाल....22
9. सहजो बाई....26
10. दया बाई....28
11. धनी धर्मदास....32
12. बाबा हरिदास....39
13. संत भर्तृहरि....41
14. संत बाबा शेख फरीद....43
15. संत दादूदयाल....45
16. सदाशिव स्वामी....47
17. संत भीखा दास....49
18. दरिया दास....52
19. दरियाशाह (बिहार वाले)....55
20. ऋषि शांडिल्य....58
21. ऋषि नारद....61
22. आदि शंकरा चार्य....66
23. गुरू नानन देव....68
24. भगवान गौतमबुद्ध....71

25. भगवान कृष्ण 76
26. भगवान महावीर 81
27. संत रैदास 85
28. अष्ठावक्र 87
29. मीरा बाई 91
30. संत चरण दास 99
31. वाजिद शाह 104
32. बाबा गोरखनाथ 109
33. सरहपा-तिलोमा 114
34. यारि 120
35. दुल्हन 124
36. गूलाल 127

कबीर दास

संत कबीर– पूर्णिमा का चाँद

कबीर, संत तो हजारों हुए हैं, पर कबीर ऐसे है जैसे पूर्णिमा का चाँद—अतुलनीय, अद्वितीय, जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीया जला दे, ऐसा यह नाम है। जैसे मरुस्थल में कोई अचानक मरूद्यान प्रकट हो जाए, ऐसों अद्‌भुत और प्यारे उनके गीत हे।

कबीर के शब्दों का अर्थ नहीं करूंगा। शब्द तो सीधे-सादे है। कबीर को तो पुनरुज्जीवित करना होगा। व्याख्या नहीं हो सकती उनकी। उन्हें पुनरुज्जीवन दिया जा सकता है। उन्हें अवसर दिया जा सकता है। वे मुझसे बोल सकें। तुम ऐसे ही सुनना जैसे यह कोई व्याख्या नहीं है। जैसे बीसवीं सदी की भाषा में, पुनर्जन्म है। जैसे कबीर का फिर आगमन है। और बुद्धि से मत सुनना। कबीर का कोई नाता बुद्धि से नहीं। कबीर तो दीवाने है। और दीवाने ही केवल उन्हें समझ पाए और दीवाने ही केवल समझ पा सकते है। कबीर मस्तिष्क से नहीं बोलते है। यह तो ह्रदय की वीणा की अनुगूँज है। और तुम्हारे हृरदय के तारे भी छू जाएं,तुम भी बज उठो, तो ही कबीर समझे जा सकते है।

यह कोई शास्त्रीय, बौद्धिक आयोजन नहीं है। कबीर को पीना होता है, चुस्की-चुस्की। जैसे कोई शराब पीए, और डूबना होता है। भूलना होता है अपने को, मदमस्त होना होता है। भाषा पर अटकोगे, चुकोगे; भाव पर जाओगे तो पहुंच जाओगे। भाषा तो कबीर की टूटी-फूटी है। वे पढ़े-लिखे थे। लेकिन भाव अनूठे है, कि उपनिषद फीके पड़ें,कि गीता, कुरान और बाईबिल भी साथ खड़े होने की हिम्मत न जुटा पाएँ। भव पर जाओगे तो....।

भाषा पर अटकोगे तो कबीर साधारण मालूम होंगे। कबीर ने कहा भी—लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। नहीं पढ़ कर कह रहे हे। देखा है आंखों से। जो नहीं देखा जा सकता उसे देखा है। और जो नहीं कहा जा सकता उसे कहने की कोशिश की है। बहुत श्रद्धा से ही कबीर समझे जा सकते है। शंकराचार्य को समझना हो, श्रद्धा की ऐसी कोई जरूरत नहीं। शंकराचार्य का तर्क प्रबल हे। नागार्जुन का समझना हो श्रद्धा की क्या आवश्यकता, उनके प्रमाण, उनके विचार,उनके विचार की अद्‌भुत तर्क सरणी—वह प्रभावित करेगी। कबीर के पास न तर्क है, न विचार है, न दर्शनशास्त्र है। शास्त्र से कबीर का क्या लेना देना।

कहा कबीर ने—''मसि कागद छुओ नहीं।''

कभी छुआ ही नहीं जीवन में कागज, स्याही से कोई नाता ही नहीं बनाया। सीधी-साधी अनुभूति है; अंगारे है, राख नहीं। राख को तो तू सम्हाल कर रख सकते हो। अंगारे को सम्हालना हो तो श्रद्धा चाहिए। तो ही पी सकोगे यह आग। और एक घूंट भी पी ली तो तुम्हारे भीतर भी—अग्नि भभक उठे—सोयी अग्नि जन्मों–जन्मों की। तुम भी दीए बनों। तुम्हारे भीतर भी सूरज ऊगे। और ऐसा हो, तो ही समझना कि कबीर को समझा, ऐसा न हो तो समझना कि कबीर के शब्द पकड़े, शब्दों की व्याख्या की, शब्दों के अर्थ जाने; पर वह सब ऊपर-ऊपर का काम है। जैसे कोई जमीन को इंच दो इंच खोदे और सोचे कि कुआँ हो गया। गहरा खोदना होगा कंकड़-पत्थर आएँगे। कुडा-कचरा आएगा। मिट्टी हटानी होगी। धीरे-धीरे जल स्त्रोत के निकट पहुंचोगे।

–ओशो

न कानों सुना न आंखों देखा, प्रवचन—11

लाल नाथ कुंभनाथ

लाल नाथ कुंभनाथ : (गुरु द्वार जन्म)

श्री लाल नाथ के जीवन में बड़ी अनूठी घटना से शहनाई बजी। संतों के जीवन बड़े रहस्य में शुरू होते है। जैसे दूर हिमालय से गंगो त्री से गंगा बहती है। छिपी है घाटियों में, पहाड़ों में, शिखरों में। वैसे ही संतों के जीवन की गंगा भी, बड़ी रहस्यपूर्ण गंगोत्रियों से शुरू होती है। आकस्मिक, अकस्मात, अचानक—जैसे अंधेरे में दीया जले कि तत्क्षण रोशनी हो जाये। धीमी-धीमी नहीं होती संतों के जीवन की यात्रा शुरू। शनै:-शनै: नहीं। संत छलांग लेते हे।

जो छलांग लेते है, वही जान पाते है। जो इंच-इंच सम्हाल कर चलते है, उनके सम्हालने में ही डूब जाते हे। मंजिल उन्हें कभी मिलती नहीं। मंजिल दीवानों के लिए है। मंजिल के हकदार दीवाने है। मंजिल के दावेदार दीवाने हे।

''लाल'' दीवानों में दीवाने है। उनके जीवन की यात्रा, उनके संतत्व की गंगा बड़े अनूठे ढंग से शुरू हुई। और तो कुछ दूसरा परिचय नहीं है। न देने की कोई जरूरत है; हो तो भी देने की कोई जरूरत नहीं है। कहां पैदा हुए, किस गांव में, किस ठांव में, किस घर-द्वार में,किन मां-बाप से—वे सब बातें गौण है और व्यर्थ है। संतत्व कैसे पैदा हुआ,बुद्धत्व कैसे पैदा हुआ? राजस्थान में जन्मे इस गरीब युवक के जीवन में अचानक दीया कैसे जला; अमावस कैसे एक दिन पूर्णिमा हो गई—बस यही परिचय है। वही असली परिचय है। न तो संत की जात पूछना, न संत पाँत पूछना। पूछना ही मत सब व्यर्थ की बातें है। पता-ठिकाना मत पूछना। उसका पता तो एक है—राम। उसका जन्म भी वहीं, उसकी मृत्यु भी वहीं। उसके जीवन का सारा उदधोष वहीं है।

लेकिन संतत्व की किरण कैसे उतरी, पहली किरण कैसे उतरी। फिर सूरज तो चला आता है। किरण के पीछे-पीछे चला आता है। मगर पहली किरण का उतरना जरूर समझने योग्य है। क्योंकि उसकी पहली किरण की तुम तलाश में हो।

और तुम्हारे पास से भी कहीं ऐसा न हो कि किरण आये और गुजर जाये और तुम पकड़ भी न पाओ; किरण आये और नाचती गुजर जाये और तुम्हें उसके पगों में बंधे घुंघरू सुनाई न पड़ें; किरण आये और शहनाई बजाय और तुम बहरे रह जाओ; किरण आये और तुम आँख बंद किये बैठे रहो।

.....ओर किरण सदा अकस्मात आती हे। अनायास आती हे। किरण हमेशा अतिथि है, बिना तिथि बताये आती है। न कोई खबर देती है, न कोई पूर्व-आगमन की सूचना देती है। कब द्वार पर दस्तक दे देगा परमात्मा, कोई भी नहीं जानता। उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। सिर्फ इस जगत में एक चीज की भविष्यवाणी नहीं हो सकती, वह है परमात्मा और तुम्हारा मिलन। और सब तो कार्य-कारण में बंधा है। इसलिए उसकी भविष्य वाणी हो सकती है। सिर्फ परमात्मा प्रसाद है, कार्य कारण के पार है; इसलिए उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती।

किसी ने सोचा भी न होगा कि लाल के जीवन में ऐसा परमात्मा का पदार्पण होगा। लाल गौना कराकर घर लौटते थे। संगी-साथी, बैंड-बाजे, रंग-रौनक, उत्सव की घड़ी थी। रास्ते में लिखमादेसर गांव पडा। वहां पर एक अनूठे संत थे कुंभ नाथ—परमहंस थे। न कोई धर्म की चिंता न कोई पंथ था। न कोई परंपरा की। धार्मिक थे, मगर किसी धर्म से बंधे हुए नहीं थे। लुटाते थे दोनों हाथ, जो दिया था परमात्मा ने। और जो लुटाता है, उसे परमात्मा और-और दिये जाता है। यह संपदा ऐसी है कि चुकती नहीं। रोको तो नष्ट हो जाती है। लुटाते रहो तो बढ़ती चली जाती है।

लौटते थे गौना कराकर,रास्ते में गांव पडा। सोचा कि दर्शन करते चलें। ऐसे संत के गांव से गुजर रहे है। जिसकी सुगंध दूर-दूर तक पहुंचने लगी थी। और निशचित उसे सुगंध के साथ लपटें भी थी। यह सुगंध फूलों की सुगंध नहीं है—लपटों की सुगंध हे, ज्वाला की सुगंध हे। संतत्व के साथ ही साथ क्रांति की आग भी जलती है। दूर-दूर तक कुंभनाथ की सुवास भी पहुंच रही थी। जो सुवास पहचान सकते थे। उन्हें सुवास मिल रही थी। जो सुवास नहीं पहचान सकते थे, परंपरा से बंधे हुए रूढ़िग्रस्त लोग थे। उन्हें बेचैनी हो रही थी। उनके पास आग पहुंच रही थी। सोचा, दर्शन करते चलें। और ऐसे संत का आशीर्वाद ले लेना उचित है। जीवन का प्रांरभ हो रहा है। विवाह हो रहा है। नई दुनिया में प्रवेश हो रहा है। कौन न संत के आशिष लेने चला जाये। पता नहीं था क्या आशिष मिलेगा। जब तुम संत के पास जाते हो तो अपने हिसाब से जाते हो। अपनी आकांशा, अपनी अभिलाषा .....। लेकिन संत जब आशिष देता है तो तुम्हारी अभिलाषाओं के हिसाब से नहीं देता। न तुम्हारी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है। संत तो वही देता है जो दे सकता है। कुड़ा-करकट नहीं देता, हीरे देता है। कंकड़ पत्थर नहीं देता जवाहरात देता है।

लाल को अब तक अपने 'लाल' होने का पता ही कहां था। अब तक अपने भीतर के हीरे की कोई पहचान थी। किसी ने चौंकाया भी न था। किसी ने जगाया भी न था, किसी ने पुकारा भी न था, चुनौती भी न दी थी। सोये-सोये जिंदगी गयी थी। और अब सोने का एक और बड़ा आयोजन हुआ जा रहा था। नींद की पूरी व्यवस्था हुई जा रही थी। मूर्च्छा, जिंदगी की आपाधापी अब पूरी तरह पकड़ने को थी। गये थे आशिष लेने, स्वभाविक—विवाह हो रहा है। नये जीवन का प्रारंभ है। इससे शुभ क्या होगा और कि किसी संत के आशीष की छाया मिले।

लेकिन वहां गये तो कुछ और ही हाल पाय। कुंभनाथ जीवित समाधि लेने की तैयारी कर रहे थे। गड्ढा खोदा जा चुका था। बस प्रवेश की तैयारी थी। अंतिम विदा-वेला...उन्होंने प्रसाद बांटा। सबको प्रसाद बांट चुका। लाल को भी प्रसाद मिला। और फिर समाधि में उतरने के पहले, बडी अनूठी बात कुंभनाथ ने कही। जो से पुकारा, चारों तरफ देखा और जोर से पुकारा और कहा—''और है कोई लेने हारा?''

प्रसाद तो बांट चुके थे। सभी ने ले लिया था। लाल भी ले चुके थे प्रसाद। अब यह किसी और ही प्रसाद की बात थी जो दिखाई नहीं पड़ती। जो लेने-देने में नहीं आती,जो हस्ता रित नहीं होता। मगर फिर भी छलाँगें लेता है, एक ह्रदय से दूसरे ह्रदय में उतर जाता है। हाथों-हाथ तो नहीं जाता, आत्माओं में जाता है। खड़े होकर उस गड्ढे पर, जिसमें जल्दी ही वे डूब जाने को हैं सदा को, उस मिट्टी में जिसमें मिल जाने को है—पुकारा जोर से: 'और है कोई लेने हारा?' लोग तो इधर-उधर देखने लगे। सबको प्रसाद मिल चुका था। कोई बचा भी न था। और प्रसाद भी न बचा था। न तो कोई लेनेवाला बचा था। न प्रसाद बचा था। यह किस प्रसाद की बात हो रही है?

हो गये होंगे विक्षिप्त, सोचा होगा लोगों ने। होंगे ही विक्षिप्त, नहीं तो कोई जीवित समाधि लेता है। आदमी जीने के लिए कितने आयोजन करता हे। मरता रहे तो भी जीता है। सड़ता रहे तो भी जीता है। कीड़े पड़ जाऐं शरीर में तो भी जीता है। कैंसर पकड़े, क्षयरोग हो, लूला हो, लँगड़ा हो, कोढ़ी हो, नालियों में पडा रहे—तो भी जीता है, तो भी जीना चाहता है, ऐसी जीवेषणा है, यह होगा ही आदमी विक्षिप्त, अपने हाथ से कब्र खोदी है। अपनी कब्र खोदी है, अपनी कब्र में समाने को जा रहा है। जरूर अब इसका मस्तिष्क बिलकुल खराब हो गया है।

प्रसाद बंट चुका, सभी को प्रसाद मिल चुका। न प्रसाद है पास, न कोई लेने वाला है अब और। तब यह आदमी चिल्ला रहा है कि ''और है कोई लेने हारा।''

लोग तो एक दूसरे की तरफ देखने लगे, लेकिन लाल पहुंच गये। हाथ भिखारी की तरह फैलाकर बैठ गये सामने। आंखों से आंसुओं की धार....। कुछ घटा, कुछ वैसा घटा, जैसा बुद्ध और महा काश्यप के बीच घटा की, कि बुद्ध लेकर फूल आये थे सुबह और बैठ गये थे फूल को देखते, ...। लोग थक गये। लोग प्रवचन सुनने आये थे। और ऐसा बुद्ध ने कभी भी न किया था कि हाथ में फूल लेकिर बैठ गये और उसी को देखते रहे और लोगों को भूल ही गये। खेर दो-चार मिनट बीते तो ठीक था, घड़ी बीतने लगीं, घंटा बीतने लगा। लोग बेचैन होने लगे, उद्विग्न होने लगे। यह कब तक चलेगी बात, यह समय बहुत लंबा मालूम होने लगा। यह बुद्ध को आज क्या हो गया है।

और तब महा काश्यप हंसा था। और जौर से हंसा था। खिलखिला कर हंसा था। और बुद्ध ने आंखे उठाई थीं और महा काश्यप को कहा थ कि आ, मेरे पास आ। तेरी मुझे तलाश थी। जिसकी मुझे तलाश थी, वह मिल गया। यह फूल ले। जो मैं शब्दों से दे सकता था वह मैंने दूसरों को दिया है। जो शब्दों से नहीं दिया जा सकता वह मैं तुझे देता हूं।

जैसा महा काश्यप ओ बुद्ध के बीच कुछ घटा था। जो देखनेवालों को दिखाई नहीं पडा था कि क्या बुद्ध ने दिया, क्या महा काश्यप ने लिया? सदिया बीत गयी है अब, पच्चीस सौ वर्ष बीत गये है, बुद्ध को प्रेम करनेवाले अब भी पूछते है, अब भी विचार करते है कि कौन सा हस्तांतरण हुआ था। फूल दिया था, वह तो दिखाई पडा था। मगर बुद्ध ने कहा: ''जो मैं नहीं दे सकता शब्दों से वह मैं तुझे देता हूं। जो मैं शब्दों से दे सकता था वह मैंने दूसरों को दे दिया है। जो शब्दों से नहीं दिया जा सकता वह मैं तुझे देता हूं। शब्दों के पार, शास्त्रों के पास,न कहा जा सके जो, अनिर्वचनीय है जो अव्याख्य है जो—वह क्या है, बुद्ध ने क्या दिया था महा काश्यप को? ''

लेकिन कम से कम बुद्ध ने फूल तो दिया था। कुंभनाथ और लाल के बीच तो फूल भी नहीं दिया-लिया गया। कुछ दिया ही लिया नहीं गया। लेकिन प्रसाद बरसा। शहनाई बजी। धूप खो गयी, प्राण शीतल हुए। संगीत जन्मा। लाल तो रूपांतरित हो गये—उस झुकने में ही रूपांतरित हो गये। लाल को पहली दफा अपने भीतर का लाल दिखाई पडा। पहली बार अपने भीतर के खज़ाने का अनुभव हुआ। जैसे इस सत्पुरुष की मौजूदगी में इसकी रोशनी में अंधरा टूटा। अपनी पहचान हुई आत्म परिचय हुआ, झुक गये चरणों में । मरते-मरते कुंभ नाथ एक दिया जला गये, एक ज्योति जला गये—एक मशाल। जाते-जाते पूछते है: ''और हे कोई लेने हारा?'' मिल गया एक लेन हारा, थे बहुत लोग। सैंकड़ो लोग मौजूद थे। मगर एक ने पुकार सुनी। एक ने हाथ फैला ये, एक ने झोली फैलायी। एक झुकने को राज़ी हुआ। तो जो झुका, वह भर गया। एक मिटने को राज़ी हुआ; तो जो मिटा, वह जन्म गया।

लाल की जिंदगी बदल गयीं। या यूं कहो, लाल का पहली दफा जन्म हुआ, जिन्दगी मिली। अब तक जैसे एक नींद थी; नींद भी क्या, दुःस्वप्न, फूल खीलें, कोयल बोली, अमावस मिटी, पूर्णिमा, आयी। अमृत बरसा। मृत्यु गयी। गया वह सब जिसे कल तक महत्वपूर्ण समझा था। और कल तक जिसकी कोई खबर न ली थी। उस तरफ आँख गयी। उसकी पहचान हुई। अमृत से संबंध जुड़ा। एकदम जैसे भभक उठे। ज्योतिर्मय हो गये। हजारों लोगों ने यह चमत्कार देखा था। जब उठे तो दूसरा ही व्यक्ति था; जब हाथ फैलाने बैठे थे तो कोई दूसरा ही व्यक्ति था। जो बैठा थ, एक साधारण-सा युवक था। जो अभी विवाह करवाकर लौट रहा है। संगी-साथी है, बैंड-बाजा है, बारात है....। तब उठे तो उन आंखों में कोई गहराई थी, जिसे मापने का कोई उपाय नहीं। उस चेहरे पर कुछ आभा भी, जो इस लोक की नहीं है।

मित्रों को तो बहुत हैरानी हुई। ईर्ष्या भी हुई होगी। चोट भी लगा होगी। मित्रों न ताने भी कसे। मित्रों ने कहा कि तब फिर विवाह ही क्यों किया। जब यही करना था तो दो दिन पहले कर लेते। जब संन्यस्त होना था, तो दो दिन पहले हो लेते। जब यह गैरिक रंग में रँगना था तो दो दिन पहले क्या बिगड़ा। विवाह क्यों किया?

जवाब था: ''बेहड़ा लिखिया न टलै दिया अंट बुलाए।''

लाल ने कहा: ''विधाता ने जो लिख दिया था, वह कैसे टल सकता हे। फेरे लिखना हो चुका था, सो फेरे हुए। फेरे बदे थे, सो फेरे हुए। जो होना था। सो हुआ। यह भी होना था। फेरों के बाद ही होना था, सो बाद में हुआ।

लेकिन जब वास्तविक क्रांति घटती है। तो उसके दूरगामी परिणाम होते है। नव वधू लाल में रूपांतरण को देखकर स्वयं भी रूपांतरित हो गयी। लाल भी डूब गये ध्यान में, नयी-नयी विवाहिता युवती भी डूब गयी ध्यान में। भूल गये दोनों संसार। गुरु जाते-जाते एक अपूर्व व्यक्ति को जन्म दे गये।

–ओशो

हंसा तो मोती चुगैं, प्रवचन—01

बाबा मलूक दास

भारत के संत-ओशो

राम दुवारे जो मरे-(बाबा मलूक दास)

बाबा मलूक दास, यह नाम ही ऐसा प्यारा है, तन मन-प्राण में मिसरी घोल दे। ऐसे तो बहुत संत हुए है, सारा आकाश संतों के जगमगाते तारों से भरा है। पर मलूक दास की तुलना किसी और से नहीं की जा सकती। मूलक दास बेजोड़ है। उनकी अद्वितीयता उनके अल्हड़पन में है—मस्ती में है, बेखुदी में। यह नाम मलूक का मस्ती का पर्यायवाची हो गया। इस नाम में ही कुछ शराब है। यह नाम ही दोहराओं तो भीतर नाच उठने लगे।

मलूक दास ने तो कवि थे, न दार्शनिक है, न धर्मशास्त्री है। दीवाने है। परवाने है । और परमात्मा को उन्होंने ऐसे जाना है जैसे परवाना शमा को जानता है। यह पहचान बड़ी और है। दूर-दूर से नहीं, परिचय मात्र नहीं है वह पहचान—अपने को गंवा कर, अपने को मिटा कर होती है। राम दुवारे जो मरे। राम के द्वारे पर मर कर राम को पहचाना है। कवि हो जाये। लेकिन मलूक की मस्ती सस्ती बात नहीं है। महंगा सौदा है। सब कुछ दांव पर लगाना पड़ता है। जरा भी बचाया तो चूके। रति भी बचाया तो चूके। निन्यानवे प्रतिशत दांव पर लगाया और एक प्रतिशत भी बचाया तो चूक गए। क्योंकि उस एक प्रतिशत बचाने में ही तुम्हारी बेईमानी जाहिर हो गयी। निन्यानवे प्रतिशत दांव पर लगाने में तुम्हारी श्रद्वा जाहिर न हुई। मगर एक प्रतिशत बचाने में तुम्हारा काइयाँपन जाहिर हो गया। दांव तो हो तो सौ प्रतिशत होता है; नहीं तो दांव नहीं होता,दुकानदारी होती है।

मलूक के साथ चलना हो तो जुआरी कि बात समझनी होगी। दुकानदार की बात छोड़ देनी होगी। यह दांव लगाने वालों की बात है—दीवानों की।/ धर्म शास्त्री नहीं है। नहीं समझ में पड़ता कि वेद पढ़े होंगे। नहीं समझ में पड़ता की उपनिषद जाने होंगे। लेकिन फिर भी वेदों का जो राज है और उपनिषदों का जो सार है, वह उनके प्राणों से बिखरता है। वेद जानकर कभी किसी ने वेद जाने स्वयं को जानकर वेद जाने जाते है। चार वेद नहीं है—एक ही वेद है। वह तुम्हारे भीतर; वह तुम्हारे चैतन्य का है। और एक सौ आठ उपनिषद नहीं है। एक ही उपनिषद है, और उपनिषद शास्त्र नहीं है; स्वयं की सत्ता है।

मूलक दास ज्ञानी नहीं थे। पंडित नहीं है। मलूक दास से पहचान करनी हो तो मंदिर को मधुशाला बनाना पड़े। तो पूजा पाठ से नहीं होगा। औपचारिक आडम्बर से परमात्मा नहीं सधेगा। हार्दिक समर्पण चाहिए। समर्पण—जो कि समग्र हो , समर्पण ऐसा कि झुको तो फिर उठो नहीं। उसके द्वार पर झुक गये तो फिर उठना कैसा। जो काबा से लौट आता है। वह काबा गया ही नहीं। जो मंदिर से वापिस आ जाता है। वह कही गया होगा मंदिर नहीं गया।

मूलक दास के जीवन के संबंध में कुछ बातें जान ले। वे प्रतीकात्मक है। समझ लेने जैसी है। ऊपर से तो नहीं दिखायी पड़ती कि बहुत कीमती है, लेकिन अगर उन प्रतीकों के भीतर प्रवेश करोगे के भीतर प्रवेश करोगे तो जरूर बड़े राज , बड़े रहस्यों के द्वार खुलेंगे।

जो पहली घटना उनके संबंध में ज्ञात है। वह यह है कि बचपन से ही एक अजीव सी आदत उन्हें थी। रास्ते पर कोई कांटा पडा मिल जाये तो हजार काम छोड़कर पहले उस कांटे को हटाते। छोटे थे तब से, कूड़ा-करकट कहीं पडा मिल जाये.....ओर भारत के रास्ते कूड़ा-कर्कटक की कोई कमी है। कांटों की कमी है। काम के लिए भेजा जाता तो घंटो लग जाते, क्योंकि पहले वे रास्ता साफ करें, कूड़ा करकट हटाये, कांटे बीनें। कभी-कभी सुबह घर से भेजे जाएं कि जाकर बाजार से सब्जी ले आओ, सांझ लौटें। दिन भर मां उनकी राह देखे कि

तुम रहे कहां,गये कहा थे। तो वे कहते: और भी जरूरी काम आ गये, सब्जी से भी ज्यादा जरूरी काम आ गया, रास्ते पर कांटे थे कूड़ा करकट था उसे बीना,हटाया।

ऐसे तो यह छोटी सी बात है, लेकिन छोटी नहीं है। जीवन भर भी यही किया—लोगों के रास्तों पर से कांटे बीनें। लोगो के जीवन से कांटे लोगों के मनों से भरा हुआ कूड़ा-कचरा साफ किया। पूत के लक्षण पालने में।

एक सद गुरू ने यह उन्हें करते देखा था कि वे रास्ते पर कांटे बीन रहे हे, कूड़ा-करकट बीन रहे है। तो वह सद गुरू उनके पीछ हो लिया। दिन भर इस छोटे से बच्चे की यह अदभुत जीवनशैली देखता रहा। सांझ को लौटकर उसने मलूक दास के पिता सुंदर दास को कहा: धन्य भागी हो तुम। तुम्हारे घर एक सद गुरू पैदा हुआ है।

सुंदर दास ने तो सर ठोक लिया। सुंदर दास ने कहा: हम परेशान है इस सद्गुरू से। किसी काम का नहीं। छोटे-मोटे काम को भेजो, दिन-भर व्यतीत हो जाता है। लौटता ही नहीं। यह तो किसी भंगी के घर पैदा होता तो अच्छा था। यह पिछले जन्म का भंगी होगा। इसको पता नहीं क्या धुन है, मारा, पिटा, धमकाया, सब तरह से समझाया कि यह काम अपना नहीं है। तुझे क्या लेना देना है। और कुछ करना है कि रास्ते ही साफ करते रहने है?

मगर छोटा सा बच्चा मलूक दास हंसता ओ यह कहता कि यह काम जिन्दगी भर मुझे करना है, सो अभ्यास करते रहने है।

लेकिन उस सद्गुरू ने कहा कि मत, मत ऐसा बात कहां। तुम्हें पता नहीं तुम क्या कह रहे हो। तुम्हारे घर ज्योति उतरी है। अभी कुछ और नहीं कर सकता छोटा बच्चा है, तो बाहर का कूड़ा-कचरा साफ कर रहा है। जल्दी ही यह भीतर का कूड़ा कचरा साफ करेगा। बहुत लोगों के जीवन इसके कारण स्वच्छ और निर्मल होंगे। और देखते ही—सद गुरू ने कहा—यह आजानुबाहु है। इसकी बहाएं कितनी लम्बी है। घुटनों तक पहुँचती है। यह तो चक्रवर्ती सम्राट होगा और या एक अद्भुत बुद्ध पुरूष

यह दुनिया बडी अद्भुत है इसका गणित अनोखा है। यहां जो समझदार साबित होने चाहिए, समझदार साबित नहीं होते। बड़े नासमझ सिद्ध होते है। यहां नासमझ समझदार सिद्ध हो जाते है।

मलूक दास की गिनती तुम ना समझो में मत करना। उन्होंने मालिक को पा लिया और सब पा लिया।

यह तो बचपन की पहली घटना मलूक दास के संबंध में ज्ञात है कि वे कूड़ा कचरा रास्तों से साफ कर देते थे। और एक सद्गुरू ने कहा था उनके पिता को कि घबडाओं मत चिंतित मत होओ तुम्हारे घर ज्योति उतरी है; यह बहुतों के जीवन के कूड़ा कचरा दूर करेगा। यह तो केवल बाहर की सूचना दे रहा है। अभी यह प्रतीक वत है।

दूसरी घटना बचपन के संबंध में—जो रोज-रोज घटती थी, जिससे मां बाप परेशान हो गये थे। वह थी: साधु सत्संग। कोई आ जाये साधु कोई आ जाये संत, फिर मलूक दास घर की सुध-बुध भूल जाते। दिनों बीत जाते, घर न लोटते, साधु-संग में लग जाते। घर में जो भी होता साधुओं को दे आते। साधुओं को तो बहुत लोगों ने दिया है। लेकिन जिस ढंग से मलूक दास ने दिया है वैसा किसी ने शायद ही दिया हो। चोरी करके देते। मां-पिता आज्ञा न दें तो घर में से ही चोरी करके, जब रात सब सोये होते, अपने ही घर की चीजें चुराकर साधुओं को दे आते। क्योंकि कोई साधु है जिसके पास कम्बल नहीं है और सर्दी लगी है उसे और कोई साधु है जिसके पास छाता नही है और वर्षा सिर पर खड़ी है। तो चोरी करके भी बांटते।

कभी-कभी चोरी भी पुण्य हो सकती है। इसीलिए तुमसे कहाता हूं: कृत्य नहीं होते पाप और पुण्य—कृत्यों के पीछे छिपे हुए अभी प्राय। कभी पुण्य भी पाप हो सकता है। कभी पाप भी पूण्य हो सकता है। जीवन

का गणित पहेली जैसा है। सीधी रेखा नही है। जीवन के गणित की कोई नहीं का सकता कि यह ठीक और ऐसा करोगे तो गलत सब कुछ निर्भर करता भीतर की अभीप्सा पर। अभी प्राय पर। अब चोरी को कौन पुण्य कहेगा। अब मूलक दास की चोरी को मैं कैसे पाप कहूं। मूलक दास की चोरी काक पान नहीं कहा जा सकता। और तुम चोरी भी न करो तो भी क्या पुण्य हो रहा है। तुम दान भी देते हो तो पाप हो जाता है ; क्योंकि मंदिर के द्वार पर भी तुम अपना पत्थर लगवा देते हो।

कुछ चमत्कारों की भी घटनायें बाबा मलूक दास के संबंध में जुड़ी है। वैसी घटनाएं करीब-करीब अनेक संतों के साथ जुड़ जाती है। उनके जुड़ जाने के पीछे राज है। उनको तथ्य मत समझना। तथ्य समझा तो भ्रांति हो जाती है। उनको केवल संकेत समझना। वे सांकेतिक है। जैसे जीसस के संबंध में कथा है कि उन्होंने लजारस को मुर्दे से जिला दिया। वापस बुला लिया। वैसी ही कहानी मलूक दास के संबंध में है कि अपने एक शिष्य को उन्होंने मौत की दुनिया से वापिस बुला लिया था।

मूलक दास ने किसी शिष्य को, मर गया था और जिन्दा कर लिया। फिर मलूक दास कहां है? वे भी मर गये। खुद मरते वक्त याद न रही अपनी कला, अपना चमत्कार, नहीं ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। और जो उनको ऐतिहासिक तथ्य मानते है वे बहुत भंयकर भूल कर रहे है। चाहे वे सोचते हों कि हम भक्त है, लेकिन वे भक्त नहीं है। वे हानि पहुंचाते है। इसी तरह की बातों के कारण धर्म असत्य मालूम होने लगता है। धर्म के साथ अगर तुम इस तरह की बातें जोड़ दोगे, तो ये बातें असत्य है, इनके साथ धर्म की नाव भी डूब जायेगी। असत्य के साथ धर्म को मत जोड़ना।

लेकिन इस तरह की कहानियों में सार बहुत है।

सद्गुरू तुम्हें पुकारता है तुम्हारी कब्र से—उठो, जागों वह पुकारता है। उसकी पुकार अगर तुम सुन लो तो तुम्हारी बहरापन खो जाये। उसका स्पर्श तुम अनुभव कर लो तो तुम्हारी बंध आंखें खुल जाये। ये सिर्फ प्रतीक है इस बात के कि तुम्हारी यह सम्भावना है, किसी गुरु के सान्निध्य में सत्य बन सकती है। तुम लंगड़े नहीं हो, तुम जीवन के परम शिखर पर चढ़ने योगय हो।

शिष्य मुर्दा है। सद्गुरू मुद्रों को जगाता है। मगर ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। वे सांकेतिक तथ्य है। इनमें बड़ा काव्य छिपा है और बड़े रहस्य भी ये तथ्य नहीं है। तथ्य तो दो कोड़ी के होते है। सत्यों का मूल्य होता है। लेकिन सत्य को कहें कैसे, हमारी भाषा नपुंसक है सत्य प्रगट नहीं कर पाती। कथाएं चुननी पड़ती है। उँगली उठानी पड़ती है चाँदकी तरफ पर हम ना समझ ऊंगली को ही पकड़ लेते है। चाँद को भूल ही जाते है।

राम दुवारे जो मरे, प्रवचन पहला,

11नवम्बर 1979; श्री रजनीश आश्रम; पूना

संत सुंदर दास

सुंदर दास थोड़े से कलाकारों में एक है जिन्होंने इस ब्रह्मा को जाना। फिर ब्रह्म को जान लेना एक बात है, ब्रह्म को जनाना और बात। सभी जानने बाले जना नहीं पाते। करोड़ों में कोई एक आध है, ब्रह्म को जानता है और सैकड़ों जानने वालों में कोई एक जना पात है। सुंदर दास उन थोड़े से ज्ञानियों में एक है, जिन्होंने निशब्द को शब्द में उतारा, जिन्होंने अपरिभाष्य की परिभाषा की, जिन्होंने अगोचर को गोचर बनाया। अरूप को रूप दिया। सुंदर दास थोड़े सद् गुरूओं में से एक है। उनके एक-एक शब्द को साधारण मत समझना। उनके एक-एक शब्द अंगारे है। और जरा सी चिंगारी तुम्हारे जीवन में पड़ जाये तो तुम भी भभक उठ सकते हो परमात्मा से। तो तुम्हारे भीतर भी विराट का आविर्भाव हो सकता है। पडा तो है ही विराट, कोई जगाने वाली चिंगारी चाहिए।

चकमक पत्थरों में आग दबी होती है। फिर दो पत्थरों को टकरा देते है। आग प्रगट हो जाती है। ऐसी ही टकराहट गुरु और शिष्य के बीच होती हे। उसी टकराहट में ज्योति का जन्म होता है। और जिसकी ज्योति जली है वहीं उसको ज्योति दे सकता है। जिसकी ज्योति अभी जली नहीं है। जले दीये के पास हम बुझते दीये करे लाते है। बुझे दीये की सामर्थ्य भी दीया बनने की है। लेकिन लपट चाहिए। जले दीये से लपट मिल जाती है। जले दीये का कुछ भी खोता नहीं है; बुझे दीये को सब मिल जाता है। सर्वस्व मिल जाता है।

यही राज है गुरु और शिष्य के बीच। गुरु का कुछ खोता नहीं है और शिष्य को सर्वस्व मिल जाता है। जो तुम्हारे पास है, अगर दोगे तो कम हो जायेगा। रोकना, बचाना। साधारण अर्थशास्त्र कंजूसी सिखाता है। कृपणता सिखाता हे। अध्यात्म के जगत में जिसने बचाया उसका नष्ट हुआ; जिसने लुटाया उसका बढ़ा। वहां दान बढ़ाने का उपाय है। वहां देना और बांटना—विस्तार है। वहां रोकना, संग्रहीत कर लेना, कृपण हो जाना—मृत्यु हे।

इसलिए जिनके जीवन में रोशनी जन्मती है, वे बांटते हैं, वे बांटते है। लुटाते है। कबीर ने कहा है: दोनों हाथ उलीचिए। लुटाई ये। अनंत स्त्रोत पर आ गये हो, लुटाने से कुछ चुकेगा नहीं। और नयी धाराएं और नये झरने फूटते आयेंगे। ऐसे एक ही ज्योति जल जाये तो अनेक की ज्योति जलती है। सुंदर दास के सत्संग में बहुतों के दीये जले। ज्योति से ज्योति जले।

यहां जीवन के साधारण अर्थशास्त्र के नियम काम नहीं करते। साधारण अर्थशास्त्र कहता हैः जो तुम्हारे पास है, अगर दोगे तो कम हो जाएगा। रोकना, बचाना। साधारण अर्थशास्त्र कंजूसी सिखाता है, कृपणता सिखाता है। अध्यात्म के जगत् में जिसने बचाया उसका नष्ट हुआ; जिसने लुटाया उसका बढ़ा। वहां दान बढ़ाने का उपाय है। वहां देना और बांटना–विस्तार है। वहां रोकना, संगृहीत कर लेना, कृपण हो जाना-मृत्यु है।

इसलिए जिनके जीवन में रोशनी जन्मती है, वे बांटते हैं, लुटाते हैं। कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए। लुटाओ! अनंत स्रोत पर आ गए हो, लुटाने से कुछ चुकेगा नहीं। और नयी धाराएं, और नए झरने फूटते आएंगे। ऐसे एक की ज्योति जल जाए तो अनेक ज्योति जलती हैं। सुंदरदास के सत्संग में बहुमतों के दीए जले। ज्योति से ज्योति जले!

इन अपूर्व वचनों को ऐसे ही मत सुन लेना जैसे और बातें सुन लेते हो। और बातों की तरह सुन लिया तो सुना भी-और सुना भी नहीं। इन्हें तो गुनना! इन्हें सिर्फ कानों से मत सुनना। कानों के पीछे अपने हृदय को जोड़ देना, तो ही सुन पाओगे। सुनो तो जागना बहुत दूर नहीं है।

मुख के झरौखे मैं वचन न उचार होत,

जीभ हू कौ षटरस स्वाद न विशेखिए।

सुंदर कहत कोऊ कौन विधि जानै ताहि।

तब सुंदर कहते हैं फिर किस विधि उसे जानें? अगर आंख से दिखाई पड़ता तो देख लेते। कान से सुनाई पड़ता तो सुन लेते। हाथ की पकड़ में आता, पकड़ लेते। पैर की यात्रा के बस में होता तो कितने ही दूर होता, पहाड़ों को, समुद्रों को लांघ जाते। अब इसको हम कैसे पहुंचें? हमारे पास कोई विधि नहीं है। किस विधि इसे जानें?

सब विधियां छोड़कर वह जाना जाता है। विधि-मात्र के त्याग से जाना जाता है। उसे पाने की कोई विधि नहीं होती। विधि हमेशा पराए पर ले जाती है। निर्विधि, निरुपाय. . .।

–ओशो

ज्योत से ज्योत जले

दिनांक: 11 जुलाई 1977; श्री रजनीश आश्रम पूना

बाबा-जग जीवन दास

कुछ संत ऐसे है, जो हमारी परिभाषा और परिचय के परिशमन में नहीं आ पाते, कुछ जंगली फूलों की तरह जिनका सौंदर्य तो अटूट होता है। पर हमारी आंखे जिन्हें जानने और देखने की आदि हो जाती है, वह उसके परे है। हम चल तो पड़ते है उस मार्ग पर, उस से परिचित होना सब के बास की बात नहीं है। इसी तरह के संत का आज हम जिक्र करेंगे। वह है संत जग जीवन दास,जग जीवनको समझाने की क्षमता सब में नहीं है। जो लोग प्रेम को समझने में समर्थ है, जो उस में खो जाने को तैयार है, मिटने को तैयार है, वही उस का आनंद अनुभव कर सकेगें। शायद समझ बुझ यहाँ थोड़ी बाधा ही बन जाये।

जग जीवन प्रमाण नहीं दे सकते,गीत गा सकते है और गीत भी काव्य के नियमों के अनुसार नहीं होगा, छंद वद्ध नहीं होगा।उसके तुक नहीं मिले होगें। शायद शब्द भी अटपटे हो पर यह रास्ता अति मधुर और सुंदर अवश्य हो एक पहाड़ी रास्ते की तरह, जो उबड़ खाबड़ हा, कष्ट कांटों से भरा हो, ऊँचा नीचा हो। पर उस का सौंदर्य देखते ही बनता है। नहीं पद चाप मिलेंगे वहां मुसाफ़िरों के पर अद्‌भुत होगा वह मार्ग। गांव के बिना पढ़े लिखें थे जग जीवन, गांव की सादगी, मिलेगी, सरलता मिलेगी। छंद मात्राओं की फिक्र मत करना। नहीं तो चुक जाओगे बहुत कुछ सार रह जाये छंदो की जाली में और असार ही तुम्हारे पास रह जायेगा। जैसे गांव के लोग गीत गाते है। ऐसे वे गीत है।

जग जीवन का काम था गाय बैल चराना, गरीब के बेटे थे। बाप किसान थे—छोटा-मोटा किसानी। और बेटे का काम था कि गाय बैल चरा लाना। न पढ़ने का मौका मिला न पढ़ने का सवाल उठा। तो जैसे गाय-बैल चराने वाले लोग भी गीत गाते है....गीत तो सबका है। कोई विश्वविद्यालय से शोध कर ऊपर उपाधि लेकर आने पर ही गीत गाने का हक नहीं होता।

जग जीवन के जीवन का प्रारंभ वृक्षों से होता है, झरनों से नदियों से, गायों से, बैलों से। चारों तरफ प्रकृति छायी रही होगी। और जो प्रकृति ने निकट हो वह परमात्मा के निकट हे। जो प्रकृति से दूर है वह परमात्मा से भी दूर है।

अगर आधुनिक मनुष्य परमात्मा से दूर पड़ रहा है, रोज-रोज तो उसका कारण मनुष्य में नास्तिकता बढ़ रही है यह नहीं। आदमी जैसा है वैसा ही है। पहले भी नास्तिक हुए हे। और एक हुए है जिनके उपर और कुछ जोड़ नहीं जा सकता। चार्वाक ने जो कहा है, तीन हजार साल पहले न उसमे आप कुछ जोड़ पाओगे जो कहना था सब कह दिया। दिदरो, मार्क्स, माओ चार्वाक के शास्त्र में कुछ जोड़ नहींपाये वही कहा हाथ भर घुमाया, कान वहीं का वहीं है। प्रकृति और आदमी की बीज जो संबंध टुट गया, लोहा और सीमेंट—उसमें आदमी घिर गया। उसमें फूल नहीं खल सकते है।

जग जीवन का प्रारंभ जीवन हुआ प्रकृति के साथ। कोयल के गीतों के साथ,पपीहा की पुकार सुनी होगी। चातक को टकटकी लगाये चाँद को देखते देखा होगा। चमत्कार देखे होंगे कि वर्षा आती है और सूखी पड़ी हुई पहाडियाँ हरी हो जाती है। गाय बैलों के संग वैसे ही हो गये। याद रखना हम जिस का संग करेंगे जाने अनजान हम उसकी और झुकनेलग जाते है। सरल,निर्दोष,गैर महत्वकांशी। गाय को तो भूख लगतीहै तो घास चरती है। थक जाती है तो सो जाती है। बजाते होंगे बांसुरी जब गाय बैल चरतीहोंगी तो जगजीवन बांसुरी बजाते होंगे।

बैठे-बैठे झाड़ों के नीचे जग जीवन को कुछ रहस्य अनुभव हुए होगें। क्या है यह सब खली रात आकाश के नीचे,घास पर लेट कर तारों का देखना, आ गई होगी परमात्मा की। जब तुम पतझड़ में खड़े सूखे वृक्षों को फिर

से हरा होते देखते हो,फैलने लगती है हरियाली, उतर आता है परमात्मा चारों और प्रकृति के साथ हम भी कैसे भरे-भरे हो जाते है। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है। रहस्य की अनुभूति में परमात्मा है।

परमात्मा क्या है? इस प्रकृति के भीतर छिपे हुए अदृश्य हाथों का नाम: जा सूखे वृक्षों परपतिया ले आता है। प्यासी धरती के पास जल से भरे मेघ ले आता है। पशु पक्षियों की भी चिंता करता है। अगोचर है,अदृश्य है, फिर भी उसकी छाप हर जगह दिखाई दे जाती है। इतना विराट आयोजन करता है। पर देखिये उस की व्यवस्था, सुनियोजित ढंग से। प्रकृति का नियम कहो की कहो परमात्मा कहो।

सत्संग चलने लगा—और एक दिनअनूठी घटना घटी। चराने गये थे गाय-बैल को, दो फकीर—दो मस्त फकीर वहां से गूजरें। उनकी मस्ती ऐसी थी कि कोयलों की कुहू-कुहू ओछी पड़ गई। पपीहों की पुकार में कुछ भी खास नहीं रहा। गाय की आंखे देखी थी, गहरी थी, मगर उन आंखों के सामने कुछ भी नहीं। झीलें देखी थी, शांत थीं, मगर वह शांति कुछ और ही थी। यह किसी और ही लोक की शांति दर्श रहीं थी। यह पारलौकिक थी।

बैठ गये उनके पास वृक्ष के नीचे महात्मा सुस्ताने थे। उनमें एक था, बाबा बुल्ला शाह—एक अद्‌भुत फकीर, जिसके पीछे दीवानों का मस्तानों का एक पंथ चला। बावरी। दीवाना था पागल था। थोड़े से पागल संत हुए है। इतने प्रेम में थे कि पागल हो गये। ऐसे मस्त थे कि डगमगा कर चलने लगे। जैसे शराब पी रखी हो—शराब जो ऊपर से उतरती है। शराब जो अनंत से आती है।

कहते है बुल्लेशाह को जो देखता था दीवाना हो जाता था। जग जीवन राम भी दिवाने हो गये। मां बाप अपने बच्चों को बुल्लेशाह के पास नहीं जाने देते थे। जिस गांव में बुल्लेशाह जाते, लोग अपने बच्चो को छुप लेते थे। खबरें थी की वह दीवाना ही नहीं है, उसकी दीवानगी संक्रामक है। उसके पीछे बावरी पथ चला, पागलों का पंथ।

पागल से कम में परमात्मा मिलता भी नहीं। उतनी हिम्मत तो चाहिए ही। तोड़कर सारा तर्क जाल छोड़ कर सारी बुद्धि छोड़ दे सारी बुद्धि-बद्धिमत्ताडूबा कर सब चतुराई चालाकी जो चलते है वह ही पहुंचते है। उन्हीं को पागल कहते है लोग, दीवान कहते है।

एक था बुल्लेशाह और दूसरा था गोविंद शाह: बुल्लेशाह के ही एक संगी-साथी। दोनों मस्त बैठे थे। जग जीवनी भी बैठ गया। छोटा बच्चा था। बुल्लेशाह ने कहा: बेटे आग की जरूरत है थोड़ी आग ला दे।

वह भागा। इसकी ही प्रतीक्षा करता था कि कोई आज्ञा मिल जाये, कोई सेवा का मौका मिल जाए। आग ही नहीं लाया जीवन राम, साथ में दुध की एक मटकीभी साथ में भर लाया। भूखे होंगे, प्यासे होंगे। दोनों ने अपने हुक्का जलाये। दुध ले आया तो दूध पिया। लेकिन बुल्लेशाह ने जग जीवन को कहा कि दूध तो तू ले आया पर मुझे तो ऐसा लगता है तू बिना बताये, चुप से ले आया है।

बात थी भी सच। जग जीवन चुपचाप दूध ले आया था, माता को कहां भी नहीं था। शायद घर पर कोई नहीं होगा। कहने का मौका नहीं मिला होगा। थोड़ी ग्लानि अनुभव करने लगा था। थोड़ा अपराध अनुभव करने लगा था। बुल्ला शाह ने कहा: घबड़ा मत। जरा भी चिंता मत कर, जो देता है उसे बहुत मिलता है।

वे तो दोनों फकीर आगे की और चले गये। जग जीवन सोचता रहा की घर जाकर मां को क्या जवाब दूँगा। और फकीर क्या कह गये थे जो देता उसे बहुत मिलता है। घर पहुंचा,जाकर उघाड़ कर देखी मटकी, जिसमे से अभी दूध भर कर ले गया था। आधा दूध तो ले गया था, मटकीआधीखाली छोड़ गया था। लेकिन मटकी तो पूरी की पूरी भर गयी है।

यह तो प्रतीक कथा है, सांकेतिक है। यह कहती है जो उसके नाम में देते है, उन्हें बहुत मिलता है। देने वाले पाते है, बचाने वाले खो जाते है। या मां का व्यवहार में कुछ ऐसा अप्रतिशीत घट गया होगा की बेटा जब

देना ही था तो मटकी दूध क्या दिया कुछ भोजन भी साथ क्यों न ले गया। मुझे बताता में भोजन परोसती। यानि जग जीवन को देने के बाद जो पश्चाताप था जो गिलानि थी चोरी की उसके बदले जो मिलने की उम्मीद थी उसके बदले कुछ ऐसा हुआ जिस की वो कल्पना नहीं करता था। जो देता है उसे और मिलता है....

घर के व्यवहार को देख कर—यानि मटकी भरी देख कर, उसे लगा की यह तो अपूर्व लोग थे। भागा। फ़क़ीरों के पीछे, भागता ही रहा,रुका नहीं खोजता ही रहा, मीलों दूर जाकर फ़क़ीरों को पकड़ा। जानते हो क्या मांगा। बुल्लेशाह से कहा, मेरे सर पर हाथ रख दो। सिर्फ मेरे सर पर हाथ रख दें। जैसे मटकी भर गई है। ऐसे मैं भी भर जाऊँ ऐसा आर्शीवाद दे दें। मुझे अपना चेला बना लो।

छोटा बच्चा था, बहुत समझाने की कोशिश की बुल्ला शाह ने, लौट जा। अभी उम्र नहीं है तेरी। अभी समय नहीं आया है। लेकिन जग जीवन राम नहीं मानें। मैं छोड़ूगा नहीं पीछा। हाथ रखना पडा बुल्लेशाह को।

गुरु हाथ रखता है जग तुम पीछा छोड़ते ही नहीं। और तब ही हाथ रखने का मूल्य है। और कहते है क्रांति घट गई। जो महावीर को बारह साल तप के बाद मिला या बुद्ध को छह साल के बाद मिला वह जग जीवन को हाथ रखते ही क्रांति घट गई। काया पलट गई, चोला कुछ से कुछ हो गया। ऐसी क्रांति तक हो सकती है जब मांगने वाले ने सच में ही मांगा हो। यू ही औपचारीक बात न रही होगी। परिपूर्णता से मांगा हो, रोएं-रोएं से मांगा हो। मांग ही हो, समग्रता में,भर गई हो। रच बस गई हो। प्यास ही बाकी रह गई हो। भीतर कोई दूसरा विवाद न बचा हो। निस्संदिग्ध मांगा हो। मेरे सिर पर हाथ रख दें। मुझे भर दें, जैसे मटकी भर गई।

छोटा बच्चा था; न पढ़ा न लिखा। गांव का गंवार चरवाहा। मगर मैं तुमसे कहता हूं की अकसर सीधे सरल लोगो को जो बात सुगमता से घट जाती है। वह बुद्ध से भरे लोगो के लिए समझना कठिन है।

उस दिन बुल्लेशाह ने ही हाथ नहीं रखा जग जीवन पर बुल्ला शाह के माध्यम से परमात्मा का हाथ जग जीवन के सर आ गया। टटोल तो रहा था, तलाश तो रहा थी। बच्चे की ही तलाश थी। कोई रहस्य आवेष्टित किये है सब तरफ से इसकी प्रतीति होने लगी थी।

आज जो अचेतन में जगी हुई बात थी। चेतन हो गई। जो कल तक कली थी। बुल्लेशाह के हाथ रखते ही फूल हो गया। रूपांतरण क्षण में हो गया। कुछ प्रतीक दे जायें। याद आयेगी बहुत स्मरण होगा तुम्हारा। कुछ और तो न था, बुल्लेशाह ने अपने हुक्के में से एक सूत का धागा खोल कर काला धागा; वह दायें हाथ पर बाँध दिया। और गोविंद दास ने भी अपने हुक्के का एक सफेद दागा खोल कर बायें हाथ पर बाँध दिया।

जग जीवन को मानने वाले लोग जो सत्य नामी कहलाते है—थोड़े से लोग—वे अभी भी अपने दायें हाथ पर काला और बायें पर सफेद धागा बाँधते है। मगर उसमें अब कुछ सार नहीं है। कितने ही बाँध लो उनसे कुछ होने वाला नहीं है। वह तो जग जीवन ने मांगा था, उसमें कुछ था। और बुल्ले शाह ने बांधा था, न तो तुम जगजीवन हो और न बुल्ले शाह। इस तरह के मुर्दा प्रतीकों हम हमेशा ढोते रहते हे। यही धर्म का प्रतीक बन जाते है। सचाईतोदब कर मर जाती है।

मतलब की काले और सफेदधागे दोनों ही बंधन है। पाप भी बंधन है, पूण्य भी बंधन है। सफेद पूण्य और काला पाप। यह उनका मौलिक जीवन मंत्र था।

उसी दिन से जग जीवन शुभ-अशुभ से मुक्त हो गये। उन्होंने घर भी नहीं छोड़ा। बड़े हुए, पिता ने कहा शादी कर लो। तो शादी भी कर ली, गृहस्थ हो गए। कहां जाना है? भीतर जाना है। बहार कोई यात्रा नहीं है। काम-धाम में लगे रहे और सबसे पार और अछूते बने रहे—जल में कमल वत।

ऐसे गैर पढ़े लिखे लेकिन असाधारण दिव्य पुरूष के विरल ही होते है। जग जीवन विरल है। इन्हें समझने के लिए आपको दानों किनारों के पास जाना होगा।

फिर नजर में फूल महकें दिल में फिर शम्एं जली।
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज़्म में जाने का नाम।।
जिसके भीतर प्यास है उन्हें तो इस तरह की यात्राओं की बात ही बस पर्याप्त है।

–ओशो
नाम सुमिर मन बावरे, प्रवचन एक,
1 अगस्त 1978, श्री रजनीश आश्रम, पूना।

संत पलटूबनिया

पलटू दास के संबंध में बहुत ज्यादा ज्ञान नहीं है। संत तो पक्षियों के जैसे होते है। आकाश पर उड़ते जरूर है, लेकिन पदचिन्ह नहीं छोड़ते जाते है।। संतों के संबंध में बहुत कुछ ज्ञात नहीं रहता है। संत का होना ही अज्ञात है। अनाम। संत का जीवन अन्तर जीवन है। बहार के जीवन के तो परिणाम होते है। इतिहास पर इति वृति बनता है। घटनाएं घटती है। बहार के जीवन की। भीतर के जीवन की तो कहीं कोई रेखा नहीं होती। भीतर के जीवन की तो समय की रेत पर कोई अंकन नहीं होता। भीतर का जीवन तो शाश्वत,सनातन,समयातित जीवन हे। जो भीतर जीते है उन्हें तो वे ही पहचान पाएंगे जो भीतर जायेंगे। इसलिए सिकंदरों हिटलरों चंगैज खां और नादिर शाह इनका तो पूरा इतिहास मिल जाएगा। इनका तो पूरा बहार का होता है । इनका भीतर को कोई जीवन होता नहीं। बाहर ही बाहर का जीवन होता है। सभी को दिखाई पड़ता है।

अगर बाहर का हम हिसाब रखें तो संतों ने कुछ भी नहीं किया होता। तो सारा काम असंतों ने ही किया है दुनिया में। असल में कृत्य ही असंत से निकलता है। संत के पास तो कोई कृत्य नहीं होता। संत का तो कर्ता ही नहीं होता। तो कृत्य कैसे हो सकता है। संत तो परमात्मा में जीता है। संत तो अपने को मिटा कर जीता है। आपा मेट कर जीता है। संत को पता ही नहीं होता कि उसके कुछ किया, कि उससे कुछ हुआ। संत तो होता ही नहीं। तो न तो संत के कृत्य की कोई छाप पड़ती है और न संत के कर्ता का कोई भाव कहीं निशान छोड़ जाता है।

पलटू दास बिलकुल ही अज्ञात संत है। इनके संबंध में बडी थोड़ीसी बातें ज्ञात है—उंगलियों पर गिनी जा सकें। एक—उनके ही वचनों से पता चलता है गुरु के नाम का। गोविन्द दास उनके गुरु थे। संत गोविंद भीखा के शिष्य थे। एक परम संत के शिष्य थे। गोविंद दास पलटू के गुरु थे।

संतों ने अपनी बाबत चाहे कुछ भी न छोड़ा हो। लेकिन गुरु का स्मरण किया हे। जरूर किया है। अपने को तो मिटा डाला है, लेकिन गुरु में हो गए। अपने को पोंछ डाला, सब तरह से अपने को समाप्त कर लिया। उसी समाप्ति में गुरु से तो संबंध जुड़ता है। और परमात्मा की याद की है। लेकिन गुरु की याद को नहीं भूले है। क्योंकि परमात्मा से जिसने जुड़ाया उसे कैसे भूल जाएंगे।

तो गोविंद दास उनके गुरु थे। दूसरी बात, बात जो उनके पदों से ज्ञात होती है वह यक कि वे बणिक थे, वैश्य थे। बनिया थे। वह भी इसलिए ज्ञात होती है कि वैश्य की भाषा का उपयोग किया है। जैसे कबीर जुलाहे थे तो कबीर के पदों में जुला हैं की भाषा का उपयोग है। स्वभाविक। झीनी-झीनी बीना रे चदरिया। अब यह कोई दूसरा नहीं लिख सकता। जो चदरिया बीन सकता है वही ये उपमा देगा। गोरा कुम्हार लिखे गा वह मटके बनाने की बात लिखेगा।ऐसे इनके पदों में इनके वणिक होने के प्रमाण मिलता है। बड़ी मस्ती की बात कही है। कहा है कि " मैं राम का मोदी "–राम का बनिया हूं। राम को बेचता हूं। छोटा-मोटा दुकान नहीं करता।

सुनो ये अद्‌भुत बचन—

कौन करे बनियाई, अब मोरे कौन करे बनियाई।
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।
दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरूष अनादि।
इंगला-पिंगला पलरा दूनौं, लागी सुरति की जोति।
सत सबद की डांडी पकरौं, तौलौं भर-भर मोती।
चाँद-सूरज दोउ करें रखवारी, लगी सत ही ढेरी।
तुरिया चढी के बेचन लागा, ऐसी साहिबी मेरी।

सत गुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम मुदियाई।

पलटू के घर नौबत बाजत, निति उठ होति सबाई।

तीसरी बात जो पता है उनके संबंध में वे दो भाई थे। और दोनों ही पलटू हो गये। बाहर के धन की फिक्र छोड़ दी और भीतर का धन खोजने लगे। खोजने ही नहीं लगे खोज ही लिया।

दोनों भाई बदल गए। बदलने के कारण गुरु ने दोनों को पलटू नाम दे दिया। एक भाई को पलटू प्रसाद और दूसरे भाई को पलटू दास। यह शब्द बड़ा प्यारा दिया गुरु ने ''पलटू''ईसाई जिसको कन्वर्शन कहते है। पलट गए। कहीं जाते थे और ठीक उलटे चल पड़े। और ऐसे पलटे कि क्षण में दूसरे हो गये। कोई देर दार नहीं की। सोच-विचार नहीं किया। कहां बाजरा में गादी लगा केर बैठे थे और कहां सूक्ष्म में गादी लगा दी। कहां तोलते थे —आनाज तौलते थे। और कहां 'सत शब्द की ढेरी'। ये तौलने लगे। और कहां साधारण चीजें बेचते थे और कहां बेचने लगे तुरिया: समाधि बेचने लग गये। ऐसा रूपांतरण था कि गुरु ने कहा कि तुम बिलकुल ही पलट गए। ऐसा मुश्किल से होता है। यह क्रांति थी।

'पलटू' नाम का अर्थ होता है क्रांति। एक बड़ी अपूर्व क्रांति हुई। यह नाम भी बड़ा प्यारा है। असली नाम का तो कुछ पता नहीं है। असली नाम यानी मां-बाप ने जो नाम दिया था। उस नाम का तो कुछ पता नहीं है। गुरु ने जो नाम दिया था वह यह था। और गुरु ने खूब प्यारा नाम दिया। बड़ा सांकेतिक नाम दिया। दो-दो चार-चार पैसे के लिए दुकान करते रहे होंगे। और जब पलट गए तो ऐसी क्रांति घटी।

उनके भाई पलटूप्रसाद ने पलटू के संबंधमें कुछ वचन लिखे है:

नंगा जलालपुर जन्म भयो है, बसै अवध के खोर।

कहै पलटू प्रसाद हो भयो,जगत में सोर।।

चार वरण की मेटिके भक्ति चलाई मूल।

गुरु गोविंद गे बाग़ में पलटू फूले फूल।

गरीब गांव में पैदा हुए थे, नाम ही था: नंगा जलाल पुर। तुम सोच ही सकते हो: नंगा जलाल पुर। गरीबों का गांव होगा। बिलकुल नंगों का गांव होगा। और जा कर बस गये अवध में अयोध्या में बस गए। गृहस्थ पैदा हुए थे। फिर संन्यस्त हो गए। धन, पद, मद, में डूबे थे—फिर एक दिन राम की महिमा में उतर गए।

पलटू के शब्द ऐसे है जैसे आग्नेय है। जैसे कबीर दास के। बड़े ऊंचे घाट के शब्द हे और बड़े चोट करने वाले। ठीक अगर कबीर के साथ किसी दूसरे को हम खड़ा कर सकें, तो वह है पलटू बनिया। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं हे। तुम जब उनके पदों में उतरोगे। तुम भी पाओगे। बड़ी ऊंची बात और बड़ी सचोट है। ह्रदयमे उतर जाए। तुम्हारे पोर-पोर में भर जाए—ऐसी बात है। रसपूर्ण भी उतनी ही जितनी सचोट। मस्ती भी उतनी ही जैसी कबीरकी।एक-एक शब्द से खूब शराब झरती है। डुबकी लेना।

–ओशो

अजहूं चेत गंवार, पहला प्रवचन

दिनांक 21 जुलाई 1977, श्री रजनीश आश्रम पूना।

रज्जब तैं त किया गज्जब.....

आज हम जिस अनूठे आदमी की बाणी में यात्रा करेंगे, वह आदमी निश्चित अनूठा रहा होगा। कभी ऐसे अनूठे आदमी होते है। और उनके जीवन से जो पहला पाठ मिल सकता है वह यही है।

संत रज्जब की जिंदगी बड़े अद्‌भुत ढंग से शुरू होती है। तुमने सोचा भी न होगा कि ऐसे भी कहीं जिंदगी बदलती है। वह भी कोई जिंदगी के बदलने का ढंग है। रज्जब मुसलमान थे। पठान थे। किसी युवती के प्रेम में थे। विवाह का दिन आ गया। बारात सजी। बारात चली। रज्जब घोड़े पर सवार। मौर बाँधा हुआ सिर पर। बाराती साथ है,बैंडबाजा है इत्रका छिड़काव है, फूलों की मालाएँ है। और बीच बाजार में अपनी ससुराल के करीब पहुंचने को ही थे। दस पाँच कदम शेष रह गये थे। सूसराल के लोग स्वागत के लिए तैयार थे सूसराल के लोग—और यह क्रांति घटी। कि अचानकघोड़े के पास एक आदमी आया उसका पहनाव बड़ा अजीब था। कोई फक्कड़ दिखाई दे रहा था।बारात के सामने आ कर खड़ा हो गया। और उसने गौर से रज्जब को देखा। आँख से आँख मिली। वे चार आंखें संयुक्त हो गयी। उस क्षण में क्रांति घटी। वह आदमी रज्जब को होने वाला गुरु था—दादू दयाल। और जो कहा दादू दयाल ने वे शब्द बड़े अद्‌भुत है। उन छोटे से शब्दों में सारी क्रांति छिपी है। दादू दयाल ने भर आँख रज्जब की तरफ देखा, आँख मिली ओर दादू ने कहा—

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर।

आया था हरी भजन कुं, करे नरक की ठौर।।

बस इतनी सी बात। देर न लगी, रज्जब घोड़े से नीचे कूद पड़ा, मौर उतार कर फेंक दिया, दादू के पैर पकड़ लिए। और कहा कि चेता दिया समय पर चेता दिया। और सदा के लिए दादू के हो गये। बाराती यों ने बहुत समझाया—भीड़ इकट्ठी हो गयी, सारा गांव इकट्ठा हो गया। ससुराल के लोग आ गये, पर रज्जब तो बस एक ही बात दोहराने लगा बार-बार....

रज्जब तैं गज्जब किया.....

सोचो जरा, कितनी आशायें न बाँदी होंगी रज्जब ने। अपनी प्रेयसी को मिलने जा रहा था। कितने सपने ने देखे होंगे। क्या-क्या मनसूबे, क्या–क्या ताशों के महल कितने सुहावनें गीत न रचे होंगे मन में। और एक क्षण में ऐसे झटके में सब तोड़ दिया। और एक फक्कड़ से आदमी के आँख डालने से यह बात हो गयी। इस लिए कहता हूं। रज्जब गजब का आदमी था।

कोई मुकाबला नहीं रज्जब का। बहुत संत हुए है पर रज्जब सब में निराले है। ऐसा त्वरा, ऐसी तीव्रता, ऐसी सघनता, वर्षो सोचते है लोग। विचारते है। चिंतन मनन करते है। आगा पीछा देखते है, हिसाब किताब लगाते, हजार बहाने मन में पैदा करते है। तर्क जुड़ाते है—तब कहीं लोग हजारों लाखों में कोई चलने का साहस कर सकता है।

दादू को देखना। और रज्जब को उनके चरणों में गिर जाना। कोई पुराना साथी-संगी, कोई पुराना शिष्य। पहले भी कभी बैठ चुका होगा दादू की संगत में। फिर चला उलझनें। फिर चला गड्ढे की और। पीछे बहुत रोया होगा, शायद किसी और जन्म में बहुत रोया होगा कि अब क्या करुँ। पत्नी है, बच्चे है,फकीरी करनी होगी। और इस परिवार का क्या होगा। इनकी शिक्षा देनी और आप कहते हो जागों। क्या यह वक्त है जागने का। इस के थोड़ा इंतजार करना होगा। मैं अभी अधूरा-अधूरा हूं। थोड़ा पक्का हों जाने दो। आऊँगा जरूर,आना तो है। लेकिन समय नहीं आया है।वह जो आंखे थी जब उसके सामने आई होगी दबी हुई स्मृतियों को जगाने को काम कर गई।

जब गुरु शिष्य कि आँख में आँख डाल कर देखता है। तो जिन बातों का शिष्य को भी पता नहीं रह गया है। जो उसके अचेतन के गर्भ में दबी पड़ी है। उनको सक्रिय कर देता है। याद दाश्तें भूली-बिसरी पुनरुज्जीवित हो उठती है। बीज जो पड़े रह गये थे, वह अंकुरित हो गये है। आकांशाए, अभीप्साएं, जाग उठती हे। प्रबल बेग से।

दो चार आठ दि के बाद दादू ने खूद रज्जब को कहा देख,तू अभी जवान है,तूने मेरी बात मानी सो ठीक; अब मुझ थोड़ा पछतावा होता है। तूने मुझे झंझट में डाला है तू मुझे माफ कर। यह मेरी भूल थी। जो मैं तुझे बीच बारात में रोका।

शायद दादू ने भी सोचा नहीं था कि यह हो जाएगी बात। लोग ऐसे काहिल, ऐसे सुस्त,ऐसे कायर, होते हे। ऐसी बात, दादू दयाल ने सोचा होगा आऊँगा बीच होते-होते होगी वर्षा लगेंगे, सालों साल जब तक अंकुरित हो जायेगा। आये होंगे लड़की बाले। रोंए कल्पेने होंगे। लड़की भी आकर रोयी होगी। मेरा क्या कसूर है। क्यों प्रेम कियाथा। क्यों सपने दिखायें थे। और ऐन उस वक्त आपने हमारी जीवन में सब खत्म कर दिया। डराया धमकाया होगा लोगों ने। कोई चुप तो बैठे नहीं होगें। किसी का जवान लड़का यू चला जाये तो चुप तो कोई रहा नहीं होगा। पर दादू दयाल ने इतना भी नहीं सोचा होगा। अब दादू को भी लगने लगा कि मेंने क्या कर दिया। भोले जवान को देखते होंगे रोज, हरिभजन में बैठे, तो खुद ही सोचते होंगे कि यह मैंने और एक उपद्रव कर दिया। अभी उसे कुछ दिन भोग ही लेने देना था। फिर यह भी मन में लगता होगा—अभी जवान है, कहीं डाँवा डोल हो जाए, भूल-चूक हो जाए गिर जाए.....। इतनी तेजी से छलांग ले ली है। इतनी ही तेजी से गिर भी सकता है।

कहते है, दादू ने कुछ महीनों के बाद उसे कहा की रज्जब, तूने ठीक किया कि मेरी बात मान ली,अब मेरी एक बात और मान ले–तू संसार में उतर जा।

रज्जब ने जिस आँख से दादू की आँख में देखा, तो दादू तिल मिला गये होंगे। फिर दुबारावह बात नहीं उठाई। वह चमक वह लपट, वे चलती हुई दो आंखें। कहतेहै, रज्जब ने एक शब्द नहीं कहां, सिर्फ गुरु की आँख में देखा। और सब कह दिया।और आप से सुनु यह बात। सारेलोग समझा रहे है, यह ठीक है बात। नासमझ हे। उनको समझाने दा; मगर आप से ये सुनु बात, यह बात दुबारा उठाना ही मत। लेकिन यह कहा भी नहीं, बस उन आंखों की चमक ने कहा दिया।

छाया की तरह दादू दयाल के साथ रहा रज्जब। उनकी सेवा में लगा रहा। वे चरण उसके लिए सब कुछ हो गये। उन चरणों में उसने सब पा लिया। अद्‌भुत प्रेमी था रज्जब। जब दादू दयाल अंतर्धान हो गये। जब उन्होंने शरीर छोड़ा,तो तुम चकित हो जाओगे.....शिष्य हो तो ऐसा हो। उसने आँख बंद कर लीं। तो फिर कभी आँख नहीं खोली। लोग कहते कि आंखे क्यों नहीं खोलते, तो वह कहता देखने योग्य जो था उसे देख लिया, अब देखने को क्या है?

कई वर्षों तक रज्जब जिंदा रहा, दादू दयाल के मरने के बाद। लेकिन कभी आँख नहीं खोली। देखने योग्य देख लिया। जो दर्शनीय था, उसका दर्शन कर लिया। उन आंखें में पूर्णता का सौंदर्य देख लिया। अब देखने योग्य क्या है इस संसार में। अब आँख का काम खत्म हो गया। क्या करना खोल कर, क्या देखना है।

एक तरह से देखो तो लगता है दादू दयाल ने भी बड़ा बेमौका चुना। दूसरी तरफ से देखो तो लगता है इससे सुंदर कोई मौका हो नहीं सकता है। क्यों क्योंकि प्रेम से भरा हुआ यह ह्रदय,प्रेम से भरी हुई यह धारा.... ....रज्जब के प्राण प्रेम से आंदोलित थे। प्रेयसी से मिलने जा रहा था। प्रेम तो तैयार था, जरा सा रूख बदलने भर की बात थी। यह मौका ठीका मौका है। लोहा जब गर्म हो तब चोट करनी चाहिए। एक तरह से देखो तो यह मौका एक दम ठीक था। एक तरह से लगेगा कि मौजूं नहीं थी यह बात। यह जरा फक्कड़पन की बात मालूम

पड़ती है। दादू दयाल ने कुछ संगत बात नहीं की। लेकिन और गहरे झांक कर देखो तो लगेगा। इसके पीछे एक पूरा मनोविज्ञान है।

यह जानकर तुम हैरान होओगे कि दूनिया में जब भी कोई धर्म जिंदा होता है। नया-नया पैदा होता है। तो उसके प्रति जो लोग आकर्षित होते हे। वे जवान होते हे। और जब कोई धर्म बूढा हो जाता है। मर जाता है। मुर्दा हो जाता है। तो मंदिर-मसजिदों और गिरजों में केवल बूढ़े ही दिखाई देंगे। क्याकारण होगा? कारण है, जीवन ऊर्जा, जिनका प्रेम ही सूख गया हो उनको परमात्मा की तरफ भी कैसे मोड़ोगे। प्रेम तो प्रेम है—चाहे किसी स्त्री की तरफ बहता हो और चाहे किसी पुरूष की तरफ बहता हो, यही मूड जाए तो उस परम प्यारे की तरफ बहने लगता है।

रज्जब बड़े भाव से भार होगा। उस घड़ी की जरा कल्पना करो। रज्जब के ह्रदय का थोड़ा चित्र उभारों।

आ कि वाबस्ता हैं, उस हुस्न की यादें मुझसे
जिसने इस दिल को परी खान बना रक्खा है।
जिसकी उल्फ़त में भुला रखी है दुनिया हमने,
दहर को दहर का अफसाना बना रक्खा है।।

प्रेम को मत मार डालना, और जिन लोगों ने कहा है, प्रेम को नष्ट कर दो, वे तुम्हारे दुश्मन है। उन्होंने तुम्हारे जीवन को मरुस्थल कर दिया है। प्रेम को मारना नहीं, प्रेम की दशा-रूपांतरण करना है। प्रेम की यात्रा बदलनी है। भक्ति के मार्ग का इतना हीं अर्थ है।

रज्जब अद्भुत प्रेमी है। एक लपट में यात्रा बदल गई। तूफ़ान रहा होगा प्रेम का। बड़ी भयंकर उर्जा रही होगी। निश्चित है। संसार में उतरा होता तो बड़ा फैलाव किया होता, बड़ा पसार किया होता, बड़ा पसारी बना होता। नहीं गया संसार में तो परमात्मा में उतरा और खूब गहरा उतरा।

राम राय, महा कठिन यहु माया।
जिन मोहि सकल जग खाया।।
–ओशो
संतों, मगन भया मन मेरा, पहला प्रवचन,
12 मई, 1978, श्रीरजनीशआश्रम, पूना।

संकल्पवान परमात्मा को खोजेगा, फिर झुकेगा। पहले उसके चरण खोज लेगा, फिर सिर झुकाएगा। समर्पण से भरा हुआ व्यक्ति, भक्त, सिर झुकाता है; और जहां सिर झुका देता है, वहीं उसके चरण पाता है। गिर पड़ता है, आंखें आंसू से भर जाती हैं। रोता है, चीखता है, पुकारता है, विरह की वेदना उसे घेर लेती है। और जहां उसके विरह का गीत पैदा होता है, वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है।

तुम्हारी मर्जी! जैसे चलना हो। लेकिन दादू दूसरे मार्ग के अनुयायी हैं। उन्हें समझना हो तो एक शब्द है–समर्पण। उसे ही ठीक से समझ लिया तो दादू समझ में आ जाएंगे।

इसलिए दादू कहते हैं, सबै सयाने एकमत।

वह एकमत समर्पण का है। और जिन्होंने भी जाना है उन्होंने वही कहा है। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि संकल्प से चलने वाले लोगों ने भी अंत में यही कहा है। चले संकल्प से, पहुंचे समर्पण से।

बुद्ध के साथ यही हुआ। क्षत्रिय का खून था, समर्पण आसान नहीं। क्षत्रिय को संकल्प आसान है। लड़ सकता है, मिट सकता है; झुकना उसे नहीं आता। टूट जाना सुगम है, झुकना बड़ा दुर्गम। सारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार क्षत्रिय के–वह भी राजपुत्र के! संघर्ष के। समर्पण के नहीं हो सकते, संघर्ष के ही होंगे।

तो बुद्ध ने छह वर्ष तक अथक तपश्चर्या की। जो-जो कहा है शास्त्रों में, सब पूरा किया। थोड़ा ज्यादा ही पूरा किया। जितना कहा था, उससे भी अति की। क्योंकि कहीं चूक न जाएं, कहीं यात्रा अधूरी न रह जाए। गुरु थक गए। जिन गुरुओं के पास बुद्ध गए, उन्हीं गुरुओं ने कहा कि हम तुमसे अब कुछ भी कह नहीं सकते। क्योंकि जो भी तुमसे हमने कहा करने को, तुमने उसे जरूरत से ज्यादा किया। ऐसा शिष्य पाना दुर्लभ है।

साधारणतः गुरुओं को कठिनाई नहीं आती, क्योंकि शिष्य कभी वह करते ही नहीं जो गुरु कहता है। करते भी हैं, तो उतना नहीं करते, जितना गुरु कहता है। इसलिए सुविधा बनी रहती है गुरु को, कि तुमने किया ही नहीं। अगर नहीं पाया, तो विधि गलत है, यह मत समझना। जब किया ही नहीं तो तुम्हीं गलत हो।

बुद्ध से यह कहना आसान न था। जो कहा था, उसे उन्होंने रत्ती-रत्ती, जरूरत से ज्यादा पूरा किया था। गुरुओं ने हाथ जोड़ लिए। उन्होंने कहा कि इससे ज्यादा अब हमारे पास कुछ है नहीं।

और बुद्ध सस्ते में राजी न थे। छोटी-मोटी उपलब्धि को कोई मूल्य न देते थे। परमात्मा को ही जानना था। और परमात्मा को भी ऐसे नहीं जानना था कि वह दूर खड़ा हो और हम दूर खड़े हों। उसे भी ऐसा जानना था कि वह हमारा अंतरतम हो! तभी तो जानना जानना है। ऐसा देख लिया आंख भर कर, कौन जाने सपना हो! आंख तो सपने को भी सच मान लेती है। उसकी आवाज सुन ली कानों से, कौन जाने सपना हो! क्योंकि सपने में भी तो आवाज सुनी जाती है। नहीं, यह कोई जानना जानना न हुआ, यह तो परमात्मा भी माया का ही हिस्सा हुआ।

दादू इसी अदभुत कहानी की बात कर रहे हैं। उनका एक-एक शब्द समझने जैसा है।

"दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।'

"यह शब्द "गैब'–पहली बात समझ लेने जैसी है। इसका अर्थ होता है रास्ते में, लेकिन अनायास।

गुरु अनायास ही मिलता है क्योंकि तुम तो उसे खोजोगे कैसे? अगर इतनी ही तुम्हारे पास रोशनी होती कि तुम गुरु को खोज लो, तो उसी रोशनी में तो तुम अपने को ही खोज लेते। गुरु को खोजने की जरूरत ही न थी। अगर तुम इतने ही जागे हुए होते कि गुरु को पहचान लेते, तो उतने जागरण से तो तुम अपने को ही

पहचान लेते, गुरु को पहचानने का सवाल ही न उठता था। अगर तुम इतने ही समझदार थे, कि तुम परख लेते कि कौन गुरु है और कौन गुरु नहीं है, तो उतना विवेक तो पर्याप्त है। उससे तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाती।

गुरु को तुम खोज नहीं सकते। सोया हुआ आदमी कैसे उसको खोजेगा, जो उसे जगाए? और अगर सोया हुआ आदमी उसको खोज ले जो उसको जगाए, तो जगाने की जरूरत कहां है? वह आदमी जागा ही हुआ है।

इसलिए गुरु अनायास मिलता है। यह बात तो पहली समझ लेने जैसी है। अनायास का अर्थ है, कि तुम्हें पता भी नहीं होता और मिल जाता है–आकस्मिक! तुम्हें अनायास लगता है। एक बहुत पुरानी इजिप्त में प्रचलित लोकोक्ति है, कि जब शिष्य तैयार होता है, तब गुरु उपलब्ध हो जाता है। ऐसा नहीं है, कि शिष्य उसे खोजता है, गुरु ही उसे खोज लेता है।

ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता हो कि तुम यहां चले आए हो, भीतर से देखने पर तुम पाओगे, कि मैं तुम्हारे पास आया हूं। इसके पहले कि तुम यहां आए, मैं तुम्हारे पास पहुंच गया था, अन्यथा तुम यहां आते कैसे? कोई दूसरा तो उपाय नहीं है आने का। तुम यहां हो–तुम्हारे कारण नहीं; तुम यहां खींच लिए गए हो। शायद तुम्हें आज साफ भी न हो, लेकिन जब भी तुम्हें थोड़ा सा होश आएगा और आंखें खुलेंगी, तब तुम समझ पाओगे।

दादू उसी क्षण की बात कह रहे हैं। "दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या।'

खोजा भी न था। अपने तरफ से खोजने के लिए कोई क्षमता भी न थी। मिल भी जाता, तो पहचानने का कोई मापदंड न था। सामने भी खड़ा होता, तो आंखें बंद थीं। गले से भी लगा लेता, तो स्वयं का हृदय तो धड़कता ही न था। पहचानते कैसे? प्रत्यभिज्ञा कैसे होती, कि यही गुरु है? नहीं, शिष्य गुरु को नहीं खोजता; गुरु ही शिष्य को खोजता है। भला गुरु रत्तीभर न चलता हो और शिष्य हजार मील चलकर आया हो, लेकिन गुरु ही शिष्य को खोजता है। शिष्य गुरु को खोज ही नहीं सकता।

शिष्य इतना ही कर सकता है, कि उपलब्ध रहे; कि जब गुरु पुकारे तो पुकार सुन ले, इतना ही काफी है; कि जब गुरु खींचे तो खिंच जाए, अड़चन न डाले, इतना ही काफी है। बाधा न खड़ी करे; जब बुलावा आए, तो बुलावे के अनुसार चल पड़े।

तिब्बत में कहावत है, कि हजार बुलाए जाते हैं, एक पहुंचता है। वह भी ठीक है। क्योंकि नौ सौ निन्यानबे तो हर तरह की बाधा डालते हैं। वे आना नहीं चाहते। वे नहीं चाहते कि कोई उन्हें खींच ले। क्योंकि जब कोई उन्हें खींचता है तो उन्हें लगता है, यह तो हम परवश हुए। यह तो अपनी सामर्थ्य गई। यह तो हम एक तरह की गुलामी में पड़े, कि कोई खींचे और हम खिंच जाएं; कोई जगाए और हम जग जाएं; कोई उठाए और हम उठ जाएं। अहंकार बड़ी बाधाएं खड़ी करता है।

बस, शिष्य इतना ही कर सकता है कि बाधाएं खड़ी न करे। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ तुम बहने को राजी हो जाओ। तो जब भी तुम बहने को राजी हो, अचानक तुम पाओगे, कि गुरु द्वार पर खड़ा है: या तुम गुरु के द्वार पहुंच गए हो।

जीवन बड़े रहस्यपूर्ण नियमों से बना है। जहां जरूरत होती है, वहां घटना घट जाती है।

मेरी सहायता तुम्हें सदा उपलब्ध है। लेकिन संन्यस्त होकर ही तुम उसे पा सकोगे। मेरे तरफ से उपलब्ध होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी तरफ से लेने की क्षमता भी तो होनी चाहिए। संन्यस्त होने का कोई और अर्थ नहीं है। दीक्षित होने का कोई और अर्थ नहीं है; इतना ही अर्थ है, कि हम झुकते हैं। बस, इतना ही अर्थ है,

कि हम झुकने को राजी हैं। हमारी तरफ से कोई बाधा नहीं है। अगर आप बरसो, तो हमारा पात्र सामने रखा है।

कठिन हो जाता है समझना उन्हें क्योंकि वे सोचते हैं, अगर मैं सहायता करने को तैयार हूं, तो फिर संन्यास, दीक्षा इस सबका प्रयोजन है? क्यों न बिना संन्यस्त हुए, बिना दीक्षित हुए उनको सहायता मिल जाए? शायद उन्हें लगता है, कि मैं थोड़ा पक्षपातपूर्ण हूं।

वे गलती में हैं। मैं उन्हें भी देना चाहता हूं, लेकिन वे लेने को राजी नहीं हैं। वह ऐसे ही हैं, जैसे पहाड़ की चोटी हो; बहती गंगा की धार से कहे, कि क्या तू सागर को ही दिए चली जाएगी? हम भी खड़े हैं। आखिर हमारी तरफ क्यों नहीं चली आती? तो गंगा कहेगी, मैं, तो राजी हूं, लेकिन तुम इतने ऊंचे खड़े हो, कि वहां तक आने का कोई उपाय नहीं है।

जलधार नीचे की तरफ जा रही है। गुरु से शिष्य की तरफ एक जीवंत धार बहती है। अगर तुम ठीक समझो, तो वही स्वर्ग की गंगा है। गुरु की तरफ से एक प्रसाद बहता है, लेकिन उसके लिए तुम्हें झुके हुए होना जरूरी है; तभी तुम उसे झेल पाओगे। अन्यथा वह बरसेगा भी और तुम खाली के खाली रह जाओगे। अगर तुम पहले से ही भरे हुए हो, तो तुम खाली रह जाओगे। अगर तुम खाली हो, तो भर जाओगे।

इसीलिए तो धर्म पहेलियां जैसा लगता है। पहेलियां हैं, लेकिन सीधी-साफ हैं। जरा सी भी समझ हो, तो अड़चन नहीं है।

नदी बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो; झुको, अंजलि बनाओ हाथ की, तो तुम्हारी प्यास बुझ सकती है। लेकिन तुम अकड़े ही खड़े रहो, जैसे तुम्हारी रीढ़ को लकवा मार गया हो तो नदी बहती रहेगी तुम्हारे पास और तुम प्यासे खड़े रहोगे। हाथभर की ही दूरी थी, जरा से झुकते, कि सब पा लेते। लेकिन उतने झुकने को तुम राजी न हुए। और नदी के पास छलांग मारकर तुम्हारी अंजलि में आ जाने का कोई उपाय नहीं है। और आ भी जाए, अगर अंजलि बंधी न हो, तो भी आने से कोई सार न होगा।

शिष्यत्व का अर्थ है, झुकने की तैयारी। दीक्षा का अर्थ है, अब मैं झुका ही रहूंगा। वह एक स्थाई भाव है। ऐसा नहीं है, कि तुम कभी झुके और कभी नहीं झुके। शिष्यत्व का अर्थ है, अब मैं झुका ही रहूंगा; अब तुम्हारी मर्जी। जब चाहो बरसना, तुम मुझे गैर-झुका न पाओगे।

"मस्तक मेरे कर धरया देखा अगम अगाध।'

मनुष्य के शरीर में सात चक्र हैं। साधारणतः तुम पहले ही चक्र से परिचित हो पाते हो, क्योंकि प्रकृति उसी चक्र के साथ अपना सारा काम चलाती है–वह है, काम-चक्र, मूलाधार। जहां से कामवासना उठती है, जहां से जीवन का प्रवाह चलता रहता है।

लेकिन वह सबसे नीचा चक्र है। उस चक्र में जीने का अर्थ है, जैसे कोई आदमी महल के होते हुए बस, महल के बाहर पोर्च में ही घर बना ले। पोर्च भी महल का हिस्सा है और सुंदर है। मेरे मन में कोई निंदा नहीं है किसी बात की। पोर्च में कुछ भी बुरा नहीं है। पोर्च बिलकुल सुंदर है, उसकी जरूरत है। बाहर से आए तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। भीतर से गए तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। धूप होगी, वर्षा होगी, तो पोर्च बचाएगा; लेकिन पोर्च कोई रहने की जगह नहीं है कि वहीं रहने लगे।

एक यूनान में बहुत बड़ा विचारक हुआ–झेनो। उसकी विचार-पद्धति का नाम स्टोइक है। ग्रीक भाषा में पोर्च का नाम है "स्टोआ'। वह पोर्च में ही रहता था झेनो, इसलिए उसके पूरे दर्शन-शास्त्र का नाम "स्टोइक' हो गया, "स्टोआ' से। पोर्च में रहने वाला झेनो वह कभी महल के भीतर नहीं गया। वह पोर्च में ही जीया, पोर्च में

मरा। और कोई पूछता, कि तुम इस पोर्च में क्यों जी रहे हो? तो वह बताता था, कि वह उसकी त्यागपूर्ण दृष्टि है।

लेकिन ऐसा त्याग मूढ़तापूर्ण है। ऐसा ही त्याग तुम भी कर रहे हो, कि तुम कामवासना में ही जी रहे हो। वह जीवन का पोर्च है, इससे ज्यादा नहीं। महल बहुत बड़ा है। और उस महल में बड़े अनूठे कक्ष हैं और उसके अंतर्गृह में स्वयं परमात्मा विराजमान है। तुम पोर्च में बैठे रहो; तुम यूं ही व्यर्थ जीवन को गंवा दोगे।

सात चक्र हैं; पहला चक्र काम है और सातवां चक्र सहस्रार है। जब शिष्य का सिर झुकता है गुरु के चरणों से, और केवल बाहर का ही सिर नहीं झुकता, भीतर का अहंकार भी झुक जाता है, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है, कि बाहर सिर के साथ भीतर का अहंकार भी झुक जाता है–ध्यान रखना! क्योंकि बाहर का सिर झुकाना तो बहुत आसान है। कम से कम भारत में बहुत ही आसान है। लोग अभ्यस्त हैं, औपचारिक है। सिर झुकाने में उन्हें कुछ लगता ही नहीं। वह केवल परंपरागत है। लेकिन अगर तुम उनके अहंकार की तस्वीर ले सको, तो भारतीय को तुम झुकते हुए देखोगे, सिर तो झुका हुआ आएगा तस्वीर में, अहंकार खड़ा हुआ आएगा तस्वीर में। और यह भी हो सकता है कि सिर झुकाने से भी अहंकार मजबूत हो रहा हो। जीवन जटिल है। एक नई अकड़ पकड़ रही हो, कि मैं तो विनम्र आदमी हूं, देखो कहीं भी सिर झुका देता हूं। देखो मेरी विनम्रता!

जब तुम्हारा सिर भी झुकता है और तुम्हारे भीतर का सिर भी झुक जाता है–अहंकार, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है, जब तुम पूरे ही झुके हुए होते हो, तो गुरु का हाथ अगर उस घड़ी में तुम्हारे सहस्रार पर पड़ जाए, तो उसकी जीवन-धारा तुममें प्रवाहित हो जाती है। और जो काम तुम अपने ही हाथ से जन्मों में न कर पाते, वह क्षण में घटित हो जाता है। वह प्रसाद हो जाता है। तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा गुरु की जीवन-ऊर्जा के साथ उर्ध्वगामी हो जाती है। तुम्हारा सातवां चक्र सक्रिय हो जाता है।

और यह जो चक्र सक्रिय हो जाए, तो दादू कहते हैं, "देखा अगम अगाध'।

इसलिए वे प्रसाद कहते हैं। अपने बस से यह नहीं हुआ है। अपनी तरफ से कुछ भी न किया था, सिर्फ झुक गए थे। यह भी कोई करता है। लेकिन गुरु का हाथ पड़ गया सिर पर और क्षणभर में एक क्रांति हो गई। गुरु की बहती ऊर्जा ने तुम्हारे जीवन के सारे छिन्न-भिन्न तार जोड़ दिए। खंडित वीणा अखंड हो गई। तो कल तक टूटी धार थी, संयुक्त हो गई। कल तक, क्षणभर पहले तक जिस भीतर के मंदिर का तुम्हें कोई पता न था, उसका कलश दिखाई पड़ने लगा।

इस जीवन को अगर तुमने कामवासना से देखा है, तो यह संसार है। इसी जीवन को अगर तुमने सहस्रार से, समाधि से देखा है, तो यही अगम-अगाध है। संसार यही है, कुछ बदलता नहीं; तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारे खड़े होने की जगह बदल जाती है।

और जिस दिन तुम समाधि के केंद्र से संसार को देखते हो, संसार बचता ही नहीं; परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। हर फूल-पत्ते में वही, हर कंकड़-पत्थर में वही; आकाश, चांदत्तारों में वही। लोगों में झांको और तुम उसी को पाते हो। हवा के झोंके को स्पर्श करो, उसी का स्पर्श होता है। आंख बंद करो, वही दिखाई पड़ता है। आंख खोलो, वही दिखाई पड़ता है। लेकिन यह जीवन-ऊर्जा जब समाधि के द्वार से देखती है–

"गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।

–ओशो

सबै सयाने एक मत,

पिव-पिव लागी प्यास

सहजो बाई

अब तक मैं मुक्त पुरूषों पर ही बोला हूं। पहली बार एक मुक्त नारी पर चर्चा शुरू करता हूं। मुक्त पुरूषों पर बोलना आसान था। उन्हें में समझ सकता हूं-वे सजातीय है। मुक्त नारी पर बोलना थोड़ा कठिन है। वह थोड़ा अंजान, अजनबी रस्ता है। ऐसे तो पुरूष ओर नारी अंतरतम में एक ही है। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति बड़ी भिन्न-भिन्न है। उनके होने का ढंग उनके दिखाई पड़ने की व्यवस्था उनका व्यक्तित्व उनके सोचने की प्रक्रिया, न केवल भिन्न है बल्कि विपरीत भी है।

अब तक किसी मुक्त नारी पर न बोला। सोचा तुम थोड़ा मुक्त पुरूषों को समझ लो। तुम थोड़ा मुक्ति का स्वाद ले लो। तो मुक्त नारी को समझना थोड़ा आसान हो जाए।

जैसे सूरज की किरण तो सफेद है। पर प्रिज्म से गुजर कर सात रंगों में टुट जाती है। टूटने से पहले एक थी। मिलने के बाद फिर एक हो जाएगी। बीच में जो बड़ा फासला है रंगों का वह भेद मिटना नहीं चाहिए। भेद सदा बड़ा बना रहे, यहीं उचित ओर ठीक है। बल्कि उसी भेद में जीवन का रस है। लाल-लाल हो, हारा-हारा हो, तभी तो हरे वृक्षों में लाल फूल नजर आ सकेगें।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दोनों है। पुरूष और भीतर छीपी है। और स्त्री ओर स्त्री के भीतर छीपी है पुरूष। पुरूष का स्वभाव दूर दृष्टि है और औरत का स्वभाव निकट दृष्टि। सहजो के वचन बड़े नास्तिक के मालूम पड़ेंगे।

''राम तंजू पै गुरु न विसारू।''

छोड़ सकती हूं परमात्मा को पर गुरू को नहीं छोड़ सकती हूं। मुझे कुछ अड़चन नहीं राम को त्याग सकती हूं। लेकिन गुरु को छोड़ना असंभव है। सहजो अकेली स्त्री नहीं है जिस पर मैं बोलूगा। पर शुरू आत उससे होती है। क्योंकि उसमें स्त्री बड़े परिशुद्धरूप में प्रकट हुईहै।

सहजो को समझना है तो उसके वचनों में गहरे जाना होगा। उसके वचन टकसाल से निकले बिलकुल सीधे-साधे हे। सहजो कोई पंडित तो नहीं है। को ई कवित्रि तो नहीं है। वह छंदों से जीवन से मुक्त हे। हां बाँध ले तो उसका बड़ापन होगा। सहजो कोई आडम्बर नहीं करती। बात साफ-साफ कह दी है। कुछ छिपाया नहीं हे। और उस ढंग से कही है जो कभी नहीं कहीं गई। जब परमात्मा किसी में उतरता है तो हर बार नये ढंग से उतरता है। पुनरूक्ति परमात्मा को पसन्द नहीं है। इस लिए उधारी का तो कोई उपाय ही नहीं है।

सहजो का एक-एक पद अनूठा है। शब्दों के बीच में खाली जगह को पढ़ना पड़ेगा। पंक्तियों के बीच में रिक्त स्थान को पढ़ना पड़ेगा। वो जो खाली जगह है वह पर्याप्त प्रणाम है। बुद्धत्व के वचनों का। लेकिन सहजो के वचनों में खाली जगह का तुम नहीं पढ़ सकोगे। उस के लिए तुम्हें अपने अन्दर की खाली जगह को पढ़ना आना चाहिए। जिस दिन कोई अपने भीतर की खाली जगह को पढ़ लेता है उसी दिन वह बहार के शब्दों की खाली जगह को पढ़ सकता है लिख सकता है।

सहजो को ऐसा एक गुरु मिल गया जो अंदर से खाली हो गया था। उस के गुरु का नाम चरन दास था। पे बड़े सीधे-साधे आदमी थे। इतने सीधे-साधे की साधारण आदमी उन्हें पहचान भी नहीं सकता। वह यह जान ही नहीं सकता की मुझमें इनमें क्या भेद है। इतनी सरला और सादगी अभी तक किसी संत में नहीं उतरी। वरना तो जब परमात्मा उस में उतरता है। तब वह दूसरा ही हो जाता है। देखा न एक दुल्हन को शादी के दिन कैसा रूप चढ़ता है उसे आप लाखों में भी पहचान सकोगे की कोन दुल्हन है। एक ही बुद्धत्व जब उतरता है तब आदमी दूसरा ही हो जात है। पर चरन दास इतने सरल और सीधे थे की उनमें जरा भी भेद पकड़ न पाओगे। भेद तो पडा पर उसकी छाया बहार आप पकड़ नहीं सकते।

बह बहुत सीधे थे। बिलकुल सामान्य थे। और ध्यान रखना सामान्य में ही तुम असमान्य की झलक पा लो तभी तुम बचाए जा सकते हो। तभी तुम जाना की कोई करीब भी है दूर भी है। जो कभी-कभी इतने करीब होता है कि तुम्हें संदेह होने लगता है कि इसमें ओर हममें भेद क्या हे। शायद यह भी तो नहीं डूब जायेगा। तब हम कहां बच पायेंगे।

चरन दास बड़े सीधे-सरल आदमी थे। उन्होंने सहजो को बचाया। इस लिए सहजो उनके गीत गाए चली जा रही हे। वह कहती है हरि को भी त्यागना हो तो त्याग दूंगी। इससे कोई फर्कनहीं पड़ता। अरे हमारे गुरु रहे हम हरि को फिर पा लेंगे। पर गुरु को त्याग ना हो तो न त्याग सकूंगी।क्योंकि हरि ने तो हमेंमझधार में डाला, फेंक दिया डूबने के लिए और गुरु ने मझधार से बचाया। हरि ने तो माया में उलझा दियाथा हमें और गुरु ने छुडाया है। फिर भला गुरु को कैसे त्याग सकती हूं।

चरन दास का तो किसी को पता ही नहीं चलता। उनकी तो खबर ही नहीं आती। वह कोई तराशे हीरे तो नहीं थे वह तो अनघड़ थे शुद्ध जैसे अभी-अभी खादन से निकले है, उसपर धुल धमास सब जमा है। उन्हें कोन पहचान सकता था। यह तो सहजो की सहजता थी। उनकी पारखी आंखे थी। जो उन पर पड़ी और उनके रंग में रंग गई। और अपने गीतों में गुरु की महिमा गई। उनकी ही बाणी चरन दास की खबर देते है।

चरन दास की दो शिष्यायें थी। एक थी सहजो बाई और दुसरी थी दया बाई। ये चरन दास की दो आंखें है। जैसे किसी पाखी के दो पंख हो। इन दोनों ने चरण दास के गीत गाए है। तब लोगो को चरन दास की खबर लगी।

इन दोनों के स्वर इतने एक है कह आप दोनों में भेद नहीं कर पाओगे। एक होंगे ही क्योंकि एक ही गुरु ने दोनों को बचाया है। एक ही गुरु की छाया दोनों पर पड़ी ही। एक ही गुरु का ह्रदय दोनों में धड़क रहा है। एक ही प्रेम की रस धारा दोनों में प्रवाहित हो रही है। उसी उर्जा ने जीवन नये आयाम दिये उस बगिया को महकायाहै। फूल खिला ये हे। भँवरों न गुंजान की है,रौनक दी ही।

इस लिए दोनों एक ही प्राण की दो स्पंदन है। इस लिए जब में सहजो पर बोल रहा हूं तो इस प्रवचन माला का नाम दिया है—"बिन धन परत फुहार" ये शब्द दया बाई के है। जब दया पर मैं बोलूगा, तो जो श्रंखला का नाम रखा है उसमें शब्द सहजो के है—"जगत तरैया भोर की" जैसे सुबह का डुबता तार अब गया की तब गया। ऐसा ये जगत है। इसलिए दोनों के शब्द मैंने – सहजो बाई के लिए दया का शब्द उपयोग किया है, दया के लिए सहजो का करूंगा।

–ओशो

बिन घन परत फुहार

दया बाई

संत का अर्थ है, प्रभु ने जिसके तार छेड़े। संतत्व का अर्थ है, जिसकी वीणा अब सूनी नहीं; जिस पर प्रभु की अंगुलियां पड़ीं। संत का अर्थ है, जिस गीत को गाने को पैदा हुआ था व्यक्ति, वह गीत फूट पड़ा; जिस सुगंध को ले कर आया था फूल, वह सुगंध हवाओं में उड़ चली। संतत्व का अर्थ है, हो गए तुम वही जो तुम्हारी नियति थी। उस नियति की पूर्णता में परम आनंद है स्वभावतः।

बीज जब तक बीज है तब तक दुखी और पीड़ित है। बीज होने में ही दुख है। बीज होने का अर्थ है, कुछ होना है और अभी तक हो नहीं पाए। बीज होने का अर्थ है, खिलना है और खिले नहीं; फैलना है और फैले नहीं; होना है और अभी हुए नहीं। बीज का अर्थ है, अभी प्रतीक्षा जारी है; अभी राह लंबी है; मंजिल आई नहीं।

संतत्व का अर्थ है, मनुष्य वही हो गया जो होने को था; बीज नहीं है, अब फूल है; खिल गया सहस्रदल कमल; फूल जैसा आनंदित मालूम पड़ता है। आनंद क्या है फूल का? अब होने को कुछ और बाकी न रहा। अब जाने को कोई जगह न रही। यात्रा पूरी हुई, विराम आ गया। अब शांत होने की संभावना है। क्योंकि जब तक कहीं जाना है, अशांति रहेगी। जब तक कुछ होना है, योजना करनी होगी। और जब तक कुछ होना है तब तक सफलता-असफलता पीछा करेगी। पता नहीं हो पाए, न हो पाए! शंका-कुशंकाएं घेरेंगी...हजार बातें। चित्त डावांडोल रहेगा। चित्त थिर न हो पाएगा। कौन सी राह चुनें! कहीं भूल तो न हो जाएगी! जो राह चुन रहे हैं वह कहीं ऐसा तो न हो कि राह ही सिद्ध न हो! जो कर रहे हैं, उससे नियति का मेल बैठेगा कि नहीं बैठेगा!...तो संदेह जीता है और संदेह भीतर जलता है और संदेह विषाद से भरता है।

तिब्बत में कहावत है, अगर पहाड़ का रास्ता पूछना हो तो उससे पूछो जो रोज पहाड़ पर आता-जाता है। जो पहाड़ पर कभी गए नहीं, घाटी में सदा रहे, चाहे कितने ही नक्शे उन्होंने पढ़े हों और चाहे कितने ही शास्त्रों का उन्हें ज्ञान हो, उनसे मत पूछना अन्यथा भटकोगे। उससे पूछो जो रोज आता-जाता है, चाहे बड़ा पंडित न हो। डाकिया, जो रोज पहाड़ चढ़ता-उतरता है, ले जाता है डाक, लाता है डाक, बड़ा पंडित न हो, नक्शे उसके पास न हों, उससे पूछ लेना।

अब यह दयाबाई कोई बहुत बड़ी ज्ञानी नहीं हैं–ज्ञानी पंडित के अर्थ में। शास्त्रों की ज्ञाता नहीं हैं। फिर भी मैंने चुन लिया है कि उन पर बोलूंगा। बड़े पंडितों को छोड़ कर उनको चुन लिया है कि उन पर बोलूंगा। पढ़ी-लिखी भी होंगी, यह भी संदिग्ध है। लेकिन, उस रास्ते पर आईं-गईं, उस रास्ते से परिचित हैं। उस रास्ते की धूल खूब खाई। उस रास्ते की धूल में रंगी हैं। उस रास्ते पर चल-चल कर, उस रास्ते पर यात्रा कर-करके सब भांति अपनी तरफ से शून्य हो गई हैं। अब तो उसी रास्ते की सुगंध है। इन छोटे-छोटे पदों में वही सुगंध प्रगट हुई है।

तीन तरह के कवि होते हैं। एक, जिसको परमात्मा की झलक स्वप्न में मिलती है। जिनको हम साधारणतः कवि कहते हैं–कि सुमित्रानंदन पंत कि मिल्टन कि एजरा पाउंड–जिनको हम कवि कहते हैं–कि सुमित्रानंदन पंत कि महादेवी। इनको स्वप्न में झलक मिलती है। इन्होंने जाग कर परमात्मा नहीं देखा है; नींद-नींद में, सोए-सोए कोई भनक पड़ गई है कान में। उसी भनक को ये गीत में बांधते हैं। फिर भी इनके गीत में माधुर्य है। इनके जीवन में परमात्मा नहीं है। कभी किसी गुलाब के फूल में थोड़ी सी झलक मिली है, आहट मिली है; कभी चांद में, तारों में आहट मिली है; कभी किसी नदी की, झरने कलकल में आहट मिली है; कभी सागर की उत्तुंग तरंगों में उसका रूप झलका है, लेकिन सीधा-सीधा दर्शन नहीं हुआ है। यह सब सोए-सोए हुआ है। ये नींद-नींद में हैं। ये मूर्च्छित हैं। मगर फिर भी इनके काव्य में अपूर्व रस है।

काव्य तो परमात्मा का ही है–सभी काव्य परमात्मा का है, क्योंकि सभी सौंदर्य उसका है। काव्य का अर्थ हुआ, सौंदर्य की स्तुति। काव्य का अर्थ हुआ, सौंदर्य की प्रशंसा, सौंदर्य का यशोगान, सौंदर्य की महिमा का वर्णन। काव्य यानी सौंदर्यशास्त्र। और सारा सौंदर्य उसका है! इनको कहीं-कहीं उसकी झलक मिली है; कहीं-कहीं उसके पदचिह्न पता चले हैं। जाग कर नहीं, क्योंकि जागने के लिए तो इन्होंने कुछ भी नहीं किया। जागने के लिए तो ये रोए नहीं, जागने के लिए तो ये तड़पे नहीं। जागता तो केवल भक्त है।

तो दूसरे तरह का कवि है, यह है भक्त, संत। उसने सौंदर्य को नहीं देखा है, उसने सुंदरतम को देखा है। उसने सिर्फ भनक नहीं देखी है, उसने मूल को देखा है। ऐसा समझो कि कोई गीत गाता है किसी पहाड़ पर और घाटियों में उसकी आवाज गूंजती है। कवियों ने उसकी गूंज सुनी है, संतों ने सीधे संगीतज्ञ को देखा है। कवियों ने दूर से संगीत की उठती गूंज घाटियों में है, अनुगूंज, प्रतिध्वनि, उसको पकड़ा है; संतों ने सीधा-सीधा उसके दरबार में बैठ कर पकड़ा है। स्वभावतः उनकी वाणी का बल अपूर्व है। कवि कलात्मक रूप से ज्यादा कुशल होता है, क्योंकि काव्य उसका रुझान है। संत कलात्मक रूप से उतना कुशल नहीं होता, क्योंकि कविता की कला उसने कभी नहीं सीखी है। तो काव्य की दृष्टि से शायद संतों के वचन बहुत कविता न हों, लेकिन सत्य की दृष्टि से परम काव्य हैं।

.... फिर एक तीसरा कवि होता है जो न तो संत है और न कवि है; जिसको केवल काव्य-शास्त्र का पता है; अलंकार, मात्रा, इस सबका पता है। वह उस हिसाब से तुकबंदी कर देता है। न उसने सत्य को देखा है, न सत्य की छाया देखी, लेकिन भाषाशास्त्र को जानता है, व्याकरण को जानता है; तुकबंद है, वह तुकबंदी बांध देता है।

दुनिया में सौ कवियों में नब्बे तुकबंद होते हैं। कभी-कभी अच्छी तुकबंदी बांधते हैं। मन मोह ले, ऐसी तुकबंदी बांधते हैं। लेकिन तुकबंदी ही है, प्राण नहीं होते भीतर। कुछ अनुभव नहीं होता भीतर। ऊपर-ऊपर जमा दिए शब्द, मात्राएं बिठा दीं, संगीत और शास्त्र के नियम पालन कर लिए। सौ में नब्बे तुकबंद होते हैं। बाकी जो दस बचे उनमें नौ कवि होते हैं, एक संत होता है।

दया उन्हीं सौ में से एक भक्तों और संतों में है। दया के संबंध में कुछ ज्यादा पता नहीं है। भक्तों ने अपने संबंध में कुछ खबर छोड़ी भी नहीं। परमात्मा का गीत गाने में ऐसे लीन हो गए कि अपने संबंध में खबर छोड़ने की फुरसत न पाई। नाम भर पता है। अब नाम भी कोई खास बात है! नाम तो कोई भी काम दे देता। एक बात जरूर पता है, गुरु के नाम का स्मरण किया है–प्रभु के गीत गाए हैं और गुरु के नाम का स्मरण किया है। गुरु थे चरणदास। दो शिष्याएं–सहजो और दया। सहजो पर तो हमने बात की है। चरणदास ने कहा है, जैसे मेरी दो आंखें।

दोनों उनकी सेवा में रत रहीं, जीवन भर। गुरु मिल जाए तो सेवा साधना है; पास होना काफी है। कोई और साधना की हो, इसकी भी कुछ खबर नहीं है। मगर इतना पर्याप्त है। अगर किसी को मिल गया है, तो उसके पास रहना काफी है। बगीचे से गुजर जाओ तो तुम्हारे वस्त्रों में फूलों की गंध आ जाती है। जिसने सत्य को जाना, उसके पास रह जाओ तो तुम्हारे प्राणों में गंध आ जाती है। जिसने सत्य को जाना, उसके पास रह जाओ तो तुम्हारे प्राणों में गंध आ जाती है। सुगंध तैरती है, फैलती है। तो दबाती रही होंगी इस गुरु के चरण, बनाती होंगी भोजन गुरु के लिए, भर लाती होंगी पानी ऐसे कुछ छोटे-मोटे काम करती रही होंगी।

दोनों के पदों में बहुत भेद भी नहीं है। क्योंकि जब गुरु एक हो तो जो बहा है दोनों में, उसमें बहुत भेद नहीं हो सकता है। एक ही घाट का पानी पीआ, एक ही स्वाद पाया। दोनों बेपढ़ी-लिखी मालूम होती हैं। कभी-कभी बेपढ़ा-लिखा होना भी सौभाग्य होता है। पढ़े-लिखे अपने पढ़े-लिखे होने के कारण झुक नहीं पाते। पढ़ा-

लिखा होना अहंकार को जन्म देता है। मैं कुछ हूं! पढ़ा-लिखा हूं, तो कैसे आसानी से झुक जाऊं? गैरपढ़ी-लिखी हैं और उसी गांव से आती हैं, उसी इलाके से आती हैं जहां से मीरा आई।

अक्सर ऐसा होता है, कभी एक क्षेत्र में एक आत्मा पैदा हो जाए, प्रभु का दर्शन हो जाए, तो उस क्षेत्र में चिनगारियां छूट जाती हैं। उस क्षेत्र की हवा संक्रामक हो जाती है। एक लहर दूसरी लहर को उठा देती है। एक लहर के संग-साथ दूसरी लहर जग जाती है, दूसरी के साथ तीसरी लहर जग जाती है। संतत्व के भी तूफान आते हैं। कभी-कभी तूफान आते हैं। जैसे बुद्ध और महावीर के समय में तूफान आया। सारी दुनिया में संतत्व ने ऐसी ऊंचाई ली जैसी कि इसके पहले कभी नहीं ली थी और फिर पीछे भी नहीं ली। लाखों लोग संतत्व की दिशा में बह गए; आंधी पर सवार हो गए। एक व्यक्ति का संत हो जाना जैसे किसी शृंखला की शुरुआत होती है। जिसको वैज्ञानिक "चेन रिएक्शन' कहते हैं। जैसे कि एक घर में आग लग जाए तो पूरा मुहल्ला खतरे में हो जाता है। लपटें एक घर से दूसरे घर में छलांग लगा जाती हैं, दूसरे घर से तीसरे घर में छलांग लगा जाती हैं। एक "चेन' बन जाती है, एक शृंखला बन जाती है। अगर घर बहुत पास-पास हों तो पूरा गांव भी जल कर राख हो सकता है।

संतत्व भी ऐसा ही घटता है। एक हृदय में प्रभु की आग लग गई, एक हृदय प्रभु की अग्नि से दीप्त हो गया, लपटें छलांग लगाने लगती हैं–अदृश्य लपटें–लेकिन जो भी करीब आ जाते हैं उन पर लपटें छलांग लगा जाती हैं। तो मीरा जिस इलाके से आई उसी इलाके से दया और सहजो भी आईं। वह इलाका धन्य है, क्योंकि तीन स्त्री संतों को एक-साथ जन्म देने का सौभाग्य किसी और इलाके का नहीं है।

दोनों के पद एक ही गुरु के चरणों में पैदा हुए, दोनों के पदों में एक ही रंग है, एक ही राग है। थोड़े-बहुत भेद हैं, वह व्यक्तित्व के भेद हैं। भेद इतने कम हैं, इसलिए मैंने पहली शृंखला जो सहजो पर दी, उसका नाम रखा था दया के पद के आधार पर दया का पद है–

बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार-निहार।।

पद थे सहजो के, नाम दिया था दया की वाणी से। इस नई शृंखला को, जिसे हम आज शुरू कर रहे हैं, पद हैं दया के, नाम दे रहा हूं सहजो की वाणी से–

जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अंजुलि माहिं।।

...जैसे सुबह का आखिरी तारा देर तक टिकता नहीं। जगत तरैया भोर की! बस सब तारे डूब गए, चांद डूबा, सब तारे डूबे, सूरज उगने के करीब आने को है, भोर होने लगी, आखिरी तारा टिमटिमाया-टिमटिमाया कि गया। तुम ठीक से देख भी नहीं पाते कि अभी था और अभी नहीं हो गया। क्षण भर पहले था और क्षण भर बाद विलीन हो गया। जगत तरैया भोर की: ऐसा है संसार, सुबह के तारे जैसा! अभी है, अभी नहीं। इस पर बहुत भरोसा मत कर लेना। उसे खोजो जो सदा है, जो ध्रुवतारे की भांति है; सुबह के भोर के तारे की तरह नहीं। जो अडिग है; शाश्वत, सनातन है; जो सदा था, सदा है, सदा रहेगा–उसकी शरण गहो। क्योंकि उसकी शरण गह कर ही तुम मृत्यु के पार जा सकोगे। अब सुबह के तारों को कोई पकड़ ले तो कितनी देर सुख! जिसको तुम पकड़ने जा रहे हो वह पानी का बुलबुला है; पकड़ भी नहीं पाओगे कि फूट जाएगा। जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं। तुम लाख करो उपाय ठहराने का, ठहरेगा नहीं। और हम यही कर रहे हैं। सारा संसार यही कर रहा है। क्या-क्या पकड़ते हैं हम? संबंध, राग, प्रेम, पति-पत्नी, बेटे-बेटी, धन-दौलत, यश, पद, प्रतिष्ठा। जगत तरैया भोर की! इधर तुम पकड़ भी न पाओगे कि गया। तुम पकड़ने में जितना समय खो रहे हो, उतने

समय में वह बीत ही जाएगा। ये लहरें पकड़ में आती नहीं। संसार का स्वभाव अस्थिर है, चंचल है। यहां जो पकड़ना चाहेगा वह दुखी होगा।

–ओशो

जगत तरैया भोर की-ओशो

धनी धर्मदास

धनी धरमदास की भी ऐसी ही अवस्था थी। धन था, पद थी, प्रतिष्ठा थी। पंडित-पुरोहित घर में पूजा करते थे। अपना मंदिर था। और खूब तीर्थयात्रा करते थे। शास्त्र का वाचन चलता था, सुविधा थी बहुत, सत्संग करते थे। लेकिन जब तक कबीर से मिलन न हुआ तब तक जीवन नीरस था। जब तक कबीर से मिलना न हुआ तब तक जीवन में फूल न खिला था। कबीर को देखते ही अड़चन शुरू हुई, कबीर को देखते ही चिंता पैदा हुई, कबीर को देखते ही दिखाई पड़ा कि मैं तो खाली का खाली रह गया हूं। ये सब पूजा-पाठ, ये सब यज्ञ-हवन, ये पंडित और पुरोहित किसी काम नहीं आए हैं। मेरी सारी अर्चनाएं पानी में चली गई हैं। मुझे मिला क्या? कबीर को देखा तो समझ में आया कि मुझे मिला क्या? मिले हुए को देखा तो समझ में आया कि मुझे मिला क्या?

इसलिए तो लोग जिसे मिल गया है उसके पास जाने से डरते हैं। क्योंकि उसके पास जाकर कहीं अपनी दीनता और दरिद्रता दिखाई न पड़ जाए। लोग उनके पास जाते हैं जो तुम जैसे ही दरिद्र हैं। उनके पास जाने से तुम्हें कोई अड़चन नहीं होती, चिंता नहीं होती, संताप नहीं होता।

अब तुम थोड़ा समझना, आमतौर से लोग साधु-संतों के पास संतोष पाने जाते हैं, संताप पाने नहीं। लोग कहते हैं संतुष्ट नहीं हैं हम इसलिए तो जाते हैं। सांत्वना चाहिए। संताप तो वैसे ही बहुत है। लेकिन मैं तुमसे कहूं कि सच्चे साधु के पास जाकर तुम पहली दफा संताप से भरोगे। पहली दफा तुम्हारी जिंदगी में असली चिंता का जन्म होगा। पहली दफा बवंडर उठेगा। पहली दफा आंख खुलेगी कि अब तक जो किया, वह व्यर्थ है। और जो सार्थक है वह तो अभी शुरू भी नहीं हुआ। स्वभावतः प्राण कंप जाएंगे, छाती हिल जाएगी। फिर छाती चाहिए आगे बढ़ने को। लेकिन फिर पीछे भी नहीं लौटा जा सकता है। एक बार किसी ज्ञानी से आंख मिल जाए तो फिर पीछे भी लौटा नहीं जा सकता। इसलिए लोग ज्ञानियों से आंख चुराते हैं, आंख बचाते हैं। जिनके पास कुछ भी नहीं है उनके चरण छूने में कोई अड़चन नहीं है। ज्ञानियों के पास लोग सम्हल-सम्हल कर जाते हैं। उनसे लगाव लगाना खतरे का सौदा है।

जिस साधु के पास जाकर तुम्हें सांत्वना मिलती हो समझ लेना, वह साधु ही नहीं है। साधु सांत्वना देने को थोड़े ही होते हैं! सांत्वना से तो तुम जैसे हो वैसे के वैसे रहोगे; मलहम-पट्टी हो गई। दर्द था थोड़ा, वह भी भूल गया। घाव था, उसे भी छिपा दिया। चिंताएं थीं, उनको भी हल कर दिया। कम से कम ऐसा अहसास दिला दिया कि हल हो गईं चिंताएं। असली साधु के पास तुम्हारी चिंताएं पहली दफा उमगती हैं। पहली दफा फूट पड़ता है तुम्हारा सारे भीतर का सांत्वना का बना-बनाया संसार, सब बिखर जाता है। तुम पहली दफा अपने को खंडहर की भांति देखते हो। तुम्हारे हाथ में जो धन है वह कचरा; तुम्हारे पास जो ज्ञान है वह कचरा; तुम्हारे पास जो चरित्र है वह दो कौड़ी का। तुम्हारा आचरण, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारा यश किसी मूल्य का नहीं है। स्वभावतः आदमी घबड़ा जाएगा। लेकिन उसी घबड़ाहट से क्रांति की शुरुआत होती है।

साधु के पास सांत्वना नहीं मिलती, संक्रांति मिलती है। और क्रांति हो जाए तो एक दिन सांत्वना आती है। लेकिन वह सांत्वना नहीं है फिर, वह परम संतोष है; वह परितोष है। वह किसी के दिए नहीं आता, वह तुम्हारे भीतर जब कमल खिल जाता है तो सब खिल जाता है। वह ऊपर से आरोपित नहीं होता।

धनी धरमदास खोजते थे। तीर्थ जाते, साधु-सत्संग करते। खूब सांत्वना बटोरते थे। फिर मथुरा में सौभाग्य से–उस दिन तो दुर्भाग्य ही लगा था–कबीर से मिलना हो गया। कबीर ने तो झंझावात की तरह सब झकझोर दिया। मूर्ति मूढ़ता मालूम होने लगी। सगुण की उपासना अज्ञान मालूम होने लगा। वे पूजा-पाठ, वे

यज्ञ-हवन, सब अंधविश्वास थे। कबीर की चोट तो ऐसी पड़ी कि धरमदास तिलमिला गए। मथुरा छोड़ कर भाग गए। अपने घर चले गए वापस। बांधवगड़ में उनका घर था।

लेकिन कबीर जैसे व्यक्ति की चोट पड़ जाए तो तुम भाग नहीं सकते। कहीं भागो, कबीर तुम्हारा पीछा करेंगे। कहीं जाओ, तुम्हारे सपनों में छाया आएगी। आदमी, आदमी जैसा होना चाहिए वैसा पहली दफा देखा था, भूलो भी तो कैसे भूलो! बड़ी बेचैनी हो गई। प्रार्थना फिर भी करते लेकिन प्रार्थना में रस जाता रहा, उत्साह जाता रहा। मंदिर में थाली भी सजाते, पूजा भी उतारते लेकिन हाथों में प्राण न रहे। शास्त्र भी सुनते, लेकिन अब दिखाई पड़ने लगा कि सब कूड़ा-करकट है। दूसरों के उत्तर अपने उत्तर नहीं हैं; नहीं हो सकते हैं।

कबीर ने ऐसी चोट मारी कि नींद लेना मुश्किल हो गया। उदास रहने लगे, चिंता से भरे रहने लगे। और फिर यह भी चिंता पकड़ी कि एक ज्ञानी के पास से भाग आया। कमजोर हूं, कायर हूं। फिर कबीर की तलाश में जाना ही पड़ा। काशी में जाकर कबीर से मिले। कबीर से मिलने की घटना उन्होंने अपनी किताब 'अमर सुखनिधान' में गाई है। वह घटना बड़ी प्यारी है। वे वचन धनी धरमदास के समझने जैसे हैं।

धरमदास हरसित मन कीन्हा

बहुर पुरुस मोहि दरसन दीन्हा

जिसको देखा था मथुरा में फिर वही पुरुष का दर्शन हुआ। फिर वही ज्योति, फिर वही आनंद, फिर वही नृत्य।

धरमदास हरसित मन कीन्हा

मथुरा से तो लौट गए थे बहुत चिंता लेकर, उद्विग्न होकर।

यहां रोज यह घटता है। कभी कोई आ जाता है भूला-चूका तो उद्विग्न हो जाता है, परेशान हो जाता है। बस जो परेशान हो गया वह आज नहीं कल हर्षित भी हो सकता है। जो यहां से उद्विग्न होकर लौटा, वह आज नहीं कल आएगा। आना ही पड़ेगा। क्योंकि यहां से जो बीमार होकर लौटा उसका इलाज फिर कहीं और नहीं हो सकता।

जाना ही पड़ा कबीर के पास। कहाः 'धरमदास हरसित मन कीन्हा।' लेकिन इस बार कबीर को देख कर बड़ा हर्ष हुआ। क्या हो गया? वह जो चार-छह महीने भगोड़ेपन में बिताए कबीर से, उन चार-छह महीनों ने सारी धूल झाड़ दी। कबीर ने जो कहा था उसका सत्य दिखाई पड़ा। उसका स्वयं साक्षात्कार हुआ। आधी यात्रा पूरी हो गई।

व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखाई पड़ जाए तो सार्थक को सार्थक की तरह देखना सुगम हो जाता है। व्यर्थ को जब तक हम सार्थक मानते हैं तब तक सार्थक को देखें तो अड़चन होती है। झूठ को सच माना है, सच सामने खड़ा हो जाए तो बेचैनी होती है, क्योंकि जिसे तुमने सच माना था वह झूठ होने लगता है। इतने दिन उसमें लगाए, इतना धन-मन, समय लगाया। तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ हो जाता है उसमें। अगर कोई व्यक्ति तीस साल तक एक बात को पकड़े रहा, फिर अचानक कोई और बात सुनाई पड़े जो तीस साल को गलत करती हो, तो बड़ी हिम्मत चाहिए कि मेरे तीस साल व्यर्थ गए इसे स्वीकार कर लूं। आदमी का मन होता है, मेरे और तीस साल व्यर्थ गए? मैं इतना मूढ़ हूं क्या? आदमी रक्षा करता है, बचाने की कोशिश करता है।

इन चार-छह महीनों में धरमदास ने अपने को बचाने की सब तरह कोशिश की। लेकिन कबीर का टेंडपा ऐसा है कि पड़ जाए तो सिर खुल गया था। चोट भारी थी। सब दिखाई पड़ने लगा। जो कबीर ने मथुरा में कहा था, वह दिखाई पड़ने लगा कि मूर्ति पत्थर है, किसकी पूजा कर रहे हो? ये पंडित-पुजारी, जिनकी तुम सुन रहे हो, खुद दो कौड़ी के नौकर हैं। इन्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। ये दूसरों के कान फूंक रहे हैं, इनके कान अभी

परमात्मा ने खुद नहीं फूंके हैं। ये दूसरों को मार्ग दे रहे हैं, इन्हें खुद मार्ग मिला नहीं है। इनके हृदय में अभी फूल खिला नहीं। इनके पास खुद भी सुगंध नहीं। ये सत्य बांटने चल पड़े हैं और सत्य की इन्हें कोई भी खबर नहीं है। यह छह महीने तक जो-जो कबीर ने कहा था, एक-एक बात सही मालूम पड़ी। आधी बात तो पूरी हो गई। अब कबीर की बात सुन कर चोट लगने का कोई कारण नहीं था, अब तो हर्षित होने की बात थी।

धरमदास हरसित मन कीन्हा

बहुर पुरुस मोहि दरसन दीन्हा

एक दिन जिससे भाग गए थे भयभीत होकर, आज उसके पास वापस लौटे हैं और इसलिए आनंदित हैं कि कबीर ने उन्हें पुनः दर्शन दिया। कबीर ने फिर वही झलक दी। कबीर ने वही झरोखा फिर खोला।

मन अपने तब कीन्ह बिचारा

इनकर ज्ञान महाटकसारा

इस आदमी के पास कुछ है। असली सिक्के हैं। टकसाल से निकले सिक्के हैं। मैं झूठे नकली सिक्कों में पड़ा रहा हूं।

इनकर ज्ञान महाटकसारा

दोई दिन के करता कहाई

इनकर भेद कोऊ नहीं पाई

आज पहली दफा प्रेम से भर कर, हर्ष से भर कर कबीर को देखा। पहली बार तो झिझक से देखा होगा, डरते-डरते देखा होगा, अपने को दूर-दूर रखा होगा, बीच में फासला रखा होगा, दीवाल रखी होगी। अपनी धारणाएं, अपने पक्षपात, अपना विचार, अपना सिद्धांत, उन सबकी दीवाल स्वभावतः रही होगी। उसके पार से कबीर को देखा था। आज सब हटा कर देखा। छह महीने में वे सब दीवालें अपने आप हट गईं।

गुरु मिल जाए, उसकी भनक भी पड़ जाए कान में तो फिर मिथ्या गुरु की पकड़ ज्यादा देर नहीं चल सकती। थोड़ी-बहुत देर तुम अपने को धोखा दे लो, दे लो।

इनकर भेद कोऊ नहीं पाई

आज पहली दफा आंख भर कर देखा। असीम था सामने। इस छोटी सी देह में जैसे द्वार था असीम का; जैसे अगम का मार्ग खुलता था।

इतना कह मन कीन्ह बिचारा

तब कबीर उन ओर निहारा

पहले कबीर ने जो बातें कही थीं, कह दी थीं। लेकिन गुरु निहार कर तो शिष्य की तरफ तभी देखता है, जब शिष्य हर्ष से प्रमुदित होकर गुरु के पास बैठता है।

जुन्नैद ने कहा है कि मैं अपने गुरु के पास था। तीन साल तक तो उन्होंने मेरी तरफ देखा ही नहीं। बैठा रहता उनके पास मगर वे मेरी तरफ न देखते। और लोग आते, और बातें होतीं, मैं बैठा रहता, बैठा रहता। तीन साल बाद उन्होंने मेरी तरफ निहारा। मैं धन्यभाग हो गया। फिर तीन साल तक ऐसे ही बैठा रहा, बैठा रहा। फिर तीन साल के बाद, उन्होंने मेरी तरफ देख कर मुस्कुराया। फिर और तीन साल बीत गए बैठे-बैठे। फिर एक दिन उन्होंने मुझे छुआ, मेरे कंधे पर हाथ रखा। और तीन साल बीत गए तब उन्होंने अपने गले से मुझे लगाया, आलिंगन किया। बारह साल गुरु के पास बैठे-बैठे आलिंगन की घड़ी आती है।

तब कबीर उन और निहारा

गुरु देखता ही तब है...इस बात को समझना। गुरु के देखने से मेरा मतलब यह नहीं है कि कबीर पहली दफा जब धरमदास को देखे तो आंख बंद रखे होंगे। कि कबीर को नहीं देखा, कि कबीर को दिखाई नहीं पड़े होंगे धरमदास। देखा था, बस यह ऊपर की आंख से देखा था। एक और आंख है गुरु की, उस आंख से तो कोई तभी देखा जाता है जब कोई तैयार हो जाता है। वह आंख तो तुम्हारे भीतर तभी उतर सकती है जब हर्ष तुम्हारे भीतर द्वार खोल दे। तुम्हारे भीतर चिंताएं खड़ी हैं, बेचैनियां खड़ी हैं, फिकरें खड़ी हैं, सही-गलत का हिसाब खड़ा है, संदेह खड़े हैं, अश्रद्धा खड़ी है, अनास्था खड़ी है, तो गुरु अपनी वह आंख खराब नहीं करता। उस आंख की अभी तुम्हें जरूरत नहीं है। उस आंख की जब जरूरत होती है तभी वह आंख तुममें डाली जाती है। वही आंख वास्तविक दीक्षा है। वही है गुरु के साथ जुड़ जाना। उसी आंख एक की झलक, और जोड़ बन जाता है। फिर जोड़ नहीं टूटते।

इतना कह मन कीन्ह बिचारा

इस हर्ष का विचार ही उठा था, यह आनंद का भाव ही उठा था,

तब कबीर उन ओर निहारा

आओ धरमदास पगु धारो

कबीर ने कहा धरमदास को–

आओ धरमदास पगु धारो

चिंहुक-चिंहुक तुम काहे निहारो

ऐसे दूर-दूर से, चिंहुक-चिंहुक! ऐसे डरते-डरते, ऐसे भयभीत...!

आओ धरमदास पगु धारो

कबीर ने कहा, अब रखो पग। यह खुला मार्ग। मैं हूं मार्ग, रखो पग।

आओ धरमदास पगु धारो

अब दूर खड़े रहने से न चलेगा। पहली दफा तो कबीर ने खंडन किया था कि मूर्ति गलत, कि पूजा गलत, कि प्रार्थना गलत, कि शास्त्र गलत। पहली दफे तो सारे आकार और सगुण की धारणा का खंडन ही खंडन किया था। इस बार निमंत्रण दिया।

आओ धरमदास पगु धारो

चिंहुक-चिंहुक तुम काहे निहारो

अब दूर रहने की कोई जरूरत नहीं। अब दूर-दूर से देखने की कोई जरूरत नहीं। आ जाओ पास, निकट आ जाओ। इस निकट आ जाने का नाम सत्संग है। और धन्यभागी हैं वे जिन्हें गुरु बुला ले और कहे–

आओ धरमदास पगु धारो

चिंहुक-चिंहुक तुम कहो निहारो

कहिए छिमा कुसल हो नीके

कबीर कह रहे हैं धरमदास से,

कहिए छिमा कुसल हो नीके?

सब ठीक-ठाक है?

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

कितने-कितने समय से तुम्हारी सूरत की याद कर रहे थे।

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

यह मत सोचना कि शिष्य ही गुरु को खोजता है। गुरु शिष्य से ज्यादा खोजता है। शिष्य की खोज तो अंधी है, अंधेरी है। शिष्य को तो पता नहीं ठीक-ठीक क्या खोज रहा है। गुरु को पता है। इजिप्त के पुराने शास्त्र कहते हैं, जब शिष्य तैयार होता है तो गुरु उसे खोज लेता है। शिष्य तो कैसे खोजेगा? शिष्य तो कैसे पहचानेगा कौन गुरु है? गुरु से मिलन भी हो जाएगा तो भी प्रत्यभिज्ञा नहीं होगी। गुरु सामने भी खड़ा होगा तो भरोसा नहीं आएगा। हजार बाधाएं पड़ेंगी, हजार चिंताएं अड़चन डालेंगी। हजार संदेह उठेंगे। मैं भी इस बात से राजी हूं कि पहला कदम गुरु उठाता है, शिष्य नहीं। पहला निमंत्रण गुरु देता है।

आओ धरमदास पगु धारो

चिंहुक-चिंहुक तुम काहे निहारो

कहिए छिमा कुसल हो नीके?

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

मथुरा में देखा था धरमदास को। तब धरमदास तो नहीं पहचान सका था अपने गुरु को लेकिन गुरु अपने शिष्य को पहचान लिया था। देखा होगा बीज धरमदास का। देखी होगी संभावना इसके वृक्ष बन जाने की, किसी दिन आकाश में फूल खिल जाने की। देखी होगी इसकी अनंत संभावना। गुरु उसी दिन चुन लिया था। धरमदास को तो उस दिन पता भी नहीं था। धरमदास को तो कुछ पता हो भी नहीं सकता था।

सुरत तुम्हार बहुत हम झींके

धरमदास हम तुमको चीन्हा

कबीर कहते हैं कि हमने तुम्हें पहचाना।

बहुत दिनन में दरसन दीन्हा

इतनी देर लगाई और हम राह देखते और राह देखते।

बहुत ज्ञान कहसीं हम तुमहीं

बहुर के तुम अब चीन्हों हमहीं

हम तो तुम्हें चीन्ह लिए, अब तुम हमें चीन्हो। हम तो तुम्हें पहचान लिए, अब तुम हमें पहचानो। गुरु पहले पहचानता है तभी शिष्य के पहचानने की संभावना प्रगाढ़ होती है। गुरु पहले चुनता है, तब शिष्य चुनता है।

भली भई दरसन मिले बहुरि मिले तुम आए

जो कोऊ मोंसे मिले सो जुग बिछुरि न जाए

कबीर कहते हैं, अच्छा हुआ, भली भई दरसन मिले! आ गए तुम। ये बड़े सम्मान से कहे गए वचन हैं। सदगुरु के मन में शिष्य के प्रति बड़ा सम्मान होता है। और जिस गुरु के मन में शिष्य के प्रति सम्मान न हो वह गुरु ही नहीं; उसे पता ही नहीं। क्योंकि शिष्य और गुरु में भेद क्या है? भेद शिष्य की तरफ से होगा, गुरु की तरफ से कुछ नहीं हो सकता। गुरु तो जानता है, जो मेरे भीतर विराजमान है वही शिष्य के भीतर विराजमान है। मेरे भीतर जाग गया, शिष्य के भीतर सोया है। लेकिन सोने-जागने से क्या फर्क पड़ता है? स्वभाव तो एक है।

शिष्य को भेद पता चलता है कि मैं कहां, गुरु कहां! मैं अंधेरा-भरा, गुरु रोशन! मुझे कुछ मिला नहीं, गुरु को सब मिला! लेकिन गुरु को तो यह दिखाई पड़ता है न, कि जैसा मुझे मिला वैसा ही तुझे अभी मिल सकता है, इसी वक्त मिल सकता है। तेरी अपनी संपदा है। कहीं मांगने नहीं जाना। कहीं खोजने नहीं जाना। अभी परदा

उठा, अभी भीतर झांक और अभी पा ले। क्षण भर की भी देर करने की जरूरत नहीं है। इसलिए गुरु के मन में शिष्य के प्रति उतना ही सम्मान होता है, जितना शिष्य का गुरु के प्रति होता है।

भली भई दरसन मिले बहुरी मिले तुम आए

फिर से तुम आ गए! मैं राह देखता, मैं प्रतीक्षा करता था।

जो कोऊ मोंसे मिले...

और जो मुझसे मिल जाता है–

...सो जुग बिछुरि न जाए।

फिर बिछुड़ना संभव नहीं है। अब तुम आ गए तो आओ ही मत, मिल ही जाओ ताकि फिर बिछुड़ना न हो सके।

और ऐसा ही हुआ। धरमदास फिर न लौटे। लौट कर नहीं देखा। कायर ही लौट कर देखते हैं। हिम्मतवर आदमी आगे देखता है, पीछे नहीं देखता। वहीं से सब लुटवा दिया। घर भी लौट कर नहीं गए। लुटाने को भी नहीं गए। अब उसके लिए भी क्या जाना! वहीं से खबर भेज दी कि सब बांट दो। जो है सब बांट-बूंट दो। जिनको जरूरत है, ले जाएं। सारे गांव को कह दो जिसको जो ले जाना है ले जाए। लौट कर भी नहीं गए। असल में लौट कर भी जाते तो थोड़ी चूक हो जाती। देने के मजे में भी तो अहंकार भरता है। इतना लुटा रहा हूं, इतना दे रहा हूं, यह मजा लेने भी चले गए होते तो थोड़ा अहंकार घना होता। धन का मूल्य तो फिर भी स्वीकार कर लिया होता कि धन बड़ी कीमती चीज है, जाऊं, लुटाऊं, बांट आऊं। धन का कोई मूल्य ही न रहा। इधर कबीर से आंख क्या मिली, सब मिल गया। वहीं से खबर भेज दी। अपने आदमी भेज दिए होंगे जो साथ आए थे कि भाई जाओ, मैं तो गया। तुम जाओ, जो है, सब बांट-बूंट दो। जैसा है निपटा-सिपटा दो। मेरा अब आना न हो सकेगा।

जब कबीर कहते हैंः सो जुग बिछुरि न जाए! जो मुझसे आ मिला फिर कभी बिछुड़ता नहीं, तो अब इतना भी बिछोह न सहूंगा। फिर धरमदास कबीर की छाया होकर रहे। कबीर के समाधि-उपलब्ध शिष्यों में एक थे धरमदास। और जिस दिन धरमदास ने सब लुटवा दिया, उस दिन से कबीर ने उनको कहा धनी धरमदास।

एक धन है जो बाहर का है। जिससे कोई आदमी धनी नहीं होता, सिर्फ भिखारी बनता है। और एक धन है भीतर का, जिससे आदमी वस्तुतः धनी होता है। धन की परिभाषा क्या है? धन की परिभाषा है जो बांटने से बढ़े। जो बांटने से घट जाए वह धन नहीं। यह भीतर का धन ऐसा है, जितना बांटो उतना बढ़ता है। इसलिए कबीर ने उनको धनी कहा। अब अटूट धन मिल गया, अखूट धन मिल गया। धनों का धन मिल गया।

शिष्य और गुरु का जहां मिलन होता है वहीं परमात्मा प्रकट होता है। उस मिलन की घड़ी में ही परमात्मा प्रकट होता है। तुमने देखा? एक प्रेमी और प्रेयसी मिलते हैं, एक प्रेमी और प्रेयसी के मिलने पर संभोग का क्षणिक सुख पैदा होता है, जहां शिष्य और गुरु मिलते हैं, वह भी प्रेमी और प्रेयसी का मिलना है–किसी बहुत दूसरे आयाम में, तब वहां समाधि फलित होती है। प्रेमी और प्रेयसी मिलते हैं तो जीवन का आविर्भाव होता है, एक बच्चे का जन्म होता है। जहां शिष्य और गुरु मिलते हैं, वहां ईश्वर का आविर्भाव होता है, वहां जीवन के मूल का आविर्भाव होता है।

सब लुटा कर धरमदास धनी हुए। इनके वचन अपूर्व हैं। उन्हीं के वचनों की यात्रा हम आज शुरू करते हैं।

गुरु मिले अगम के बासी।

अगम का अर्थ होता है, जहां बुद्धि की गति न हो। जहां तक बुद्धि की गति है वहां तक तो गुरु की जरूरत भी नहीं है, वहां तक तो तुम्हारी बुद्धि ही गुरु है। जहां बुद्धि हारती, थकती, ठहर जाती, ठिठक जाती, जहां से आगे चलने से बुद्धि इनकार कर देती, वहीं से गुरु की जरूरत है। इसलिए बुद्धिमान आदमी अक्सर गुरु से वंचित रह जाते हैं। उन्हें यह भ्रांति होती है कि उनकी बुद्धि सदा उनके काम आती रहेगी। उन्हें यह भ्रांति होती है कि जहां तक बुद्धि ले जाती है बस वहीं तक यात्रा है। उसके आगे कुछ है ही नहीं। जो आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है, वह क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मेरी बुद्धि के बाहर है। और जो मेरी बुद्धि के बाहर है वह हो कैसे सकता है? मेरी बुद्धि के भीतर जो है, वही है। मेरी बुद्धि कसौटी है अस्तित्व की।

यह बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। बुद्धि कसौटी नहीं है अस्तित्व की। जीवन में तुम ऐसी बहुत सी बातों को जानते हो जो बुद्धि के बाहर हैं–जैसे प्रेम। तुम्हारा किसी स्त्री से प्रेम हो गया, किसी पुरुष से प्रेम हो गया। बुद्धि के भीतर इसमें कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी जब प्रेम में पड़ता है तो वैसे ही प्रेम में पड़ता है जैसे मूढ़ से मूढ़ आदमी पड़ता है। कुछ भेद नहीं होता। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी वैसा ही पगला जाता है प्रेम में, जैसा बुद्धू पगला जाता है। इसलिए तो प्रेम को बुद्धिमान अंधा कहते हैं। समझदार प्रेम को नासमझी कहते हैं। लेकिन प्रेम है, इसे तो इनकार न कर सकोगे। बुद्धि के बाहर है, फिर भी है। बुद्धि की पकड़ में नहीं आता, फिर भी है। बुद्धि परिभाषा नहीं कर सकती कि क्या है, फिर भी है। ऐसी ही प्रार्थना है, ऐसा ही परमात्मा है। वे प्रेम के ही और-और ऊंचे रूप हैं। वहां बुद्धि की कोई गति नहीं है। इसलिए उन लोगों को अगम कहा है।

जिस व्यक्ति को यह अनुभव शुरू हो जाता है कि मेरी बुद्धि जहां तक ले जाती है वहां अस्तित्व समाप्त नहीं होता, अस्तित्व आगे भी फैला है, आगे भी गया है, तब गुरु की जरूरत अहसास होती है। तो किसी ऐसे का हाथ पकडूं जो आगे गया हो। बुद्धि जहां तक ले आई, ठीक। मैं बुद्धि का दुश्मन नहीं हूं। बुद्धि जहां तक ले जाए वहां तक बुद्धि के साथ जाना। लेकिन जहां बुद्धि कहे कि बस अब मेरी सीमा आ गई, वहीं मत रुक जाना; उसके आगे बहुत कुछ है। असली उसके आगे है। मूल्यवान उसके आगे है। परम उसके आगे है।

गुरु मिले अगम के बासी।

–ओशो

जस पनिहार धरे सिर गागर

बाबा हरिदास

अकबर ने एक दिन तानसेन को कहा, तुम्हारे संगीत को सुनता हूं, तो मन में ऐसा ख्याल उठता है कि तुम जैसा गाने वाला शायद ही इस पृथ्वी पर कभी हुआ हो और न हो सकेगा। क्योंकि इससे ऊंचाई और क्या हो सकेगी। इसकी धारणा भी नहीं बनती। तुम शिखर हो। लेकिन कल रात जब तुम्हें विदा किया था, और सोने लगा तब अचानक ख्याल आया। हो सकता है, तुमने भी किसी से सीखा है, तुम्हारा भी कोई गुरू होगा। तो मैं आज तुमसे पूछता हूं। कि तुम्हारा कोई गुरू है? तुमने किसी से सीखा है?

तो तानसेन ने कहा, मैं कुछ भी नहीं हूं गुरु के सामने; जिससे सीखा है। उसके चरणों की धूल भी नहीं हूं। इसलिए वह ख्याल मन से छोड़ दो। शिखर? भूमि पर भी नहीं हूं। लेकिन आपने मुझ ही जाना है। इसलिए आपको शिखर मालूम पड़ता हूं। ऊँट जब पहाड़ के करीब आता है, तब उसे पता चलता है,अन्यथा वह पहाड़ होता ही है। पर तानसेन, ने कहां कि मैं गुरु के चरणों में बैठा हूं; मैं कुछ भी नहीं हूं। कभी उनके चरणों में बैठने की योग्यता भी हो जाए, तो समझूंगा बहुत कुछ पा लिया।

तो अकबर ने कहा, तुम्हारे गुरु जीवित हों तो तत्क्षण, अभी और आज उन्हें ले आओ। मैं सुनना चाहूंगा। पर तानसेन ने कहा: यही तो कठिनाई है। जीवित वे है, लेकिन उन्हें लाया नहीं जा सकता हे।

अकबर ने कहा, जो भी भेट करना हो, तैयारी है। जो भी। जो भी इच्छा हो, देंगे। तुम जो कहो, वहीं देंगे। तानसेन ने कहा, वही कठिनाई है, क्योंकि उन्हें कुछ लेने को राज़ी नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह कुछ लेने का प्रश्न ही नहीं है। अकबर ने कहा, कुछ लेने का प्रश्न नहीं है तो क्या उपाय किया जाए? तानसेन ने कहा, कोई उपाय नहीं, आपको ही चलना पड़े। तो उन्होंने कहा,मैं अभी चलने को तैयार हूं। तानसेन ने कहा, अभी चलने से तो कोई सार नहीं है। क्योंकि कहने से वह गायें गे नहीं। ऐसा नहीं है वे गाते बजाते नहीं है। तब कोई सन ले बात और है। तो मैं पता लगाता हूं, कि वह कब गाते-बजाते है। तब हम चलेंगे।

पता चला—हरिदास फकीर उसके गुरू थे। यमुना के किनारे रहते थे। पता चला रात तीन बजे उठकर वह गाते है। नाचते हे। तो शायद ही दुनिया के किसी अकबर की हैसियत के सम्राट ने तीन बजे रात चोरी से किसी संगीतज्ञ को सुना हो। अकबर और तानसेन चोरी से झोपड़ी के बाहर ठंडी रात में छिपकर बैठ गये। पूरी रात इंतजार करेने के बाद सुबह जब बाबा हरिदास ने भगती भाव में गीत गया और मस्त हो कर डोलने लगे। तब अकबर की आंखों से झर-झर आंसू गीर रहे थे। वह केवल मंत्र मुग्ध हो कर सुनते रहे एक शब्द भी नहीं बोले।

संगीत बंद हुआ। वापस घर जाने लगे। सुबह की लाली आसमान पर फैल रही थी। अकबर शांत मौन चलते रहे। रास्ते भर तानसेन से भी नहीं बोले। महल के द्वार पर जाकर तानसेन से केवल इतना कहां: अब तक सोचता था कि तुम जैसा कोई भी नहीं गा बजा सकता है। यह मेरा भ्रम आज टुट गया। अब सोचता हूं कि तुम हो कहां। लेकिन क्या बात है? तुम अपने गुरु जैसा क्यों नहीं गा सकते हो?

तानसेन न कहा, बात तो बहुत साफ है। मैं कुछ पाने की लिए बजाता हूं और मेरे गुरु ने कुछ पा लिया है। इसलिए बजाते गाते है। मेरे बजाने के आगे कुछ लक्ष्य है। जो मुझे मिल उसमें मेरे प्राण है। इसलिए बजाने में मेरे प्राण पूरे कभी नहीं हो पाते। बजाते-गाते समय में सदा अधूरा रहता हूं। अंश हूं। अगर बिना गाए-बजाएं भी मुझे वह मिल जाए जो गाने से मिलता है। तो गाने-बजाने को फेंककर उसे पा लुंगा। गाने मेरे लिए साधन है। साध्य नहीं। साध्य कहीं और है—भविष्य में, धन में, यश में, प्रतिष्ठा में—साध्य कहीं और है। संगीत सिर्फ साधन है। साधन कभी आत्मा नहीं बन सकता; साध्य में ही आत्मा का वास होता है। अगर साध्य बिना साधन के मिल

जाए, तो साध को छोड़ दूँअभी। लेकिननहीं मिलता साधन के बिना, इसलिए साधन को खींचता हूं। लेकिन दृष्टि और प्राण और आकांशा ओर सबघूमता हैसाध्य के निकट। लेकिन जिनको आप सुनकर आरहे है। संगीतउनके लिए कुछ पानेका साधन नहीं है। आगे कुछ भी है जिसे पाने को वह गा-बजा रहे हे। बल्कि पीछे कुछ है। वह बह रहा है। जिससे उनका संगीत फूट रहा है। और बज रहा है। कुछ पा लिया है, कुछ भर गया है। वह बह रहा है। कोई अनुभूति, कोई सत्य, कोई परमात्मा प्राणों में भर गया है। अब वह बहरहा है। पैमाना छलक रहा है आनंद का। उत्सव का।

अकबर बार-बार पूछने लगा, किस लिए? किस लिए?

स्वभावत: हम भी पूछते है। किस लिए? पर तानसेन ने कहा,नदिया किस लिए बह रही है? फूल किस लिए खिल रहे है? चाँद-सूरज किस लिए चमक रहे है? जीवन किस लिए बह रहा है?

किस लिए मनुष्य की बुद्धि ने पैदा किया हे। सारा जगत ओवर फ्लोइंग है, आदमी को छोड़कर। सारा जगत आगे के लिए नहीं जी रहा है। सारा जगत भीतर से जी रहा है। फूल खिल रहे। खिलनें का आनंद है। सूर्य निकलता है। निकलने में आनंद है। पक्षी गीत गा रहे है। गाने में आनंद है। हवाएँ बह रही है, चाँद-तारे,आकाश गंगाए चमक रही है। चारों तरफ एक उत्सव का माहौल है। पर आदमी इसके बीच कैसा पत्थर और बेजान सा हो गया है। आनंद अभी है, यही है, स्वय में विराजने में है अपने होने में है। अभी और यही। अकबर ने पूछा तब हम उसे कैसे पाये। क्या करे जो आपके गुरु को मिला है। उसके गायन में उसके नृत्य में। कुछ अभूतपूर्व था। कुछ प्रसाद था। जो मैंने अभी तक नहीं देखा। ऐसे थे फकीर संत हरी दास।

–ओशो

गीता दर्शन,भाग-1, अध्याय 1-2, प्रवचन-1

संत भर्तृहरि

भर्तृहरि ने घर छोड़ा। देखा लिया सब। पत्नी का प्रेम, उसका छलावा, अपने ही हाथों आपने छोटे भाई विक्रमादित्य की हत्या का आदेश। मन उस राज पाठ से वैभव से थक गया। उस भोग में केवल पीड़ा और छलावा ही मिला। सब कुछ को खूब देख परख कर छोड़ा। बहुत कम लोग इतने पककर छोड़ते है इस संसार को जितना भर्तृहरि ने छोड़ा है। अनूठा आदमी रहा होगा भर्तृहरि। खूब भोगा। ठीक-ठीक उपनिषद के सूत्र को पूरा किया: "तेन त्यक्तेन भुंजीथा:।" खूब भोगा।एक-एक बूंद निचोड़ ली संसार की। लेकिन तब पाया कि कुछ भी नहीं है। अपने ही सपने है, शून्य में भटकना है।

भोगने के दिनों में शृंगार पर अनूठा शास्त्र लिखा, शृंगार-शतक। कोई मुकाबला नहीं। बहुत लोगों ने शृंगार की बातें लिखी है। पर भर्तृहरि जैसा स्वाद किसी ने शृंगार का कभी नहीं लिखा। भोग के अनुभव से शृंगार के शास्त्र का जन्म हुआ। यह कोई कोरे विचारक की बकवास न थी। एक अनुभोक्ता की अनुभव-सिद्ध वाणी थी। शृंगार-शतक बहुमूल्य है। संसार का सब सार उसमें है।

लेकिन फिर आखिर में पाया वह भी व्यर्थ हुआ। छोड़कर जंगल चले गए। फिर वैराग्य-शतक लिखा, फिर वैराग्य का शास्त्र लिखा। उसका भी कोई मुकाबला नहीं है। भोग को जाना तो भोग की पूरी बात की, फिर वैराग्य को जाना तो वैराग्य की पूरी बात की।

जंगल में एक दिन बैठे है। अचानक आवाज आई। दो घुड़सवार भागते हुए चले आ रहे है। दोनों दिशाओं से। चट्टान पर बैठे है, भर्तृहरि देखते है उस छोटी सी पगडंडी की और। घोड़ोंकी हिनहिनाहट से उसकी आँख खुल गई। सामने सूरज डूबने की तैयारी कर रहा है। उसकी सुनहरी किरणें पेड़, पत्ते,पगडंडी जिस को छू रही है। वह स्वर्णिम लग रहा है। पर अचानक तीनों

की निगाह उस चमकी चीज पर एक साथ पड़ी दोन घुड़सवारों और भर्तृहरि की। एक बहुमूल्य हीरा। घुल में पड़ हुआ भी चमक रहा है। हीरे की चमक अद्द्भुत थी। हजारोंहीरे देखे थे भर्तृहरि ने पर अनोखा ही था।वासना एक क्षण में उस हीरे पर गई। और जैसे ही भर्तृहरि ने अपनी वासना को देखा वह तत्क्षण लोट आई। एक क्षण में मन भूल गया सारे अनुभव विशाद के। वह सारा अनुभव भोग का। वह तिक्तता, वह वासना उठ गई। एक क्षण को ऐसा लगा कि उठे-उठे—और उसी क्षण ख्याल आ गया अरे पागल। क्या कर रहा है। ये सब छोड़ कर तू आया है। देखा है जीवन में इसके महत्व को भोगी है पीड़ उस में रह कर। फिर उसी में जाना चाहता है।

पर ये बातें उसके मन को मथती की सामने से आते दो घुड़सवार आकर हीरे के दोनों और खड़े हो गये। दोनों ने एक दूसरे को देखा और तलवारें निकल ली। दोनों ने कहां मेरी नजर पहले पड़ी थी इस लिए यह हीरा मेरा है। दूसरा भी यही कह रहा था। अब बातों से निर्णय होना असम्भव था। तलवार खींच गयी। क्षण भर में दो लाशें पड़ी थी—तड़पती, लहूलुहान। और हीरा अपनी जगह था। उधर भर्तृहरि अपनी जगह केवल देखते रह गये। एक निर्जीव और एक जीवित। सूरज की किरणें अब भी चमक रही थी, पर कुछ कोमल हो गई थी। हीरा बेचार यह जान भी नहीं पाया कि क्षण मे उसके आस पास क्या घट गया।

सब कुछ हो गया वहां। एक आदमी का संसार उठा और वैराग्य हो गया। एक आदमी का संसार उठा और मौत हो गई। दो आदमी अभी-अभी जीवित थे, उनकी धमनियों में खून प्रवाहित हो रहा था। स्वास चल रही थी। दिल धड़क रहा था। मन सपने बुन रहा था। पर क्षण में प्राण गँवा दिये एक पत्थर के पीछे। और बेचारा

निर्दोष पत्थर जानता भी नहीं की ये सब तेरे कारण हो रहा है। एक आदमी वहां बैठा-बैठा जीवन के सारे अनुभव से गुजर गया। भोग के और वैराग्य के; और पार हो गया साक्षी भाव जाग गया उसका।

भर्तृहरि ने आंखें बंद कर ली। और वे फिर ध्यान में डूब गए।

जीवन का सबसे गहरा सत्य क्या है? तुम्हारा चैतन्य। सारा खेल वहाँ है। सारे खेल की जड़ें वहां है। सारे संसार के सूत्र वहां है।

–ओशो

एस. धम्मो सनंतनो, भाग—3, प्रवचन—21

संत बाबा शेख फरीद

शेख फरीद के पास कभी एक युवक आया। और उस युवक ने पूछा कि सुनते है कि हम जब मंसूर के हाथ काटे गये, पैर काटे गये। तो मंसूर को कोई तकलीफ न हुई। लेकिन विश्वास नहीं आता। पैर में कांटा गड़ जाता है, तो तकलीफ होती है। हाथ-पैर काटने से तकलीफ न हुई होगी? यह सब कपोल-काल्पनिक बातें है। ये सब कहानी किसे घड़े हुये से प्रतीत होते है। और उस आदमी ने कहां, यह भी हम सुनते है कि जीसस को जब सूली पर लटकाया गया,तो वे जरा भी दुःखी न हुए। और जब उनसे कहा गया कि अंतिम कुछ प्रार्थना करनी हो तो कर सकते हो। तो सूली पर लटके हुए, कांटों के छिदे हुए, हाथों में कीलों से बिंधे हुए, लहू बहते हुए उस नंगे जीसस ने अंतिम क्षण में जो कहा वह विश्वास के योग्य नहीं है। उस आदमी ने कहा, जीसस ने यह कहा कि क्षमा कर देना इन लोगों को, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे है।

यह वाक्य आपने भी सुना होगा। और सारी दुनिया में जीसस को मानने वाले लोग निरंतर इसको दोहराते है। यह वाक्य बड़ा सरल है। जीसस ने कहा कि इन लोगों को क्षमा कर देना परमात्मा, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे है। आम तौर से इस वाक्य को पढ़ने वाले ऐसा समझते है कि जीसस ने यह कहा कि ये बेचारे नहीं जानते कि मुझे अच्छे आदमी को मार रहे है। इनको पता नहीं है।

नहीं यह मतलब जीसस का नहीं था। जीसस का मतलब यह था कि इन पागलों को यह पता नहीं है कि जिसको ये मार रहे है, वह मर ही नहीं सकता है। इनको माफ कर देना। क्योंकि इन्हें पता नहीं है कि ये क्या कर रहे है। यक एक ऐसा काम कर रहे है, जो असंभव है। ये मारने का काम कर रहे है, जो असंभव है।

उस आदमी ने कहा कि विश्वास नहीं आता कि कोई मारा जाता हुआ आदमी इतनी करूणा दिखा सकता है। उस वक्त तो वह क्रोध से भर जाएगा।

शेख फरीद खूब हंसने लगा। और उसने कहा कि तुमने अच्छा सवाल उठाया। लेकिन सवाल का जवाब मैं बाद में दूँगा, मेरा एक छोटा सा काम कर लाओ। पास में पडा हुआ एक नारियल उठाकर दे दिया उस आदमी को, और कहा कि इसे फोड लाओ, लेकिन ध्यान रहे,इसकी गिरी को पूरा बचा लाना, गिरी टूट न जाये। लेकिन वह नारियल बिलकुल ही कच्चा था। उस आदमी ने कहा,माफकीजिए, यह काम मुझसे ने होगा। नारियल बिलकुल कच्चा है। और अगर मैंने इसकी खोल तोड़ी तो गिरी भी टूट जायेगी।तो उस फकीर ने कहां की उसे रख दो। दूसरा नारियल उसने दिया जो कि सूखा था और कहा कि अब इसे तोड़ लाओ। इसकी गिरी तो तुम बचा सकोगे। उस आदमी ने कहा, इसकी गिरी बच सकती है।

तब बाबा फरीद ने कहा मैंनेतुम्हें जवाब दिया, कुछ समझ में आया? उस आदमी ने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं आया। नारियल से और मेरे जवाब का क्या संबंध है? मेरे सवाल का क्या संबंध है। बाबा शेख फरीद ने कहा, यह नारियल भी रख दो, कुछ फोड़ना-फाड़ना नहीं है। मैं तुमसे यह कहा रहा हूं। कि एक कच्चा नारियल है, जिसकी गिरी और खोल अभी आपस में जुड़ी हुई है। अगर तुम उसकी खोल को चोट पहुंचाओगे तो उसकी गिरी टुट जायेगी। फिर एक सुखा नारियल है। सूखे नारियल और कच्चे नारियल में फर्क ही क्या है? एक छोटा सा फर्क है कि सूखेनारियल की गिरी सिकुड़ गई है भीतर और खोल से अलग हो गई है। गिरी और खोल के बीच में एक फासला, एक डिस्टेंस हो गया है। एक दूरी हो गई है। अब तुम कहते हो कि इसकी हम खोल तोड़ देंगे तो गिरी बच सकती है। तो मैंने तुम्हारे सवाल का जवाब दे दिया।

मैं फिर भी नहीं समझा, आपने जो कहा है। तब बाबा फरीद ने कहा जाओ मरो और समझो। इसके बिना तुम समझ नहीं सकते। लेकिन तब भी तुम समझ नहीं पाओगे, क्योंकि तब तुम बेहोश हो जाओगे। खोल और

गिरी एक दिन अलग होंगे,लेकिन तब तुम बेहोश हो जाओगे। अगर समझना है तो अभी खोल और गिरी को अलग करना सिख लो। अभी मैं भी जिंदा हूं। और अगर खोल और गिरी अलग हो गये तो समझना मोत खत्म हो गई। वह फासला पैदा होते ही हम जानते है कि खोल अलग,गिरी अलग। अब खोल टूट जायेगी तो भी में बचूंगा। तो भी मेरे टूटने का कोई सवाल नहीं है, मेरे मिटने का कोई सवाल नहीं है। मृत्यु घटित होगी, तो भी मेरे भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगी। मेरे बाहर ही घटित होगी। यानी वही मरेगा जो मैं नहीं हूं, जो मैं हूं वह बच जायेगा।

ध्यान या समाधि का यही अर्थ है कि हम अपनी खोल और गिरी को अलग करना सीख जाएं। वे अलग हो सकते है। क्योंकि वे अलग है, वे अलग-अलग जाने जा सकते है। दोनों का स्वभाव भिन्न है ये कुदरत को एक चमत्कार ही है कि दोनों कैसे मिले है। एक सूक्ष्म है एक स्थूल है।

इसलिए ध्यान को मैं कहता हूं,स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश, बालेंटरी एन्ट्रेंस इनटू डेथ। अपनी ही इच्छा से मौत में प्रवेश। और जो आदमी अपनी इच्छा से मौत में प्रवेश कर जाता है, वह मौत का साक्षात्कार कर लेता है। कि यह रही मौत और मैं अभी भी हूं।

–ओशो

मैं मृत्यु सिखाता हूं, प्रवचन—2, संस्करण—1991

दादू के चेले तो अनेक थे पर दो ही चेलों का नाम मशहूर है। एक रज्जब और दूसरा सुंदरो। आज आपको सुंदरो कि विषय में एक घटना कहता हूं। दादू की मृत्यु हुई। तब दादू के दोनों चलो ने बड़ा अजीब व्यवहार किया। रज्जब ने आंखे बंध कर ली और पूरे जीवन कभी खोली ही नहीं। उसने कहां जब देखने लायक था वहीं चला गया तो अब और क्या देखना सो रज्जब जितने दिन जिया आंखे बंध किये रहा। और दूसरा सुंदरो—उधर दादू की लाश उठाई जा रही थी। अर्थी सजाई जारही थी। वह श्मशान घाट भी नहीं गया और दादू के बिस्तर पर उनका कंबल ओढ़ कर सो गया। फिर उसने कभी बिस्तर नहीं छोड़ा। बहुत लोगों ने कहा ये भी कोई ढंग है। बात कुछ जँचती नहीं।ये भी कोई जाग्रत पुरूषों के ढंग हुये एक ने आँख बंद कर ली और दूसरा बिस्तरे में लेट गया। और फिर उठा ही नहीं। जब तक मर नहीं गया।

इस मामले में दादू बहुत भाग्य शाली संबुद्ध थे, वैसे तो उनके बहुत चले थे। पर ऐसे हीरे शिष्य, अनमोल रत्न, बहुत कम गुरूओं को नसीब हुए है। नानक, कबीर, रैदास, फरीद किसी के पास भी ऐसी अद्भुत जमात नहीं थी। जैसे दादू के पास थी। दादू ने बड़े बेजोड़ ओर अद्वितीय हीरे इकट्ठे किए थे। कबीर, बुद्ध, महावीर भी इस सबंध में पीछे रह गये। दादू में कुछ कला थी शिष्यों को पुकार लाने की। दादू में कुछ कला थी शिष्यों को अपने से जोड़ लेने की। उनकी जमात बड़ी थी। उनका सबंध बड़ा था। लेकिन उन सब हीरो में रज्जब और सुंदरो तो कोहिनूर थे।

सुंदरो, इधर लाश उठी उधर वह बिस्तर में समा गया। उसने ओढ़ लिया कंबल दादू का। सुंदरो का इतना तादात्म्य हो गया था दादू से कि बहुत बार ऐसाहो जाता था कि सुंदरो बहार बैठा है। और कोई आया है दादू से मिलने के लिए। और वह पूछता है, दादू कहां है—मुझे दादू जी केदर्शन करने है। तब सुंदरो कहता की ये जो तुम्हारे सामने बैठा है। ये कोन है, करो दर्शन। वह आदमी भी कुछ अचरज में भर जाता। और सोचताकी शायद इसका दिमाग खराब हो गया। पर नहीं सुंदरो का दादू से इतना तादात्म्य था, उसने अपने होने को ऐसे लीन कर दियाथा। की अब सुंदरो जैसा कोई व्यक्ति था ही नहीं।अंदर केवल एक ही नाद था। दादू बात थोड़ी गहरी है। कुछ इसे अहंकार समझते कुछ पागल पन। पर सुंदरो ने तो दादू में आप को लीन कर लिया था।

जब शिष्य अपने को गुरु में डुबोता है, तो गुरू को भी अपने में डूबा हुआ पाता है। जब शिष्य अपने भेद छोड़ देता है तो गुरु के तो भेद पहले से ही न थे। अभेद हो जाता है। कई बार लोग बड़े नाराज हो जाते है जब उनको बाद में पता चलता कि हम तो गलती से सुंदरो के पैर छू कर ही आ गए। और हमे दादू से मिलने ही नहीं दिया गया। हमें भ्रमित किया गया। और लोग आकर सुंदरो को कहते की ये भी कोई मजाक है। आप ये सब ठीक नहीं कर रहे। और बात दादू तक जाती तो दादू केवल हंस भर देते। पर लोग है कि खुश नहीं होते। कि हम तो मीलों चल कर आये थे आपके चरणों की धूल लेने। और ये पागल है की हमे वापस रास्ते से कर दिया। पर सुंदरो इससे जरा भी विचलित नहीं होता। और कहता की तुमने नमस्कार किया और वह पहुंच गया दादू तक। विश्वास नहीं है तो पूछ सकतेहो। अब वैसे तुम्हारी ज़िद्द शरीर की है तो फिरअंदर बैठे है दादूजी और छू लोपेर। अगर आत्मा का सवाल है तो मेरी आंखों में झांक लो तो तुम्हें दादू की आंखोंकीझलक नजर आयेगी। मेरे शरीरकी सुगंध दादू की सुगंध है। मेरी वाणी भी दादूकी वाणी है।

इसलिए जब दादू की अरथी ले चलें। और सुंदरो उनकी अरथीके साथ भी नहीं गया। वह बिस्तर र लेट गया। जैसे रास्ता ही देखता हो इतने दिन से कि हटो भी अब। यानी अब हम कब तक बिस्तर के बाहर ही रहें। न रोया,न परेशान हुआ। दादू के कपड़े भी पहन लिए। जब लोग लौट कर आए तो देखा कि यह बिलकुल ही दादू

बन गया है। दादू के कपड़े,दादू का कंबल, वही बैठने कर रंग-ढंग। वही बोलने का अंदाज। और उस दिन से लोगों ने देखा की उसकी वाणी में भी वही बात आ गई जो दादू की वाणी में थी। उसके आस पास वही प्रसाद, वही सुगंध बिखरने लगी जो दादू में थी। एक प्रकाश एक आभा मंडल जो दादू की उपस्थिति में था वही महसूस होने लगा। लोगों की समझ में नहींआ रहा था। की हम तो दादू के शरीर को अपनेही हाथोंसे चिता पर चढ़ाकर आये है। और उसके बाद जो सुंदरो ने जो पद लिखे है, उनमेंवह दादू के ही नाम का उल्लेख करता है। कहे दादू—लिखता था सुंदरो।लेकिन पद सुंदरो के थे। लोगों ने लाख समझाया कपड़े बिस्तरे,कंबल तो बात ठीक है, पर ये वाणी वाली बात ठीक नहीं है। आने वाले बाद के दिनोंमें लोगोंको भ्रम होगा की कोन से पद दादूकेहै और कोन से पद आपके है। यह परख करनीभीमुश्किलहो जायेगी। तो कृपा आप ये न करे तो बेहतर होगा।

तब सुंदरो ने कहा की तय करने की जरूरतही क्या है। सभी वचन तो उनके हीहै। अब सुंदरो हैकहा। सुंदरो कब का गया।सुंदरो पहले दिन ही मैं उनके पैरों में गिरा था। उसी दिन चला गया था। उसी दिन चला गया था। तुमको देखने में देर लगी। बात ओर; मैं तो उसी दिन समझ गया कि अब इस आदमी के सामने क्या टिकना। इस आदमी के साथ क्या बचना। इससे क्या अलग थलग रहना। इसके साथ तो एक हो जाने में ही मजा है। बूंद मेरी उसी दिन सागर हो गई थी। तुम मानो या न मानों, लेकिन जब बूंद सागर में गिरती है तो सागर हो जाती है। सुंदरो नहीं बचा है।

और यही उसका सौंदर्य था। दादू ने उसे सुंदरो का नाम दिया था—यही उसका सौंदर्य था कि उसका समर्पण समग्र था।

–ओशो

कहो होत अधिर, प्रवचन—02

सदाशिव स्वामी

दक्षिण भारत में एक अपूर्व संत हुआ जिसका नाम था–सदाशिव स्वामी। एक दिन अपने गुरु के आश्रम में एक पंडित को आया देख कर विवाद में उलझ गया। उसने उस पंडित के सारे तर्क तोड़ दिये। उसके एक-एक शब्द को तार-तार कर दिया। उसके सारे आधार जिन पर वह तर्क कर रहा था धराशायी कर दिये। उसकी हर बात का खंडन करता चला गया। उस पंडित की पंडिताई को तहस नहस कर डाला। पंडित बहुत ख्यातिनाम था। तो सदाशिव सोचते थे कि गुरु पीठ थपथपायेगा और कहेगा, कि ठीक किया, इसको रास्तेपर लगाया। लेकिन जब पंडित चला गया तो गुरु ने केवल इतना ही कहां: सदाशिव, अपनी वाणी पर कब संयम करोगे? क्यों व्यर्थ, व्यर्थ उलझते हो इस जंजाल में। ये तुम्हें स्वयं के भीतर तुम्हें न जाने देगी। हो सकता है तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे अहं को पोषित करने लग जाये। ज्ञान तलवार की तरह है। और ध्यानी का ज्ञान तो दो धारी तलवार। जिसके दोनों तरफ धार होती है। पंडित को ज्ञान तो एक तरफ का होता है। इससे बच संभल। और देख अपने अंदर।

सदाशिव ने एक बार गुरु की और देखा। चरण छूये और कहां आप कहते है कब अभी हुआ जाता हूं। और वह मौन हो गया चुप हो गया। फिर जीवन भर एक भी शब्द नहीं बोला। उन्होंने जीवन भर मौन रहने की साधना स्वीकार कर ली। मौन थे और नग्न भी। नग्न रहते ओर चुप, रहते बड़ी झंझट आती थी, बार-बार। जहां कहीं भी जाते कुछ ने कुछ बेबूझी सी घटना घट जाती थी। और कुछ नहीं तो औरतें गाली देती, बच्चे पत्थर मारते। ध्यान उनका गहराता चला गया। समाधि की सुगंध फूटने लग गई। आस पास उनके माधुरियेबरसने लगा। पर ये सब कम ही आंखे देख पाती थी। उसकी मस्ती उसकी चाल। ज्यादा तो हम उपरी आवरण ही दिखाई देता है और हम उसी में उलझ जाते है। उसकी मस्ती देखते ही बनती थी। और सदाशिव पूरा दिन उस मस्ती में मस्त रहते थे।

एक बार एक अनहोनी घटना घट गई। एक दिन भूल से एक मुसलमान सरदार के शिविर में चले गये। मस्ती में जा रहे थे नाचते, शिविर बीच में पड़ गया होगा तब उन्हें कहां शिविरकी परवाह थी। वह कोई शिविर के लिए गये थोड़े ही गये थे। अब शिविर में कुछ औरतों ने सदाशिवको नग्न देख कर लगी शोर मचानें। चारोंतरफ चीखपुकार मच गई। अब कहां सदा शिव की मस्तीदिखाई देती बस एक ही बात कोई नग्न फकीर नाचता हुआ चला आ रहा है। इस तरह से अचानक एक नग्न साधु को अंदर आया देख कर चारों तरफ से औरतों की चीख पुकार ओर भगदड़ को देख कर सरदार को क्रोध आ गया। और उसने तलवार उठा कर हमलाकर दिया। और मस्त नाचते सदा शिव का एक हाथ शरीर से अलग हो दुर जा गिरा। खूनका फव्वारा फूट पडा। लेकिन ये क्या सदा शिव की मस्ती तो जर भी कम नहींहुई। उसके नाच में उसकेआनंद में रति भर भी फर्क नहीं आया। और तो और क्षण भर पहले जिन दोनों हाथों हिला-हिला कर सदाशिव नाच रहा था अब तो उसके पास मात्र एक ही हाथ था। और जैसे नाचता हुआ अंदर आया था उसी तरह नाचता द्वार के बहार की और जाने लगा।

सरदार तो हैरान परेशान, वह तो ऐसा सोच भी नहीं सकता। उसने तो युद्ध में कटे अंग के जितने भी मनुष्य देखे थे वह रो रहे होते चीख रहे होते। तड़प रहे होते। पर यह क्या यह तो कुछ अनहोनी सी बात हो गई। अब उसे कुछ-कुछ समझ आने लगा था। उसका क्रोध एक दम कम हो जाने की वजह से उसे दिखाई दिया सदाशिव का आनंद। उसे दुःख भी हो रहा था। यह मस्ती, उसे पहले क्यों नहीं दिखाई दी।, ऐसी मस्ती उसने इससे पहले कभी देखी नहीं थी। हाथ कट जायेओर पता भी न हो। यह आदमी किसी और ही लोक में जी रहा

है। उसकी चाल उसकी आंखें इस लोक की लगती ही नहीं थी। वह देह आलोकिक थी जैसे उसमें चेतना उसके सौंदर्य को प्रस्फुटित कर रही थी। सरदार भागा और उसके चरणों में गिर पडा। क्षमा मांगने लगा। सदाशिव हंसने लगे। सरदार ने कहा, उपदेश दें। वह तो मौन थे। उपदेश दे नहीं सकता था। तब उसने दूसरे हाथ की उँगली से रेत पर एक छोटा सा वचन लिख दिया। जानते है वह वचन क्या था—

''जो तुम चाहते हो वह मत करो,

तब तुम जो चाहोगे कर सकोगे।''

बड़ी अनूठी बात लिखी सदाशिव ने। जो-जो कामना तुम कर रहे हो। वह मत करे। तब तुम जो-जो कामना करते हो सब मिल जायेगी। यह बड़ी अजीब सी बात लिखी सदाशिव ने।

सरदार ने उसे अपना गुरु बना लिया। और सदाशिव का शिविर में ही उपचार करवाया। जब तक सदाशिव के कटे हाथ का जख्म भर नहीं गया उसे जाने नहीं दिया गया।

मगर ऐसा ही है। जब तक तुम माँगेगे। नहीं मिलेगा। जिस दिन तुम छोड़ दोगे। उसी दिन मिल जाएगा। तुम भागेगे और सुख छलता रहेगा। भागता रहेगा तुम्हारी परछाई की तरह। तुमसे दो कदम हमेशा आगे,तुम उसे भाग कर पकड़ नहीं सकते। छू नहीं सकते, तुम धन के पीछे भागते हो पर पकड़-पकड़ कर भी कहां पकड़ पाते हो। पाते हो अपने खाली हाथ। फिर तुम यह कैसे मान सकते हो की मैं उसके पीछे न भागू तो मिले जायेगा। पर सच्चाई यहीं है। जो दिखाई देती है। जीवन उसके विपरीत कहीं गहरे रहस्य छूपाये होता है अपने सीने में। तुम रूक जाओ और सुख तुम्हारे चरणों में लोट आयेगा।

संत भीखा दास

भीख जब छोटा बच्चा था। लोग हंसते थे कि तू समझता क्या। शायद साधुओं के विचित्र रंग-ढंग को देखकर चला जाता है। शायद उनके गैरिक वस्त्र,दाढ़ियां उनके बड़े-बड़े बाल, उनकी धूनी उनके चिमटे, उनकी मृदंग, उनकी खंजड़ी,यह सब देखकर तू जाता होगा भीखा। लेकिन किसको पता था कि भीखा यह सब देख कर नहीं जाता। उसका सरल ह्रदय उसका अभी कोरा

कागज जैसा ह्रदय पीने लगा है, आत्मसात करने लगा है। वह जो परम अनुभव प्रकाश का साधुओं की मस्ती है उसे छूने लगी है। उसे दीवाना करने लगी है। वह जो परम अनुभव प्रकाश का साधुओं के पास है, उससे वह आन्दोलित होने लगा है। वह जो साधुओं की मस्ती है उसे छूने लगी है, उसे दीवाना करने लगी है। वह भी पियक्कड़ होने लगा है।

बारह वर्ष की उम्र में भीखा ने घर छोड़ दिया। बारह वर्ष की उम्र लोग तो सत्तर अस्सी साल के भी हो जाते है तब भी ऐसे पकड़कर बैठे रहते है जैसे यह घर सदा रहने का है। जैसे यह घन सदा रहने को है। यह पद सदा रहने को है। तुम्हें भरोसा नहीं तो दिल्ली में जाकर देख लो। कोई साठ का है, कोई पैंसठ का, कोई सत्तर का, कोई पचहत्तर का, कोई अस्सी का, कोई चौरासी का। लेकिन पकड़ जाती नहीं—पद की, प्रतिष्ठा की, अहंकार की। बारह वर्ष की उम्र में भीखा ने सब छोड़-छाड़ दिया। बड़ी बुद्धिमता चाहिए, बुद्धिमत्ता—निर्दोषता के अर्थों में। बुद्धिमत्ता–विचार के अर्थ में नहीं, निर्विचार के अर्थ में, बुद्धिमत्ता बोध के अर्थ में, ज्ञान के अर्थ में नहीं। बड़ी प्रखर क्षमता रही होगी। प्रतिभा रही होगी। मेधा रही होगी। नहीं तो बाहर वर्ष में कौन देख पाता है।

बहुत प्रतिभा चाहिए, लोग तो जीवन के अनुभव से भी नहीं जागते। जो दूसरों के जीवनको देख कर जाग जाए उसके लिए बड़ी प्रतिभाचाहिए। वैसी ही प्रतिभा भीखा में रही होगा। बारह वर्ष की उम्र में छोड़ छाड़ दिया घर।

भीखा उलझन में पडा ही नहीं। चारों तरफ देखा होगा। इतने उलझे लोग, इतने दुःखी लोग, इतने पीड़ित लोग—इतना काफी था। देख लेना। दूसरों को देखकर ही समझ गया कि यहां कुछ सार नहीं है।

सद्गुरू की खोज शुरू हुई। स्वभावत: और कहा जाता सद्गुरू को खोजने—काशी गया। थोड़ा इस चित्र को अपनी आंखों में उभरने दो: बारहें वर्ष का भोला भाला बच्चा, काशी में तलाश कर रहा है, सद्गुरू की। अगर ज्यादा उम्र का होता तो शायद किसी जाल में पड़ जाता। किसी पंडित की बकवास में पड़ जाता। लेकिन एकदम भोला भाला था। यह बड़े रहस्य की बात है। लोग कहते है कि भोले भाले आदमी को धोखा देना आसान है। अनुभव कुछ और कहता है। अगर भोला-भाला आदमी सच में भोला-भाला है, तो धोखा देना असंभव है। बुद्धूओं को भोले-भाले कहते हो, यह बात और है। उनको धोखा देना आसान है। मगर उनको बुद्धू कहो भोले भाले मत कहो।

लेकिन अकसर लोक मानस में यह बात हो गयी है कि बुद्धू और भोला-भाला एक ही जैसे होते है। भोले-भोलों को बुद्धू कहते है और बुद्धूओं को भोला भाला कहते है। ये बातें ठीक नहीं है। ये दोनों बड़ी अलग-अलग बात है। भोला-भाला कहते है। ये बातें ठीक नहीं है। भोला-भाला आदमी तो दर्पण की भांति स्वच्छ होता है। उसे तुम धोखा दे ही नहीं सकते। असंभव है। चालाक आदमी को धोखा दिया जा सकता है। अगर तुम ज्यादा चालाकहो। बेईमान हो। लेकिन भोले-भाले आदमी को धोखा नहीं दिया जा सकता है। तुम्हारी तस्वीर जो तुम्हें भी नहीं दिखाई देती। उसको दिखाई पड़ जाती है। उस के सामने प्रगट हो जाती है। जैसे एक्स–रे के सामने

तुम्हारे भीतर तक सब रोग प्रगट हो गये हों। भोले भाले आदमी के पास एक्स-रे वाली आंखे होती है। और दर्पण का चित होता है।

भीखा घूमता रहा काशी में और खाली हाथ लौटना पडा उसे। काशी और काबा, गिरनार और शिखर जी,सब खाली पड़े है। हां, कभी सदियों पूर्व कोई दीये वहां जले थे। उन दीयों के कारण तीर्थ बन गये थे। लेकिन दीये तो कब के बुझ गये। बुझ ही नहीं गये, दीयों का तो नाम-निशान न रहा। लेकिन दीयों के आसपास पंडितों की भीड़ इकट्ठी हो गई। और वह शोर गूल मचाये रखते है। और वह लोगों को डरवाते रहते है। और प्रलोभित करते रहते है। और लोग चलते जाते है। लोग आते जाते है। लोग सोचकर की काशी पहुंच गये तो सब ठीक हो जायेगा। काशी करवट काशी में जाकर मर गये सब ठीक हो जायेगा। हालाकि अब हालत बदल रही है। अब लोग दिल्ली करवट लेते है। दिल्ली में मर गये तो स्वर्ग पक्का है। राज घाट पर जगह मिल गयी तो स्वर्ग पक्का है। जिंदगी भर करों पाप और अंत में करवट ले लेना। मरते वक्त लोग इकट्ठे हो जाते है।

कहते है काशी में तीन तरह के लोगों की भीड़ है—भांड,राँड और सांड। सांड शंकर जी के प्रभाव से मस्त हो कर घूम रहे है। राँडइकट्ठी हो गयी है, क्योंकि आखिरी करवट लेने के लिए। और कोई अच्छी जगह नहीं है। और भांड़ है। दिखाई पड़ गया होगा। ये तीनों पहचान में आ गये होंगे भीखा को, कि कुछ रांड़े है, कुछ साँड़े है, कुछ भाँडे है। कुछ काशी में नहीं है। लौट पड़े खाली हाथ, बहुत उदास। आँखें गीली थी। अब कहां जाएं? सोचा था काशी में मिलन हो जाएगा। अब काशी में नहीं मिला सद्गुरू तो कहां मिलेगा। लेकिन जिसकी खोज है उसे मिलना ही है। खोज गुरु को खोज ही लेगी।

पुरानी मिस्त्री कहावत है कि जब शिष्य तैयार हो जाता है। तो गुरु स्वयं प्रगट हो जाता है। रास्ते में किसी ने एक पद कहा। किसी अनजाने आदमी ने। ऐसे ही राहगीर ने, चलते साथ हो लिया। एक पद कहा, जिसके अंत में ''गुलाल'' की छाप पड़ती थी। गुलाल का पद था। नाम का ही जादू छा गया। उस पद में तो कुछ ज्यादा नहीं था। लेकिन गुलाल.....कोई तार मिल गया। कोई तालमेल बैठ गया।

बड़ा अद्भुत है यह जगत। कहां तार मिल जाएंगे कहा तालमेल बैठ जाएगा। कोई जानता नहीं। किसी रहस्यपूर्ण ढंग से गुरु से मिलन हो जाएगा। कोई जानता नहीं। उसकी कोई विधि-व्यवस्था नहीं है। कोई प्रक्रिया नहीं है। अब यह अजनबी आदमी कह दिया पद आकस्मिक। और उसमें गुलाल का नाम आता था। सिर्फ इतना ही उल्लेख किया गया है कि गुलाल की छाप आती थी। पीछे, जैसे कबीर में आती है। कहे कबीरा, ऐसे कुछ छाप पड़ती होगी। ''कहै गुलाल'' । गुलाल शब्द ने जैसे कोई सोई हुई स्मृतियाँ जगा दी।

अगर मुझसे पूछो तो मैं यही कहूंगा कि यह नाता जन्मों-जन्मों का रहा होगा। अन्यथा सोयी स्मृतियां जागती कैसे। और अक्सर ऐसा होता है कि गुरूओं और शिष्यों का नाता जन्मों–जन्मों का होता है। ये नाते एकाध जन्म में नहीं बनते है। एकाध जन्म बहुत छोटा सा समय है—क्षणभंगुर। ये कोई मौसमी फूल नहीं है। ये तो चिनार के आकाश को छूते दरख़्त है, इनको सदियों लगती है। पति पत्नी का संबंध क्षण में हो जाता है। जगत की मित्रताएं क्षण में बन जाती है। मिट जाती है। जितनी जल्दी बनती है। उतनी जल्दी मिट जाती है। लेकिन सद्गुरू का संबंध सदियों में निर्मित होता है। धीरे-धीरे निर्मित होता है। आहिस्ता-आहिस्ता निर्मित होता है।

जरूर भीखा किन्हीं पिछले जन्मों में गुलाल से जुड़ा होगा। एक ही पथ के पथिक रहे होंगे। एक ही मधुशाला में दोनों ने पी होगी। एक ही प्याले से दोनों ने पी होगी। इसीलिए तो आज अचानक जरा सी चोट.....। ''गुलाल'' शब्द से क्या होता है। तुमने भी हजार बार सुना होगा। मैं कितनी दफे दोहता हूं...गुलाल,गुलाल, गुलाल.....। तुम्हें ज्यादा से ज्यादा याद आ जाती होगी। फागुन के गुलाल की। लेकिन भीखा के भीतर कोई तार छिड़ गया। कोई संगीत बज गया। कोई द्वार खुल गया। पूछा: गुलाल कहां मिलेंगे? उस आदमी ने कहा : मुझेकुछ

पता नहीं है। यह पद तो मैंने किसी से सुना है। उसके भीतर कुछ नहीं बजा था। बस पूछने लगे भीखा कि गुलाल कहां, गुलाल कहां मिलेगा?

गुलाल कोई बहुत ख्याति नाम आदमी न थे। ख्याति नाम व्यक्ति तो काशी में थे। उसके पास जो जाकर देख आया था भीखा, कुछ पाया नहीं था। खोजते खोजें एक छोटे से गांव में, जिसका नाम भी तुमने न सुना होगा। नाम था गांव का "भुरकुड़ा" एक छोटा सा गांव,होगा कोई दस-बीस घरों का। नाम ही बता रहा है। भुरकुड़ा। वहां गुलाल मिले। और गुलाल को देखा, कि न भीखा ने ही केवल पहचाना,गुलाल ने भी पहचाना। इस बारह वर्ष के बच्चे को एकदम उठाकर अपने पास बिठा लिया अपनी गद्दी पर। पुराने शिष्यों में तो ईर्ष्या फैल गयी। लोग तो चौकन्ने हो गये कि बात क्या है। किसी को कभी अपने पास गद्दी पर नहीं बिठाया। बड़ी आवभगत की—बारह वर्ष के बच्चे की।

क्योंकि एक और दुनिया है जहां, इस उम्र से कुछ भी नहीं नाप जाता। जहां ह्रदय तोले जाते है; जहां आत्माएं परखी जाती है। इसकी ऐसा सम्मान दिया जैसे कोई सम्राट हो।

भीखा गुलाल के हो गये। गुलाल भीखा का हो गया। फिर भीखा न छोड़ा ही नहीं। भुरकुटा गांव, वहीं पर अंत समय तक रहे, और वहीं गुरु चरणों में मरे। वहीं जीवन भर भुरकुटा और गुलाल के हो कर रह गये। एक पल एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ा गुलाल का साथ। रात दिन वहीं चरण मंदिर बन गये, वही तीर्थ हो गया, भीखा का।

भीखा ने स्वयं इस अनुभूति को अपने शब्दों में बांधा है—

बीत बारह बरस उपजी रामनाम सों प्रीति।
निपट लागी चटपटी मानों चरिउ पन गये बीति।।

और फिर ऐसी आग जली...वह जो राम की प्रीति लगी तो ऐसी आग जली। कि लगा बारह साल में ही चारों पन बीत गये। जैसे में बूढ़ा हो गया। जैसे बीत गयीं चारों अवस्थाएं—चारों आश्रम, एक साथ बारह साल में। निपट लागी चटपटी और ऐसी लगी आग और ऐसी जली अभीप्सा, मानों चरिउ पन गये बीती। मैं अचानक बारह वर्ष में वृद्ध हो गया: देख लिया देखने योग्य। सब आसार था। मौत सामने खड़ी हो गयी। बारह वर्ष की उम्र में। मौत सामने खड़ी हो गयी। जब कि लोग सपने सँजोता है, जो टूटे गे आज नहीं कल। जब कि लोग बड़ी योजनाएं और कल्पनाएं बनाते है। जो कि सब धूल-धूसरित हो जाएंगा।

जागों, और जानने का एक ही उपाय है। गुरु परताप साध की संगति,भीखा के ये बचन सीधे-सादे,सुगम,पर चिनगारी की भांति है। और एक चिनगारी सारे जंगल में आग लगा दे—एक चिनगारी का इतना बल है।

ह्रदय को खोलों,इस चिनगारी को अपने भीतर ले लो। शिष्य वही है जो चिनगारी को फूल की तरह अपने भीतर ले ले। चिनगारी जलाएगी वह सब जो गलत है। वह सब जो व्यर्थ है, वह सब जो कूड़ा करकट हे, चिनगारी जलाएगी, भभकाएगी, वह जो नहीं होना चाहिए। और उस सबको निखारती है जो होना चाहिए। जो इस अग्नि से गुजरता है, एक दिन कुंदन होकर प्रकट होकर होता है, शुद्ध होकर प्रकट होता है।

–ओशो

गुरु प्रताप साध की संगत, प्रवचन—1

दरिया दास

मनुष्य-चेतना के तीन आयाम हैं। एक आयाम है–गणित का, विज्ञान का, गद्य का। दूसरा आयाम है–प्रेम का, काव्य का, संगीत का। और तीसरा आयाम है–अनिर्वचनीय। न उसे गद्य में कहां जा सकता, न पद्य में! तर्क तो असमर्थ है ही उसे कहने में, प्रेम के भी पंख टूट जाते हैं! बुद्धि तो छू ही नहीं पाती उसे, हृदय भी पहुंचते-पहुंचते रह जाता है!

जिसे अनिर्वचनीय का बोध हो वह क्या करें? कैसे कहे? अकथ्य को कैसे कथन बनाए? जो निकटतम संभावना है, वह है कि गाये, नाचे, गुनगुनाए। इकतारा बजाए कि ढोलक पर थाप दे, कि पैरों में घुंघरू बांधे, कि बांसुरी पर अनिर्वचनीय को उठाने की असफल चेष्टा करे।

इसलिए संतों ने गीतों में अभिव्यक्ति की है। नहीं कि वे कवि थे, बल्कि इसलिए कि कविता करीब मालूम पड़ती है। शायद जो गद्य में न कहा जा सके, पद्य में उसकी झलक आ जाए। जो व्याकरण में न बंधता हो, शायद संगीत में थोड़ा-सा आभास दे जाए।

इसे स्मरण रखना। संतों को कवि ही समझ लिया तो भूल हो जाएगी। संतों ने काव्य में कुछ कहा है, जो काव्य के भी अतीत है–जिसे कहा ही नहीं जा सकता। निश्चित ही गद्य की बजाए पद्य को संतों ने चुना, क्योंकि गद्य और भी दूर पड़ जाता है, गणित और भी दूर पड़ जाता है। काव्य चुना, क्योंकि काव्य मध्य में है। एक तरफ व्याख्या-विज्ञान का लोक है, दूसरी तरफ अव्याख्य-धर्म का जगत है; और काव्य दोनों के मध्य की कड़ी है। शायद इस मध्य की कड़ी से किसी के हृदय की वीणा बज उठे, इसलिए संतों ने गीत गाए। गीत गाने को नहीं आए; तुम्हारे भीतर सोए गीत को जगाने को गाए। उनकी भाषा पर मत जाना, उनके भाव पर जाना। भाषा तो उनकी अटपटी होगी।

जरूरी भी नहीं कि संत सभी पढ़े-लिये थे, बहुत तो उनमें गैर पढ़े-लिखे थे। लेकिन पढ़े-लिखे होने से सत्य का कोई संबंध भी नहीं है; गैर-पढ़े-लिखे होने से कोई बाधा भी नहीं है। परमात्मा दोनों को समान रूप से उपलब्ध है। सच तो यह है, पढ़े-लिखे के शायद थोड़ी बाधा हो, उसका पढ़ा-लिखा ही अवरोध बन जाए; गैर-पढ़ा-लिखा थोड़ा ज्यादा भोला, थोड़ा ज्यादा निर्दोष। उसके निर्दोष चित्त में, उसके भोले हृदय में सरलता से प्रतिबिंब बन सकता है। कम होगा विकृत प्रतिबिंब, क्योंकि विकृत करने वाला तर्क मौजूद न होगा। झलक ज्यादा अनुकूल होगी सत्य के, क्योंकि विचारों का जाल न होगा जो झलक को अस्तव्यस्त करे। सीधा-सीधा सत्य झलकेगा क्योंकि दर्पण पर कोई शिक्षा की धूल नहीं होगी।

तो भाषा की चिंता मत करना, व्याकरण का हिसाब मत बिठाना। छंद भी उनके। ठीक हैं या नहीं, इस विवेचना में भी न पड़ना। क्योंकि यह तो चूकना हो जाएगा। यह तो व्यर्थ में उलझना हो जाएगा। यह तो गए फूल को देखने और फूल के रंग और फूल के रसायन और फूल किस जाति का है और किस देश से आया है, इस सारे इतिहास में उलझ गए; और भूल ही गए कि फूल तो उसके सौंदर्य में है।

गुलाब कहां से आया, क्या फर्क पड़ता है? ऐतिहासिक चित्त इसी चिंता में पड़ जाता है कि गुलाब कहां से आया! आया तो बाहर से है; उसका नाम ही कह रहा है। नाम संस्कृत का नहीं है, हिंदी का नहीं है। गुल का अर्थ होता है: फूल; आब का अर्थ होता है: शान। फूल की शान! आया तो ईरान से है, बहुत लंबी यात्रा की है। लेकिन यह भी पता हो कि ईरान से आया है गुलाब, तो गुलाब के सौंदर्य का थोड़े ही इससे कुछ अनुभव होगा! गुलाब शब्द की व्याख्या भी हो गई तो भी गुलाब से तो वंचित ही रह जाओगे। गुलाब की पंखुड़ियां तोड़ लीं, पंखुड़ियां गिन लीं, वजन नाप लिया, तोड़-फोड़ करके सारे रसायन खोज लिए–किन-किन से मिलकर बना है, कितनी

मिट्टी, कितना पानी, कितना सूरज–तो भी तो गुलाब के सौंदर्य से वंचित रह जाओगे। ये गुलाब को जानने के ढंग नहीं हैं।

गुलाब की पहचान तो उन आंखों में होती है, जो गुलाब के इतिहास में नहीं उलझती, गुलाब की भाषा में नहीं उलझतीं, गुलाब के विज्ञान में नहीं उलझतीं–जो सीधे-सीधे, नाचते हुए गुलाब के साथ नाच सकता है; जो सूरज में उठे गुलाब के साथ उसके सौंदर्य को पी सकता है; जो भूल ही सकता है अपने को गुलाब में, डुबा सकता है अपने को गुलाब में और गुलाब को अपने में डूब जाने दे सकता है–वही जानेगा।

संतों के वचन गुलाब के फूल हैं। विज्ञान, गणित, तर्क और भाषा की कसौटी पर उन्हें मत कसना, नहीं तो अन्याय होगा। वे तो हैं, अर्चनाएं हैं, प्रार्थनाएं हैं। वे तो आकाश की तरह उठी हुई आंखें हैं। वे तो पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं–चांदत्तारों को छू लेने के लिए। उस अभीप्सा को पहचानना। वह अभीप्सा समझ में आने लगे तो संतों का हृदय तुम्हारे सामने खुलेगा।

और संतों के हृदय में द्वार है परमात्मा का। तुम्हारे सब मंदिर-मस्जिद, तुम्हारे गुरुद्वारे, तुम्हारे गिरजे, परमात्मा के द्वार नहीं हैं। लेकिन संतों के हृदय में निश्चित, द्वार है। जीसस के हृदय को समझो तो द्वार मिल जाएगा; चर्च में नहीं। मुहम्मद के प्राणों को पहचान लो तो द्वार मिल जाएगा; मस्जिद में नहीं।

ऐसे ही एक अदभुत संत दरिया के वचनों में हम आज उतरते हैं। फूलों की तरह लेना। सम्हाल कर! नाजुक बात है। ख्याल रखना, फूलों को, सोना जिस पत्थर पर कसते हैं, उस पर नहीं कसा जाता है। फूलों को सोने की कसने की कसौटी पर कस-कस कर मत देखना, नहीं तो सभी फूल गलत हो जाएंगे।

एक बाउल फकीर से एक बड़े शास्त्रज्ञ पंडित ने पूछा कि प्रेम, प्रेम...निरंतर प्रेम का जप किए जाते हो, यह प्रेम है क्या? मैं भी तो समझूं! इस प्रेम का किस शास्त्र में उल्लेख है, किन वेदों का समर्थन है?

वह बाउल फकीर हंसने लगा। उसका इकतारा बजने लगा। खड़े होकर वह नाचने लगा। पंडित ने कहा: नाचने से क्या होगा? और इकतारा बजाने से क्या होगा? व्याख्या होनी चाहिए प्रेम की। और शास्त्रों का समर्थन होना चाहिए। कहते हो प्रेम परमात्मा का द्वार है, मगर कहां लिखा है? और नाचो मत, बोलो! इकतारा बंद करो बैठो! तुम मुझे धोखे में न डाल सकोगे। औरों को धोखे में डाल देते हो इकतारा बजा कर, नाच कर। औरों को लुभा लेते हो, मुझको न लुभा सकोगे।

उस बाउल फकीर ने फिर भी एक गीत गाया। उस बाउल फकीर ने कहा: गीतों के सिवाय हमारे पास कुछ और है नहीं। यही गीत हमारे वेद, यही गीत हमारे उपनिषद, यही गीत हमारे कुरान। क्षमा करें! नाचूंगा, इकतारा बजाऊंगा, गीत गाऊंगा–यही हमारी व्याख्या है। अगर समझ में आ जाए तो आ जाए; न समझ में आए, दुर्भाग्य तुम्हारा। पर हमसे और कोई व्याख्या न पूछो। और कोई उसकी व्याख्या है ही नहीं।

और जो गीत उसने गाया, बड़ा प्यारा था। गीत का अर्थ था: एक बार एक सुनार एक माली के पास आया और कहा कि तेरे फूलों की बड़ी प्रशंसा सुनी है, तो मैं आज कसने आया हूं कि फूल सच्चे हैं, असली हैं या नकली हैं? मैं अपने सोने के कसने के पत्थर को ले आया हूं।

और वह सुनार उस गरीब माली के गुलाबों को पत्थर पर कस-कसकर फेंकने लगा कि सब झूठे हैं, कोई सच्चे नहीं हैं।

उस बाउल फकीर ने कहा: जो उस गरीब माली के प्राणों पर गुजरी, वही तुम्हें देखकर मेरे प्राणों पर गुजर रही है। तुम प्रेम की व्याख्या पूछते हो! और मैं प्रेम नाच रहा हूं। अंधे हो तुम! तुम प्रेम के लिए शास्त्रीय समर्थन पूछते हो–और मैं प्रेम को संगीत दे रहा हूं! बहरे हो तुम!

मगर अधिक लोग अंधे हैं, अधिक लोग बहरे हैं।

दरिया के साथ अन्याय मत करना, यह मेरी पहली प्रार्थना। ये सीधे-सादे शब्द हैं, पर बड़े गहरे हैं। जितने सीधे-सादे हैं उतने गहरे हैं।

जीवन भर भी तुम्हारी गायत्री हो जाए तो भी उस अनिर्वचनीय की व्याख्या नहीं होती! और सूरज भी तुम्हारी आरती का दीया बन जाए तो भी पूजा पूरी नहीं होती!

–ओशो

अमी झरत विगसत कंवल, प्रवचन-पहला

दरियाशाह (बिहार वाले)

निर्वाण को शब्द में कहा तो नहीं जा सकता है। निर्वाण को भाषा में व्यक्त करने का कोई उपाय तो नहीं। फिर भी समस्त बुद्धों ने उसे व्यक्त किया है। जो नहीं हो सकता उसे करने की चेष्टा की है। असंभव प्रयास अगर पृथ्वी पर काई भी हुआ है तो वह एक ही है–उसे कहने की चेष्टा, जो नहीं कहा जा सकता। उसे बताने की व्यवस्था, जो नहीं बताया जा सकता।

और ऐसा भी नहीं है कि बुद्धपुरुष सफल न हुए हों। सभी के साथ सफल नहीं हुए, यह सच है। क्योंकि जिन्होंने न सुनने की जिद्द ही कर रखी थी, उनके साथ सफल होने का कोई उपाय ही न था। उनके साथ तो अगर निर्वाण को शब्द में कहा भी जा सकता होता तो भी सफलता की कोई संभावना न थी। क्योंकि वे वज्र-बधिर थे। उन्होंने निर्णय ही कर लिया था न सुनने का, न देखने का। लेकिन जिन्होंने हृदय से गहा, जिन्होंने प्रेम की झौली फैलायी और बुद्धपुरुषों के वचनों को झेला, उन तक वह भी पहुंच गया जो नहीं पहुंचाया जा सकता। उन तक उसकी भी खबर हो गयी जिसकी खबर की ही नहीं जा सकती है। उसी अर्थ में दरिया कहते हैं–दरिया कहै शब्द निरबाना। कि मैं कह रहा हूं, निर्वाण से भरे हुए शब्द, निर्वाण से ओतप्रोत शब्द, निर्वाण में पगे शब्द। जो सुन सकेंगे, जो सुनने को सच में राजी हैं, जो विवाद करने में उत्सुक नहीं, संवाद में जिनका रस जगा है, जो मात्र कुतूहल से नहीं सुन रहे हैं वरन जिनके भीतर मुमुक्षा की अग्नि जन्मी है, सुन पाएंगे। शब्दों के पास-पास बंधा हुआ उन तक निकलने की चेष्टा की है। असंभव प्रयास अगर पृथ्वी पर काई भी हुआ है तो वह एक ही है–उसे कहने की चेष्टा, जो नहीं कहा जा सकता। उसे बताने की व्यवस्था, जो नहीं बताया जा सकता।

और ऐसा भी नहीं है कि बुद्धपुरुष सफल न हुए हों। सभी के साथ सफल नहीं हुए, यह सच है। क्योंकि जिन्होंने न सुनने की जिद्द ही कर रखी थी, उनके साथ सफल होने का कोई उपाय ही न था। उनके साथ तो अगर निर्वाण को शब्द में कहा भी जा सकता होता तो भी सफलता की कोई संभावना न थी। क्योंकि वे वज्र-बधिर थे। उन्होंने निर्णय ही कर लिया था न सुनने का, न देखने का। लेकिन जिन्होंने हृदय से गहा, जिन्होंने प्रेम की झौली फैलायी और बुद्धपुरुषों के वचनों को झेला, उन तक वह भी पहुंच गया जो नहीं पहुंचाया जा सकता। उन तक उसकी भी खबर हो गयी जिसकी खबर की ही नहीं जा सकती है। उसी अर्थ में दरिया कहते हैं–दरिया कहै शब्द निरबाना। कि मैं कह रहा हूं, निर्वाण से भरे हुए शब्द, निर्वाण से ओतप्रोत शब्द, निर्वाण में पगे शब्द। जो सुन सकेंगे, जो सुनने को सच में राजी हैं, जो विवाद करने में उत्सुक नहीं, संवाद में जिनका रस जगा है, जो मात्र कुतूहल से नहीं सुन रहे हैं वरन जिनके भीतर मुमुक्षा की अग्नि जन्मी है, सुन पाएंगे। शब्दों के पास-पास बंधा हुआ उन तक निःशब्द भी पहुंचेगा। क्योंकि जब दरिया जैसा व्यक्ति बोलता है तो मस्तिष्क से नहीं बोलता। जब दरिया जैसा व्यक्ति बोलता है तो अपने अंतर्तम की गहराइयों से बोलता है। वह आवाज सिर में गूंजते हुए विचारों की आवाज नहीं है वरन हृदय के अंतर्गृह में सतत बह रही अनुभव की प्रतिध्वनि है।

दरिया जैसे व्यक्ति के शब्द दरिया के भीतर जन्म गए शून्य से उत्पन्न होते हैं।

वे उसके शून्य की तरंगें हैं। वे उसके भीतर हो रहे अनाहत नाद में डूबे हुए आते हैं। और जैसे कोई बगीचे से गुजरे, चाहे फूलों को न भी छुए और चाहे वृक्षों को आलिंगन न भी करे, लेकिन हवा में तैरते हुए पराग के कण, फूलों की गंध के कण उसके वस्त्रों को सुवासित कर देते हैं। कुछ दिखायी नहीं पड़ता कि कहीं फूल छुए, कि कही कोई पराग वस्त्रों पर गिरी, अनदेखी ही, अदृश्य ही उसके वस्त्र सुवासित हो जाते हैं। गुलाब की झाड़ियों के पास से निकलते हो तो गुलाब की कुछ गंध तुम्हें घेरे हुए दूर तक पीछा करती है। ऐसे ही शब्द जब किसी के भीतर खिले फूलों के पास से गुजर कर आते हैं तो उन फूलों की थोड़ी गंध ले आते हैं। मगर गंध बड़ी भनी है।

गंध अनाक्रामक है। गंध बड़ी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। जो हृदय को बिलकुल खोलकर सुनेंगे, शायद उनके नासापुटों को भर दे; शायद उनके प्राण में उमंग बनकर नाचे; शायद उनके भीतर की वीणा के तार छू जाएं; शायद उनके भीतर अनाहत का जागरण होने लगे; शायद उनकी आंखें खुलें, उन्मेष हो, उन्हें भी पता चले कि रात ही नहीं है, दिन है, और उन्हें भी पता चले कि अंधियारा सच नहीं है, सच तो आलोक है। और हम अंधियार में जीते थे, क्योंकि हमने आंखें बंद कर रखी थीं। और शोरगुल सिर्फ मस्तिष्क में है। जरा नीचे मस्तिष्क से उतरे कि संगीत ही संगीत है। ओंकार का नाद अहर्निश बज रहा है।

उस ओंकार के नाद में लिपटे हुए शब्द जब आते हैं–बस कोई श्रावक चाहिए, कोई जो पी ले! जो विचारों को हटाकर एक तरफ रख दे, जो अपने सिर को उतारकर एक तरफ हटा दे और जो सिर्फ प्यास की तरह अपनी झोली को फैला दे, तो जरूर दरिया ठीक कहते हैं–दरिया कहै शब्द निरबाना। मगर ये निर्वाण के शब्द केवल शिष्यों को सुनायी पड़ते हैं, प्रेमियों को सुनायी पड़ते हैं, भक्तों को सुनायी पड़ते हैं। इन शब्दों का पांडित्य से कोई संबंध नहीं है। और तुम भाषा समझते हो इसलिए तुम, इन्हें समझ लोगे, ऐसी भ्रांति में न पड़ना। ये शब्द शून्य से आते हैं। अगर तुम्हें भी इस शून्य की थोड़ी-थोड़ी झलकें आने लगी हो तो ही तुम इन अपूर्व, अद्वितीय वचनों का रस पी सकोगे।

और शून्य की झलके बड़ी स्वाभाविक झलकें है। बस यही कि तुमने उन पर ध्यान नहीं दिया। आती हैं तुम्हें भी, तुम्हारा भी द्वार कभी खुल जाता है, तुम्हारे भी झरोखे कभी खुल जाते हैं, कभी चांदत्तारे तुममें भी झांक जाते हैं, कभी हवाएं तुम्हारे हृदय को भी आकर कंपित कर जाती है, कभी सूरज की किरणें तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करती है, मर तुम ऐसे बेहोश, तुम ऐसे अनुपस्थित, कि तुम्हें कुछ पता नहीं चलता। परमात्मा घटता रहता है तुम्हारे चारों तरफ, अनंत-अनंत रूपों से, और तुम अपने में बंद, तुम अपनी आंखों को बंद किए, अपने हृदय के कपाटो को बंद किए परमात्मा के सागर में जीते हुए भी उससे परिचित रह जाते हो।

थोड़े मौके शून्य के अपने भीतर उतरने दो, और तब समझ सकोगे दरिया के शब्दों को। कभी सुबह उठकर चुपचाप नीले आकाश को देखो, टकटकी बांधकर, होश से भरकर, और तुम चकित होओगे–कभी-कभी ऐसा क्षण आएगा–कभी-कभी आएगा–ऐसा क्षण आएगा जब बाहर भी नीला आकाश और भीतर भी नीला आकाश, एक क्षण को तुम आकाश के साथ आबद्ध हो जाओगे, आलिंगनबद्ध हो जाओगे। एक क्षण को आकाश तुम्हें अपनी बांहों मग ले लेगा और तुम कहीं खो गए...किसी दूर के लोक में खो गए आयाम में खो गए...उस क्षण जो तुम्हें स्वाद मिलेगा, वही शून्य का स्वाद है। अभी बूंद का है, फिर कभी सागर का भी हो सकता है। अभी थोड़ा सा है–आया और गया; हवा के झोंके में गंध आई और उड़ गयी, तुम पकड़ भी न पाओगे–मगर अगर यह स्मरण आना शुरू हो जाए। कि ऐसी गंधें हैं और ऐसी किरणें हैं, तो फिर अपने द्वार तुम कभी-कभी खोलने लगोगे। रात आकाश तारों से भरी हो, लेट जाओ पृथ्वी पर, मिट जाओ पृथ्वी पर, भूल जाओ कि मैं हूं, मिलन जाने दो शरीर को मिट्टी में, भूल जाओ कि मैं हूं–इधर शरीर मिट्टी में मिला कि उधर आत्मा आकाश में मिली। यह बातें एक ही साथ घटती हैं।

तुम दोनों के जोड़ हो। पृथ्वी के और आकाश के। दृश्य के और अदृश्य के। मर्त्य के और अमर्त्य के। मिट्टी मिट्टी में मिल जाने दो थोड़ी देर। ऐसे तो मिलेगी ही आज नहीं कल। आज नहीं कल देह तो गिरेगी, मिट्टी में समाहित हो जाएगी। एक दिन मिट्टी से ही उठी थी, एक दिन मिट्टी में ही वापिस लौट जाएंगी। हर वस्तु आपने मूलस्रोत पर लौट जाती है।

कभी-कभी स्वेच्छा से इसे मिट्टी में पड़ जाने दो। भूल ही जाओ कि तुम्हारी देह भी है। और भूल ही जाओ कि तुम भी हो। उस भूने में ही पहली बार स्मृति आती है। उस की जो तुम हो। उस विस्मरण में ही आत्मस्मरण

जगता है। उसी क्षण तुम आकाश हो जाओगे। सारे तारे तुम्हारे भीतर हो जाएंगे। तुम तारों को अपने भीतर घूमते देखोगे। वह शून्य की घड़ी ध्यान की घड़ी है। ऐसे तुम अगर थोड़ी चेष्टा करो तो अपनी साधारण जिंदगी में भी साधारण मौके बना सकते हो। और इन मौकों के लिए किसी मंदिर और मस्जिद और किसी गुरुद्वार में जाना आवश्यक नहीं है। सच तो यह है कि अगर तुम गुरुद्वारे, मंदिर और मस्जिदों में ही उलझे रहे, तो यह परमात्मा का गुरुद्वारा–यह आकाश तारों से भरा हुआ, यह सूरज रोशनी बरसाता हुआ, यह वृक्ष उसके रस से आकंठ भरे हुए, यह सरिताएं उसकी गूंज लिए हुए सागर की तरफ भागती हुई, इन सब से तुम वंचित रह जाओगे।

तुम्हारी किताबें-चाहे वे कितनी ही कीमती हों; चाहे कुरान हो, चाहे बाइबिल हो और चाहे हों और चाहे गुरुग्रंथ हो–न तो तितलियां आएंगी उन पर, न मधुक्खियां बैठेगी, न भौंरे गुंजार करेंगे। तुम भी जरा सोचो, भौंरे कहां गुंजार कर रहे हैं, तितलियां कहां उड़ी जा रही हैं? उन्हीं का पीछा करो, उन्हीं के साथ हो लो, उन्हीं जैसे हो लो, तो तुम्हें शून्य का अनुभव हो, तो तुम्हें पहली बार ध्यान की थोड़ी सी समझ आए। और वह समझ हो तो फिर बुद्धपुरुषों के वचन सार्थक हैं। दरिया कहै शब्द निरबाना। फिर दरिया के कहे शब्द निर्वाण को खोल देंगे, उघाड़ देंगे, बेपर्दा कर देंगे, घूंघट उठा देंगे। फिर नानक के शब्द परमात्मा से मिला देंगे। फिर मोहम्मद की वाणी अपूर्व है। अगर तुम्हारे भीतर शून्य हो; तो उसी शून्य में वह वाणी जाकर गुंजन पैदा कर सकती है, गुन-गुन पैदा कर सकती है। तुम्हारे भीतर शून्य ही न हो, तुम्हारा पात्र ही कूड़ा-कर्कट से भरा हो, तो कुछ नहीं हो सकता है। तुम्हारे पात्र में शून्यता होनी चाहिए।

और शून्यता सीखनी हो तो प्रकृति के पास जाओ; जाओ पहाड़ों के पास बैठो वृक्षों के पास। अदभुत थे वे लोग जिन्होंने वृक्षों की पूजा की, प्यारे थे वे लोग जिन्होंने सूरज-चांदत्तारों को नमस्कार किया और इनको देवता कहा, ज्ञानी थे वे लोग जिन्होंने अग्नि की पूजा की, दिए जलाए और दिए की ज्योति पर अपने ध्यान को जमाया। अग्नि उसकी है, चांदत्तारे उसके हैं, वृक्ष उसके हैं, नदी-नद, सागर-सरोवर उसके हैं। बेहतर थे वे लोग, समझदार थे वे लोग, उन्होंने प्रकृति के साथ संबंध जोड़ने की कोशिश की थी। और प्रकृति से जिसका संबंध जुड़ता है, परमात्मा बहुत दूर नहीं है–बस प्रकृति के ही घूंघट में तो छिपा है। प्रकृति उसकी ही ओढ़नी है। जरा प्रकृति को तुम समझने लगो तो परमात्मा से ज्यादा देर दूर न रह सकोगे। और जो परमात्मा से दूर है, वह है ही क्या? एक अंधेरी रात। एक दुखस्वप्न।

तुम्हारी जिंदगी है क्या? एक लंबी-लंबी रात, जिसकी सुबह आती ही नहीं! एक ऐसी रात जिसकी प्रभात पता नहीं कहां खो गयी! और एक ऐसी रात जिसमें न चांद है, न सितारे हैं! और एक ऐसी रात, चांद-सितारों की तो बात दूर, जुगनुओं की भी रोशनी नहीं! और एक ऐसी रात जिसमें न कोई दिया है, न कोई शमा है। बस तुम हो–लड़ाते, गिरते-उठते, दीवालों से सिर फोड़ते। और इसी को तुम जीसस समझे हो? जीवन तो उनका है जिनकी आंख खुली। क्योंकि जिनकी आंख खुली, उनकी सुबह हुई। जीवन तो उनका जिनकी अपने से पहचान हुई। अपने से पहचान हुई तो सबसे पहचान हुई। जीवन तो उनका है जिन्हें चारों तरफ परमात्मा का नृत्य दिखाई पड़ना शुरू हुआ। बस वे ही जीते हैं! शेष सारे लोग तो मरते हैं।

हाथ थे मिटे यूं ही, रोजे-अजल से ऐ अजल
रूए-जमी पै हैं तो क्या, जेरे-जमी हुए तो क्या?

क्या फर्क पड़ता है कि तुम जमीन के ऊपर हो कि जमीन के भीतर हो। मिटे ही हुए हो।

–ओशो

दरिया कहै शब्द निरबाना, प्रवचन-पहला

ऋषि शांडिल्य

इस जगत को पीने की कला है भक्ति। और जगत को जब तुम पीते हो तो कंठ में जो स्वाद आता है, उसी का नाम भगवान है। इस जगत को पचा लेने की कला है भक्ति। और जब जगत पच जाता है तुम्हारे भीतर और उस पचे हुए जगत से रस का आविर्भाव होता है–रसो वै सः–उस रस को जगा लेने की कीमियां है भक्ति।

शांडिल्य ने ठीक ही किया जो भगवान की जिज्ञासा से शुरू नहीं की बात। भगवान की जिज्ञासा दार्शनिक करते हैं। दार्शनिक कभी भगवान तक पहुंचते नहीं; विचार करते हैं भगवान का। जैसे अंधा विचार करे प्रकाश का। बस ऐसे ही उनके विचार हैं। अंधे की कल्पनाएं, अनुमान। उन अनुमानों में कोई भी निष्कर्ष कभी नहीं। निष्कर्ष तो अनुभव से आता है।

शांडिल्य के सूत्र दर्शनशास्त्र के सूत्र नहीं हैं, प्रेमशास्त्र के सूत्र हैं। इसलिए पहले सूत्र में ही शांडिल्य ने अपनी यात्रा का सारा संकेत दे दिया–मैं किस तरफ जा रहा हूं।

इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे–और मौत दस्तक देगी ही–तुम भक्ति की जिज्ञासा करो। मौत आए, उसके पहले भक्ति आ जाए, ऐसे जीवन का नियोजन करो। इसी को मैं संन्यास कहता हूं। जीवन का ऐसा नियोजन कि मौत के पहले भक्ति आ जाए, तो तुम कुशलता से जिए, तो तुम होशियार थे, तो तुम्हारे भीतर बुद्धिमत्ता थी।

वख्त की शईए-मुसलसल कारगर होती गयी
जिंदगी लहजा-ब-लहजा मुख्तसर होती गयी
सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी

सुन रहे हो? ये सांस की वीणा बजती ही रहेगी और मौत करीब आती जा रही है। "सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात' यह जिंदगी का गीत सांस के बाजे पर बजता ही रहेगा। इसी में मत भटके रहना।

सांस के परदों में बजता ही रहा साजे-हयात
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी

जरा गौर से सुनो, मौत के कदम रोज-रोज करीब आते जा रहे हैं। मौत फासला कम कर रही है। जिस दिन से तुम पैदा हुए हो, उसी दिन से मौत फासला कम करने में लग गयी है: तुम रोज मर रहे हो। सांसों में बहुत भटके मत रहना। इनका बहुत भरोसा नहीं। अभी आ रही है सांस, अभी न आएगी तो कुछ भी न कर सकोगे। अवश पड़े रह जाओगे। तब बहुत पछताओगे। आह तेरे मैकदे से बेपिये जाता हूं मैं। रोओगे फिर, लेकिन तब बहुत देर हो चुकी। कहते हैं सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। लेकिन सांझ भी आ जाए तो! अगर मौत आ गयी तो सांझ भी आयी और गयी। फिर लौटने का उपाय न रहा, समय न रहा।

मौत का अर्थ क्या होता है? इतना ही कि जितना समय तुम्हें दिया था, चुक गया। मौत का अर्थ होता है, जितना अवसर तुम्हें दिया था, तुमने गंवा दिया। मौत का अर्थ होता है, अब और समय नहीं बचा। अब करने का कोई उपाय नहीं। एक आह भी न भर सकोगे। एक प्रार्थना भी न कर सकोगे। राम का नाम भी न ले सकोगे। सांस ही न लौटी तो राम का नाम अब कैसे ले सकोगे? एक नाम रहने की भी, लेने की भी सुविधा नहीं बचती।

और मौत रोज करीब आ रही है। और तुम जिंदगी की सांसों में उलझे पड़े रहते हो। अथातो भक्ति जिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करो!

इसके पहले कि हम आज के सूत्रों में उतरें, कुछ पिछले सूत्रों का थोड़ा-सा स्वाद ले लेना जरूरी है।

पूर्व-सूत्र:

सूर्य को देखने के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो सीधा सूरज को देखो और एक दर्पण में सूरज को देखो। हालांकि दर्पण में जो दिखायी पड़ता है वह प्रतिबिंब ही है, असली सूरज नहीं। प्रतिबिंब तो प्रतिबिंब ही है, असली कैसे होगा? वह असली का धोखा है। वह असली की छाया है। इसलिए सूरज को देखने को दो ढंग हैं यह कहना भी शायद ठीक नहीं, ढंग तो एक ही है–सीधा देखो। दूसरा ढंग कमजोरों के लिए है, कायरों के लिए है। जो लोग शास्त्र में सत्य को खोजते हैं, वे कायर हैं। वे दर्पण में सूरज को देखने की कोशिश कर रहे हैं। दर्पण में सूरज दिख भी जाएगा तो भी किसी काम का नहीं। छाया मात्र है। दर्पण के सूरज को तुम पकड़ न पाओगे। शास्त्र में जो सत्य की झलक मालूम होती है, झलक ही है, लेकिन लोगों ने शास्त्र सिर पर रख लिये हैं। कोई गीता, कोई कुरान, कोई बाइबिल। लोग शास्त्रों की पूजा में लगे हैं। यह दर्पण की पूजा चल रही है; सूरज को तो भूल ही गये। और दर्पणों पर इतने फूल चढ़ा दिये हैं पूजा के कि अब उनमें प्रतिबिंब भी नहीं बनता। उन पर व्याख्याओं की इतनी धूल जमा दी है, सिद्धांतों का इतना जाल फैला दिया है कि अब शास्त्रों से कोई खबर नहीं आती सत्य की।

सत्य को देखना हो, सीधा ही देखा जा सकता है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं–भक्ति की जिज्ञासा करें हम। शांडिल्य के पहले भक्त हो चुके थे, बहुत हो चुके थे, ज्ञानी हो चुके थे, शास्त्र निर्मित हो चुके थे–शांडिल्य ने नहीं कहा कि चलो अब शास्त्र में चलें और सत्य को खोजें, चलो अब शास्त्र में चलें और भगवान की छबि को तलाशें। नहीं, शांडिल्य ने कहा, हम अपने हृदय को साफ करें। भगवान मिलेगा तो वहां मिलेगा। शब्दों में नहीं, परायों के शब्दों में नहीं, अपने अनुभव में मिलेगा।

अनुभूति पर यह जारे ठीक-ठीक पकड़ लेना।

परमात्मा की झलक तो सब तरफ मौजूद है। और अगर तुम्हें वृक्षों में उसकी झलक नहीं दिखायी पड़ती तो तुम्हें शास्त्रों में उसकी झलक कभी भी दिखायी नहीं पड़ेगी। क्योंकि शास्त्र में तो मुर्दा शब्द हैं। न तो बढ़ते, न घटते; न उनमें नये पत्ते लगते, न नयीशाखेंउमगतीं, न पक्षी बसेरा लेते। शास्त्रों में तो थोथे शब्द हैं। वहां फूल कहां खिलते हैं? वहां सुगंध कहां उठती है? शास्त्र तो कागज पर खींची गयी लकीरें हैं। मगर खूब धोखा आदमी ने खाया है? उन्हीं लकीरों की पूजा करता रहता है। या तो यह धोखा है, या यह चालबाजी है।

चालबाजी यह है कि इस तरह भगवान से बचता रहता है। कहता है, देखो तो तुम्हारे शास्त्रों को पूजते हैं। कभी-कभी भगवान को और-और झलकों में भी पकड़ने की कोशिश करता है। पुराने दिनों में राजाओं को, महाराजाओं को भगवान मान लिया जाता था। पद को परमपद समझ लिया जाता था। जो लोग राजाओं की पूजा करते रहे; पद की प्रतिष्ठा करते रहे। बात अब भी समाप्त नहीं हो गयी है। राजा तो अब नहीं के बराबर रहे, न के बराबर रहे...कहते हैं अंत में दुनिया में केवल पांच ही राजा रह जाएंगे; एक इंग्लैंड का राजा और चार ताश के पत्तों के राजा; बाकी सब चले जाएंगे। इंग्लैंड का राजा भी ताश का पत्ता ही है, इसलिए बचेगा। और कोई बच सकता नहीं। लेकिन राजनीति का अब भी बल है। अब भी राजपद का बल है। राजा न रहे हों, लेकिन राजनेता है। तुम उसीकी पूजा में लग जाते हो। देखते हो, राजनेता के आसपास लोग कैसी पूंछ हिलाते हैं? किस तरह गजरे पहनाते हैं? किस तरह फूल बरसाते हैं?

धन की पूजा में लग जाते हो। जिसके पास धन है, वहां पूजा में लग जाते हो। या तो कुछ लोग शास्त्रों के मुर्दा शब्दों को पूजते रहते हैं, या मंदिरों में रखी हुई पत्थर की मूर्तियों को पूजते रहते हैं, या पंडित-पुजारी को पूजते रहते हैं, जिन्हें खुद भी परमात्मा की कोई झलक नहीं मिली, जो तुम्हारे नौकर-चाकर हैं, जिन्हें तुमने नियुक्त कर रखा है, जो पूजा के नाम पर केवल आजीविका कमा रहे हैं। या लोग पद में देख लेते हैं परमात्मा को

और पद की पूजा में लग जाते हैं, या धन में। मगर ये सब मुर्दा हैं खेल। अगर परमात्मा को देखना हो तो सीधा देखो। परमात्मा सीधा उपलब्ध है, इन पक्षियों के गीत में, इन वृक्षों की हरियाली में, आकाश के चांदत्तारों में, मनुष्यों की आंखों में। और जहां भी तुम प्रेम की कुदाल से खोदोगे वहीं तुम पाओगे कि परमात्मा का झरना मिलना शुरू हो गया। झलकों में मत भटको।

इसलिए पूर्व-सूत्रों ने कहा कि विभूतियों में मत उलझ जाना। विभूतियां तो झलकें मात्र हैं। प्रतिभा की। कोई आदमी बड़ा गणितज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा संगीतज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा होशियार है और धन इकट्ठा कर लिया है, कोई आदमी बड़ा चालबाज है और राजपद पर पहुंच गया है, ये सब प्रतिभाएं हैं। इनका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है। इनके होने से कोई धर्म का संबंध नहीं है।

इसलिए पूर्व-सूत्रों में कहा गया कि प्रतिभा, विभूति, इनमें मत उलझ जाना। इनका प्रभाव पड़ता है। कोई आदमी अच्छा बोलता है, इससे मत उलझ जाना, क्योंकि अच्छे बोलने से सत्य का कोई संबंध नहीं है। हो सकता है अच्छा बोलता हो, लेकिन झूठ ही बोलता हो। और इतने अच्छे ढंग से बोलता हो कि झूठ भी सच जैसा मालूम पड़ता हो। यह भी हो सकता है, कोई आदमी सुंदर गीत गा सकता है–ऐसे सुंदर कि आकाश की उड़ान लें, ऐसे सुंदर कि लगे सत्य के लोक से उतरा है यह आदमी, मगर इससे उलझ मत जाना। यह सिर्फ हो सकता है गीत की कला हो, यह मात्रा बिठाने की कुशलता हो, यह आदमी कवि हो।

बहुत तरह की विभूतियां हैं। विभूतियां श्रम से अर्जित हैं, चाहे इस जन्म की हो चाहे पिछले जन्म की हों। विभूति श्रम से उत्पन्न होती है।

तो शांडिल्य ने पूर्व-सूत्रों में कहा–प्रतिभा को या विभूति को परमात्मा मत समझ लेना।

फिर उन्होंने एक फर्क किया जो बड़ा बहुमूल्य है, जिसे खयाल में ले लोगे तो ही आज के सूत्र समझ में आ सकेंगे। उन्होंने यह कहा फिर–लेकिन कृष्ण प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं; या राम प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं, राम या कृष्ण या बुद्ध या क्राइस्ट या महावीर या जरथुस्त्र, ये प्रतिभाएं ही नहीं हैं, ये अवतार हैं।

क्या फर्क है अवतार और प्रतिभा का?

–ओशो

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2, प्रवचन-01

जीवन है ऊर्जा — ऊर्जा का सागर। समय के किनारे पर अथक, अंतहीन ऊर्जा की लहरें टकराती रहती हैं: न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत; बस मध्य है, बीच है। मनुष्य भी उसमें एक छोटी तरंग है; एक छोटा बीज है — अनंत संभावनाओं का।

तरंग की आकांक्षा स्वाभाविक है कि सागर हो जाए और बीज की आकांक्षा स्वाभाविक है कि वृक्ष हो जाए। बीज जब तक फूलों में खिले न, तब तक तृप्ति संभव नहीं है।

मनुष्य कामना है परमात्मा होने की। उससे पहले पड़ाव बहुत हैं, मंजिल नहीं है। रात्रि-विश्राम हो सकता है। राह में बहुत जगहें मिल जाएंगी, लेकिन कहीं घर मत बना लेना। घर तो परमात्मा ही हो सकता है।

परमात्मा का अर्थ है: तुम जो हो सकते हो, उसकी पूर्णता।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है; कहीं आकाश में बैठा कोई रूप नहीं है; कोई नाम नहीं है। परमात्मा है तुम्हारी आत्यंतिक संभावना — आखिरी संभावना, जिसके आगे फिर कोई जाना नहीं है; जहां पहुंचकर तृप्ति हो जाती है, परितोष हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य तब तक पीड़ित रहेगा। तब तक तुम चाहे कितना ही धन कमा लो, कितना ही वैभव जुटा लो, कहीं कोई पीड़ा का कीड़ा तुम्हें भीतर काटता ही रहेगा; कोई बेचैनी सालती ही रहेगी; कोई कांटा चुभता ही रहेगा। लाख करो भुलाने के उपाय — बहुत तरह की शराबें हैं विस्मरण के लिए लेकिन भुला न पाओगे। और अच्छा है कि भुला न पाओगे; क्योंकि काश, तुम भुलाने में सफल हो जाओ तो फिर बीज बीज ही रह जाएगा, फूल न बनेगा — और जब तक फूल न बने और जब तक मुक्त आकाश को गंध फूल की न मिल जाए, तब तक अगर तुम भूल गये तो आत्मघात होगा, तब तक अगर तुमने अपने को भुलाने में सफलता पा ली तो उससे बड़ी और कोई विफलता नहीं हो सकती।

अभागे हैं वे जिन्होंने समझ लिया कि सफल हो गये। धन्यभागी हैं वे, जो जानते हैं कि कुछ भी करो, असफलता हाथ लगती है। क्योंकि ये ही वे लोग हैं जो किसी-न-किसी दिन, कभी-न-कभी परमात्मा तक पहुंच जाएंगे।

जहां सफलता मिली वहीं घर बन जाता है। जहां असफलता मिली वहीं से पैर आगे चलने को तत्पर हो जाते हैं।

परमात्मा तक पहुंचे बिना कोई तृप्ति संभव नहीं है।

कहा मैंने, जीवन ऊर्जा है।

ऊर्जा के तीन रूप हैं। एक तो बीजरूप है: कुछ भी प्रगट नहीं है। फिर वृक्षरूप है: सब कुछ प्रगट हो गया है, लेकिन प्राण अप्रकट हैं। फिर फूलरूप है: फिर प्राण भी प्रगट हुआ; फिर वह अनूठी अपूर्व गंध भी आ गयी, पंखुड़ियां खिल गयीं और खुले आकाश के साथ मिलन हो गया, अनंत के साथ एकता हो गयी!

साधारणतः: बीज का अर्थ है: कामना। वृक्ष का अर्थ है: प्रेम। फूल का अर्थ है: भक्ति। जब तक तुम बीज में हो, तब तक कामवासना में रहोगे। जब तुम वृक्ष बनोगे तब तुम्हारे जीवन में प्रेम का अवतरण होगा। और जब तुम फूल बनोगे, तब भक्ति।

भक्ति परम शिखर है। वह आखिरी बात है।

इसे हम थोड़ा समझ लें, तभी इन अनूठे सूत्रों में प्रवेश हो सकेगा।

तुम शरीर हो; तुम उसके पार भी कुछ हो, जिसका तुम्हें पता नहीं।

शरीर तो बहुत स्थूल है। उसका पता चल जाता है। उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। शरीर तो वजन रखता है। उसका बोध हो जाता है। उसके लिए किसी ध्यान की जरूरत नहीं है।

मन की भी थोड़ी झलक तुम्हें मिल जाती है, क्योंकि मन स्थूल और सूक्ष्म के मध्य में है–शरीर से भी जुड़ा है, आत्मा से भी। शरीर की तरफ से थोड़ी सी खबरें मन की मिल जाती हैं, क्योंकि एक धागा शरीर के तट से जुड़ा है। लेकिन आत्मा की तुम्हें कोई खबर नहीं मिलती। आत्मा कोरा शब्द मालूम होता है। आत्मा शब्द सुनने से ही तुम्हारे भीतर कोई घूंघर नहीं बजते। आत्मा शब्द सुनने से ही बेचैनी-सी होती है। शब्द बेबूझ है। भाषाकोश का अर्थ तो पता है; जीवन के कोश का कुछ अर्थ पता नहीं।

शरीर के साथ जुड़ी है कामवासना। कामवासना स्थूल है। शरीर शरीर को मांगता है: कामवासना का अर्थ। शरीर अपने से विपरीत शरीर को मांगता है; क्योंकि एक किनारा अधूरा है, दूसरे किनारे की चाह पैदा होती है। पुरुष स्त्री को मांगता है, स्त्री पुरुष को मांगती है, ताकि जीवन की सरिता बीच में बह सके, दो किनारे जुड़ जाएं। पुरुष अकेला है। स्त्री अकेली है।

शरीर के तल पर शरीर की मांग है, शरीर से मिलन की आकांक्षा है। क्षण-भर का मिलन हो भी जाता है। क्षण-भर को शरीर शरीर में डूब जाते हैं और खो भी जाते हैं–लेकिन बस क्षण-भर को! उससे पीड़ा मिटती नहीं, गहन हो जाती है। उस मिलन के बाद बड़ा गहरा विषाद हो जाता है, क्योंकि मिलन के बाद गहरा विछोह होता है। मिलता कुछ भी नहीं; ऐसा लगता है, उलटा खो गया।

शरीर का मिलन क्षण-भर को ही हो सकता है। स्थूल एक-दूसरे में विलीन नहीं हो सकते। स्थूल की सीमा है। स्थूल अपनी सीमा को छोड़ नहीं सकता, अन्यथा स्थूल न रह जाएगा।

बर्फ के दो टुकड़ों को तुम मिलाने की कोशिश करो, मुश्किल होगी। लेकिन वे ही पिघल जाएं जल हो कर, बिलकुल मिल जाते हैं। फिर कोई अड़चन नहीं होती। सीमा खो गयी, मिलन सुलभ हो गया।

शरीर बर्फ की तरह है–जमा हुआ, ठोस। ऊर्जा वही है; पिघल जाए तो मन बनता है। मन जल की तरह है। सीमा तो है, लेकिन तरल सीमा है, ठोस नहीं। तुम मन को कैसा भी ढालो, ढल जाता है। शरीर को कैसा भी ढालो तो न ढलेगा। मन को कैसा भी ढालो, ढल जाएगा।

हिंदू के घर में बच्चा पैदा हो, मुसलमान के घर में रख दो, मुसलमान हो जाएगा। शरीर नहीं होगा, मन हो जाएगा। शरीर तो बाप की ही झलक देगा, मां की झलक देगा। शरीर की खबर तो वहीं जुड़ी रहेगी जहां से शरीर आया है, लेकिन मन मुसलमान का हो जाएगा। बच्चे को याद भी न रहेगी कि वह कभी हिंदू था। हिंदू होने के पहले ही, मन इसके पहले कि ढलता, मुसलमान हो गया। मुसलमान बाद में चाहे तो हिंदू हो जाए,ईसाई हो जाए; आस्तिक नास्तिक हो जाए, नास्तिक आस्तिक हो जाए–मन में कुछ अड़चन नहीं है।

मन तरल है। मन प्रतिपल बदलता रहता है। उसकी तरलता अनूठी है।

कामवासना है शरीर जैसी और शरीर की

प्रेम है मन जैसा और मन का।

प्रेम की मांग शरीर की मांग से ऊपर है। प्रेम कहता है: दूसरे का मन मिल जाए! प्रेम करने वाला वेश्या के द्वार पर न जाएगा। यह बात ही बेहूदी मालूम पड़ेगी। यह बात ही संभव नहीं है। यह सोच भी बेहूदा मालूम पड़ेगा। लेकिन कामवासना से भरा व्यक्ति वेश्या के घर चला जाएगा; शरीर की ही मांग है।

शरीर खरीदा जा सकता है; मन खरीदा नहीं जा सकता।

शरीर जड़ है। मन थोड़ा-थोड़ा चेतन है; इसलिए इतना नीचे नहीं उतरा जा सकता कि खरीद और बेच की जा सके।

मन प्रेम मांगता है: कोई, जो अपना सर्वस्व देने को तैयार हो, बिना किसी शर्त के। मन अपने को किसी को दे देना चाहता है, बेशर्त लुटा देना चाहता है। मन की मांग प्रेम की है।

जब दो मन मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम प्रेम है। जब दो शरीर मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है।

फिर मन के भी पार तुम्हारा अस्तित्व है–आत्मा का। आत्मा ऐसे है जैसे पानी भाप बनकर आकाश में उड़ गया। पानी ही है, लेकिन अब तरल सीमा भी न रही। अब कोई सीमा न रही; आकाश में फैलना हो गया! अदृश्य हो जाती है भाप; थोड़ी दूर तक दिखायी पड़ती है, फिर खो जाती है!

आत्मा अदृश्य है–भाप जैसी!

आत्मा की तलाश किसकी है!

शरीर मांगता है शरीर को। मन मांगता है मन को। आत्मा मांगती है आत्मा को।

शरीर और शरीर के मिलन से जो रस पैदा होता है–क्षणभंगुर-उसका नाम: काम। मन और मन के मिलन से जो रस पैदा होता है- थोड़ा ज्यादा स्थायी, जीवन भर चल सकता है। आकांक्षा तो मन की होती है कि जीवन के पार भी चलेगा। प्रेमी कहते हैं, " मौत हमारे प्रेम को न तोड़ पाएगी।' अगर प्रेम जाना है, तो प्रेमी कहता है, "कुछ हमें छुड़ा न पाएगा। शरीर मिट जाएगा तो भी हमारा प्रेम नष्ट न होगा।

यह कामना ही है, लेकिन मन थोड़ा ज्यादा दूरगामी है। शरीर से उसकी सीमा थोड़ी बड़ी है।

फिर आत्मा है; शाश्वत की मांग है उसकी। उससे कम पर उसकी तृप्ति नहीं। क्षणभंगुर को भी क्या चाहना! अंधेरी रात में क्षण-भर को बिजली चमकती है, फिर अंधेरा और अंधेरा हो जाता है। दुख ही बेहतर है। दुख की दुनिया में क्षण-भर को सुख का फूल खिलता है, दुख और दूभर हो जाता है, फिर झेलना और मुश्किल हो जाता है।

आत्मा मन के प्रेम को भी नहीं मांगती, क्योंकि मन तरल है: आज किसी से प्रेम किया, कल किसी और के प्रेम में पड़ सकता है। मन का कोई बहुत भरोसा नहीं है। जब प्रेम में होता है तो ऐसा ही कहता है, "अब तेरे सिवाय किसी को कभी प्रेम न कर सकूंगा। अब तेरे सिवाय मेरे लिए कोई और नहीं।' मगर ये मन की ही बातें हैं। मन का भरोसा कितना! आज कहता है; कल बदल जाए! अभी कहता है; अभी बदल जाए!

मन पानी की तरह तरल है।

आत्मा की मांग है शाश्वत की, चिरंतन की, सनातन की। आत्मा की मांग है आत्मा की आत्मा और आत्मा के मिलन पर जो रस पैदा होता है, उसका नाम भक्ति है।

शरीर की सीमा है ठोस। मन की सीमा है तरल। आत्मा की कोई सीमा नहीं।

काम क्षणभंगुर है। प्रेम थोड़ा दूर तक जाता है, थोड़ा स्थायी हो सकता है। भक्ति शाश्वत है।

काम में शरीर और शरीर का मिलन होता है–स्थूल का स्थूल से; मन में–सूक्ष्म का सूक्ष्म से; आत्मा में–निराकार का निराकार से। भक्ति निराकार का निराकार से मिलने का शास्त्र है।

ऐसा समझो कि तुम अपने घर में बैठे हो द्वार खिड़कियां बंद करके, रोशनी नहीं आती सूरज की भीतर, हवा के झोंके नहीं आते, फूलों की गंध नहीं आती, पक्षियों के कलरव की आवाज नहीं आती–तुम अपने में बंद बैठे हो:ऐसा शरीर है, द्वार-दरवाजे सब बंद!

फिर तुमने द्वार-दरवाजे खोले, खिड़कियां खोलीं, हवा के नये झोंकों ने प्रवेश किया, सूरज की किरणें आयीं, पक्षियों के गीत गूंजने लगे, आकाश की झलक मिली: ऐसा मन है! थोड़ा खुलता है। लेकिन बैठे तुम घर में ही हो।

फिर भक्ति है कि तुम घर के बाहर निकल आये, खुले आकाश में खड़े हो गये: अब सूरज आता नहीं, बरसता है; अब हवा कहीं से आती नहीं, तुम्हारे चारों तरफ आंदोलित होती है; अब तुम पक्षियों के कलरव में एक हो गये!

भक्ति-सूत्र पूरा शस्त्र है भक्ति का। एक-एक सूत्र को अति ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना, और अति प्रेमपूर्वक भी, क्योंकि यह प्रेम का ही शास्त्र है। इसे तुम तर्क से न समझ पाओगे। स्वाद ही समझ पाएगा।

"अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः।'

अब भक्ति की व्याख्या!

क्यों, "अब' "अथातो...!

हो चुकी बात काम की बहुत। हो चुकी चर्चा प्रेम की बहुत। अथातो भक्ति...अब भक्ति की बात हो। जी लिए बहुत। देख लिए शरीर के भी खेल। देख लिए मन के भी जाल। गुजर चुके उन सब पड़ावों से। अब भक्ति की थोड़ी बात हो।

"अब'! अचानक शुरू होता है शास्त्र!

सिर्फ भारत में ऐसे शास्त्र हैं जो "अथातो' ये शुरू होते हैं; दुनिया की किसी भाषा में ऐसे शास्त्र नहीं हैं। क्योंकि यह तो बड़ा अधूरा मालूम पड़ता है।

कहीं "अब' से कोई शास्त्र शुरू होता है! यह तो ऐसा लगता है जैसे इसके पहले कोई बात चल रही थी; कोई कथा आगे चल रही थी जो छूट गयी है; कोई बीच का अध्याय है,प्रारंभ का नहीं।

पश्चिम के व्याख्याकार जब पहली दफा ब्रह्मसूत्र से परिचित हुए–वह भी ऐसे ही शुरू होता है: "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा,' अब ब्रह्म की जिज्ञासा–तो उन्होंने कहा कि इसके पहले कोई किताब थी जो खो गयी है। निश्चित ही, क्योंकि यह तो मध्य से शुरुआत हो रही है।

नहीं, कोई किताब खो नहीं गयी है, यह शुरुआत ही है। यह जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। शास्त्र शुरू ही हो रहा है।, मगर जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। यह उनके लिए नहीं है जो अभी शरीर की वासना में पड़े हों। वे इसे न समझ पाएंगे अभी देर है। अभी फल पकेगा। अभी उनके गिरने का समय नहीं आया। यह उनके लिए नहीं है जो अभी प्रेम की कविता में डूबे हैं और उसको ही जिन्होंने आखिरी समझा है। उन दो को छोड़ने के लिए "अथातो'।

तो, शुरू में ही शास्त्र कह देता है कि कौन है अधिकारी। यह अधिकारी की व्याख्या है "अथातो'। यह कहता है कि अगर चुक गये हो कामवासना से, भर गया हो मन–तो, अन्यथा अभी थोड़ी देर और भटको, क्योंकि भटके बिना कोई अनुभव नहीं है। अगर अभी प्रेम में रस आता हो तो क्षमा करो; अभी इस मंदिर में प्रवेश न हो सकेगा। अभी तुम किसी और ही प्रतिमा के पुजारी हो; अभी परमात्मा की प्यास नहीं जगी। अभी तुम या तो बीज हो या वृक्ष हो, अभी फूल होने का समय नहीं आया।

यह, जीवन की पाठशाला में जिनका आखिरी अध्याय करीब आ गया, इसका यह मतलब नहीं है कि यह बूढ़ों के लिए है। जैसे पश्चिम के लोगों ने गलत समझा। उन्होंने समझा कि यह तो बूढ़ों के लिए है।

नहीं, प्रौढ़ के लिए है, बूढ़ों के लिए नहीं है। प्रौढ़ कोई कभी भी हो सकता है। एक छोटा बच्चा प्रौढ़ हो सकता है। प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता चाहिए! और नहीं तो बूढ़े भी बचकाने रह जाते हैं। कोई बूढ़े होने से थोड़े ही पक जाता है। धूप में पक जाने से बाल कोई वृद्ध नहीं हो जाता। बूढ़े के मन में भी वही कामनाएं चलती रहती हैं, वही वासनाएं चलती रहती हैं। तो उसके लिए भी नहीं हैं यह शास्त्र।

फिर कभी-कभी कोई जवान भी भर-जवानी में जाग जाता है, अभी जब कि सोने के दिन थे तब जाग जाता है। कभी कोई छोटा बच्चा भी अचानक बीज से छलांग लेता है और फूल हो जाता है। कोई शंकराचार्य छोटी उम्र में, बड़ी छोटी उम्र में...। उम्र का कोई सवाल नहीं है, बोध का सवाल है।

–ओशो

भक्ति सूत्र, प्रवचन-पहला

धर्म व्याकरण के सूत्रों में नहीं है, वह तो परमात्मा के भजन में है। और भजन, जो तुम करते हो, उसमें नहीं है। जब भजन भी खो जाता है, जब तुम ही बचते हो; कोई शब्द आस-पास नहीं रह जाते, एक शून्य तुम्हें घेर लेता है। तुम कुछ बोलते भी नहीं, क्योंकि परमात्मा से क्या बोलना है! तुम्हारे बिना कहे वह जानता है। तुम्हारे कहने से उसके जानने में कुछ बढ़ती न हो जाएगी। तुम कहोगे भी क्या? तुम जो कहोगे वह रोना ही होगा। और रोना ही अगर कहना है तो रोकर ही कहना उचित है, क्योंकि जो तुम्हारे आंसू कह देंगे, वह तुम्हारी वाणी न कह पाएगी। अगर अपना अहोभाव प्रकट करना हो, तो बोल कर कैसे प्रकट करोगे? शब्द छोटे पड़ जाते हैं। अहोभाव बड़ा विराट है, शब्दों में समाता नहीं, उसे तो नाच कर ही कहना उचित होगा। अगर कुछ कहने को न हो, तो अच्छा है चुप रह जाना, ताकि वह बोले और तुम सुन सको।

भजन–कीर्तन, गीत और नाच है। वे भाव को प्रकट करने के उपाय हैं।

बिना कहे तुम भजन हो जाओ, तुम गीत हो जाओ, इस तरफ शंकर का इशारा है। ये पद बड़े सरल हैं, सूत्र बड़े सीधे हैं–और शंकर जैसे मेधावी पुरुष ने लिखे हैं। शंकर की सारी वाणी में 'भज गोविन्दम्' से मूल्यवान कुछ भी नहीं है। क्योंकि शंकर मूलतः दार्शनिक हैं। उन्होंने जो लिखा है, वह बहुत जटिल है; वह शब्द, शास्त्र, तर्क, ऊहापोह, विचार है। लेकिन शंकर जानते हैं कि तर्क, ऊहापोह और विचार से परमात्मा पाया नहीं जा सकता; उसे पाने का ढंग तो नाचना है, गीत गाना है; उसे पाने का ढंग भाव है, विचार नहीं; उसे पाने का मार्ग हृदय से जाता है, मस्तिष्क से नहीं। इसलिए शंकर ने ब्रह्म-सूत्र के भाष्य लिखे, उपनिषदों पर भाष्य लिखे, गीता पर भाष्य लिखा, लेकिन शंकर का अंतरतम तुम इन छोटे-छोटे पदों में पाओगे। यहां उन्होंने अपने हृदय को खोल दिया है। यहां शंकर एक पंडित और एक विचारक की तरह प्रकट नहीं होते, एक भक्त की तरह प्रकट होते हैं।

'हे मूढ़, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी।'

'हे मूढ़, गोविन्द को भजो।'

मूढ़ता क्या है? शंकर तुम्हें मूढ़ कह कर कोई गाली नहीं दे रहे हैं। अत्यंत प्रेमपूर्ण वचन है उनका यह।

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्मूढ़मते।

'हे मूढ़, भगवान को भज, गोविन्द को भज।'

मूढ़ता का क्या अर्थ है? मूढ़ता का अर्थ समझो।

मूढ़ता का अर्थ अज्ञानी नहीं है; मूढ़ता का अर्थ है: अज्ञानी होते हुए अपने को ज्ञानी समझना। मूढ़ता पंडित के पास होती है, अज्ञानी के पास नहीं। अज्ञानी को क्या मूढ़ कहना! अज्ञानी सिर्फ अज्ञानी है–नहीं जानता, बात सीधी-साफ है। और कई बार ऐसा हुआ है कि नहीं जानने वाले ने जान लिया और जानने वाले पिछड़ गए; क्योंकि जो नहीं जानता है, उसका अहंकार भी नहीं होता; जो नहीं जानता है, वह विनम्र होता है; जो नहीं जानता है, नहीं जानने के कारण ही उसका कोई दावा नहीं होता।

लेकिन, पंडित बिना जाने जानता है कि जानता है। शब्द सीख लिए हैं उसने; ग्रंथों का बोझ उसके सिर पर है। वह दोहरा सकता है व्याकरण के नियम। उन्हीं में डूब जाता है।

सूफियों की एक कथा है।

एक सूफी फकीर अपनी रोटी कमाने के लिए एक नदी पर लोगों को नाव से पार करवाता था। एक दिन गांव का पंडित उस पार जाना चाहता था। तो उस सूफी फकीर ने कहा, आपसे क्या पैसे लेने! पैसे भी वह एक-दो पैसे लेता था। आपको ऐसे ही पार करा देंगे। पंडित नाव में बैठा; वे दोनों चले। दोनों ही थे नाव में, पंडित ने पूछा–कुछ पढ़ना-लिखना आता है?

पंडित और पूछ भी क्या सकता है! जो वह जानता है, वही सोचता है, दूसरों को भी जना दे। हम वही दूसरों को दे सकते हैं, जो हमारे पास है।

शंकर किसे मूढ़ कहते हैं? उसे मूढ़ कहते हैं, जो जानता तो नहीं है, लेकिन व्याकरण को रट लिया है; शब्द का ज्ञाता हो गया है; शास्त्र से जिसकी पहचान हो गई है; जो शास्त्र को दोहरा सकता है, पुनरुक्त कर सकता है; शास्त्र की व्याख्या कर सकता है।

पंडित को मूढ़ कह रहे हैं शंकर। अगर पंडित को मूढ़ न कहते होते, तो 'हे मूढ़, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी', अचानक व्याकरण को याद करने की जरूरत नहीं थी। मूढ़ थोड़े ही–जिनको हम मूढ़ कहते हैं, अज्ञानी–वे थोड़े ही व्याकरण रट रहे हैं। पंडित रट रहा है। और भारत में यह बोझ काफी गहरा हो गया है। यह इतना गहरा हो गया है कि करीब-करीब हर आदमी को यह खयाल है कि वह परमात्मा को जानता है, क्योंकि परमात्मा शब्द को जानता है।

–ओशो

भज गोविंदम मूढमते

गुरू नानन देव

एक अंधेरी रात। भादों की अमावस। बादलों की गड़गड़ाहट। बीच-बीच में बिजली का चमकना। वर्षा के झोंके। गांव पूरा सोया हुआ। बस, नानक के गीत की गूंज।

रात देर तक वे गाते रहे। नानक की मां डरी। आधी रात से ज्यादा बीत गई। कोई तीन बजने को हुए। नानक के कमरे का दीया जलता है। बीच-बीच में गीत की आवाज आती है। नानक के द्वार पर नानक की मां ने दस्तक दी और कहा, बेटे! अब सो भी जाओ। रात करीब-करीब जाने को हो गई।

नानक चुप हुए। और तभी रात के अंधेरे में एक पपीहे ने जोर से कहा, पियू-पियू।

नानक ने कहा, सुनो मां! अभी पपीहा भी चुप नहीं हुआ। अपने प्यारे की पुकार कर रहा है, तो मैं कैसे चुप हो जाऊं? इस पपीहे से मेरी होड़ लगी है। जब तक यह गाता रहेगा, पुकारता रहेगा, मैं भी पुकारता रहूंगा। और इसका प्यारा तो बहुत पास है, मेरा प्यारा बहुत दूर है। जन्मों-जन्मों गाता रहूं तो ही उस तक पहुंच सकूंगा। रात और दिन का हिसाब नहीं रखा जा सकता है। नानक ने फिर गाना शुरू कर दिया।

नानक ने परमात्मा को गा-गा कर पाया। गीतों से पटा है मार्ग नानक का। इसलिए नानक की खोज बड़ी भिन्न है। पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि नानक ने योग नहीं किया, तप नहीं किया, ध्यान नहीं किया। नानक ने सिर्फ गाया। और गा कर ही पा लिया। लेकिन गाया उन्होंने इतने पूरे प्राण से कि गीत ही ध्यान हो गया, गीत ही योग बन गया, गीत ही तप हो गया।

जब भी कोई समग्र प्राण से किसी भी कृत्य को करता है, वही कृत्य मार्ग बन जाता है। तुम ध्यान भी करो अधूरा-अधूरा, तो भी न पहुंच पाओगे। तुम पूरा-पूरा, पूरे हृदय से, तुम्हारी सारी समग्रता से, एक गीत भी गा दो, एक नृत्य भी कर लो, तो भी तुम पहुंच जाओगे। क्या तुम करते हो, यह सवाल नहीं। पूरी समग्रता से करते हो या अधूरे-अधूरे, यही सवाल है।

परमात्मा के रास्ते पर नानक के लिए गीत और फूल ही बिछे हैं। इसलिए उन्होंने जो भी कहा है, गा कर कहा है। बहुत मधुर है उनका मार्ग; रससिक्त! कल हम कबीर की बात कर रहे थे:

सुरत कलारी भई मतवारी, मधवा पी गई बिन तौले।

नानक वही हैं, जो मधवा को बिना तौले पी गए हैं। फिर जीवन भर गाते रहे। ये गीत साधारण गायक के नहीं हैं। ये गीत उसके हैं जिसने जाना है। इन गीतों में सत्य की भनक, इन गीतों में परमात्मा का प्रतिबिंब है।

दूसरी बात, जपुजी के जन्म के संबंध में। जिस भादों की रात की मैंने बात कही–तब नानक की उम्र रही होगी कोई सोलह-सत्रह। जपुजी का जन्म हुआ तब उनकी उम्र थी, छत्तीस वर्ष, छह माह, पंद्रह दिन। जिस घटना का मैंने उल्लेख किया, उस भादों की रात वे साधक थे और तलाश में थे। प्यारे की पुकार चल रही थी, पियू-पियू। अभी पपीहा रट लगा रहा था। अभी मिलन न हुआ था।

जपुजी का जब जन्म हुआ–यह मिलन के बाद उनका पहला उदघोष है। पपीहा ने पा लिया अपने प्यारे को। पियू-पियू की रटन पूरी हुई। मिलन हो गया। उस मिलन से जो पहला उदघोष हुआ है, वह जपुजी है। इसलिए नानक की वाणी में जो मूल्य जपुजी का है वह किसी और बात का नहीं। जपुजी ताजी से ताजी खबर है उस लोक की। वहां से लौट कर उन्होंने जो पहली बात कही, वह यही है। उस जगत से इस जगत में आ कर, जो पहले शब्द निर्मित हुए वही जपुजी है।

उस घटना को भी समझ लेना है।

नदी के किनारे रात के अंधेरे में, अपने साथी और सेवक मरदाना के साथ वे नदी तट पर बैठे थे। अचानक उन्होंने वस्त्र उतार दिए। बिना कुछ कहे वे नदी में उतर गए। मरदाना पूछता भी रहा, क्या करते हैं? रात ठंडी है, अंधेरी है! दूर नदी में वे चले गए। मरदाना पीछे-पीछे गया। नानक ने डुबकी लगाई। मरदाना सोचता था कि क्षण-दो क्षण में बाहर आ जाएंगे। फिर वे बाहर नहीं आए।

दस-पांच मिनट तो मरदाना ने राह देखी, फिर वह खोजने लग गया कि वे कहां खो गए। फिर वह चिल्लाने लगा। फिर वह किनारे-किनारे दौड़ने लगा कि कहां हो? बोलो, आवाज दो! ऐसा उसे लगा कि नदी की लहर-लहर से एक आवाज आने लगी, धीरज रखो, धीरज रखो। पर नानक की कोई खबर नहीं। वह भागा गांव गया, आधी रात लोगों को जगा दिया। भीड़ इकट्ठी हो गई।

नानक को सभी लोग प्यार करते थे। सभी को नानक में दिखाई पड़ती थी कुछ होने की संभावना। नानक की मौजूदगी में सभी को सुगंध प्रतीत होती थी। फूल अभी खिला नहीं था, पर कली भी तो गंध देती है! सारा गांव रोने लगा, भीड़ इकट्ठी हो गई। सारी नदी तलाश डाली। इस कोने से उस कोने लोग भागने-दौड़ने लगे। लेकिन कोई पता न चला। तीन दिन बीत गए। लोगों ने मान ही लिया कि नानक को कोई जानवर खा गया। डूब गए, बह गए, किसी खाई-खड्ड में उलझ गए। मान ही लिया कि मर गए। रोना-पीटना हो गया। घर के लोगों ने भी समझ लिया कि अब लौटने का कोई उपाय न रहा।

और तीसरे दिन रात अचानक नानक नदी से प्रकट हो गए। जब वे नदी से प्रकट हुए तो जपुजी उनका पहला वचन है। यह घोषणा उन्होंने की।

कहानी ऐसी है–कहता हूं, कहानी। कहानी का मतलब होता है, जो सच भी है, और सच नहीं भी। सच इसलिए है कि वह खबर देती है सचाई की; और सच इसलिए नहीं है कि वह कहानी है और प्रतीकों में खबर देती है। और जितनी गहरी बात कहनी हो, उतनी ही प्रतीकों की खोज करनी पड़ती है।

नानक जब तीन दिन के लिए खो गए नदी में तो कहानी है कि वे प्रकट हुए परमात्मा के द्वार में। ईश्वर का उन्हें अनुभव हुआ। जाना आंखों के सामने प्यारे को, जिसके लिए पुकारते थे। जिसके लिए गीत गाते थे, जो उनके हृदय की धड़कन-धड़कन में प्यास बना था। उसे सामने पाया। तृप्त हुए। और परमात्मा ने उन्हें कहा, अब तू जा। और जो मैंने तुझे दिया है, वह लोगों को बांट। जपुजी उनकी पहली भेंट है–परमात्मा से लौट कर।

यह कहानी है। इसके प्रतीकों को समझ लें। एक, कि जब तक तुम न खो जाओ, जब तक तुम न मर जाओ तब तक परमात्मा से कोई साक्षात्कार न होगा। नदी में खोओ कि पहाड़ में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुम नहीं बचने चाहिए। तुम्हारा खो जाना ही उसका होना है। तुम जब तक हो तभी तक वह न हो पाएगा। तुम ही अड़चन हो। तुम ही दीवाल हो। तो यह जो नदी में खो जाने की कहानी है–तुम्हें भी खो जाना पड़ेगा; तुम्हें भी डूब जाना पड़ेगा। तीन दिन लगते हैं। इसलिए तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो तीसरा मनाते हैं। तीसरा हम इसलिए मनाते हैं कि मरने की घटना पूरी होने में तीन दिन लग जाते हैं। उतना समय जरूरी है। अहंकार मरता है, एकदम से नहीं। कम से कम समय तीन दिन लेता है। इसलिए कहानी में तीन दिन हैं, कि नानक तीन दिन नदी में खोए रहे। अहंकार पूरा गल गया, मर गया। और पास-पड़ोस, मित्रों, प्रियजनों, परिवार के लोगों को तो अहंकार ही दिखाई पड़ता है, तुम्हारी आत्मा तो दिखाई पड़ती नहीं, इसलिए उन्होंने तो समझा कि नानक मर गए।

जब भी कोई संन्यासी होता है, घर के लोग समझ लेते हैं, मर गया। जब भी कोई उसकी खोज में जाता है, घर के लोग मान लेते हैं, खत्म हुआ। क्योंकि अब यह वही तो न रहा। टूट गई पुरानी शृंखला। अतीत मिटा, अब नया हुआ। बीच में तीन दिन की खाई है। इसलिए तीन दिन का प्रतीक है। तीन दिन बाद नानक लौट आए।

जो भी खोता है वह लौट आता है, लेकिन नया हो कर लौटता है। जो भी जाता है उस मार्ग पर, वापस आता है। लेकिन जा रहा था तब प्यासा था, आता है तब दानी हो कर आता है। जाता था तब भिखारी था, आता है तब सम्राट हो कर आता है। जो भी परमात्मा में लीन होता है, जाते समय भिक्षापात्र होता है, लौटते समय अपरंपार संपदा होती है बांटने को। जपुजी पहली भेंट है।

परमात्मा के सामने प्रकट होना, प्यारे को पा लेना, इन्हें तुम बिलकुल प्रतीक को, भाषागत रूप से सच मत समझ लेना। क्योंकि कहीं कोई परमात्मा बैठा हुआ नहीं है, जिसके सामने तुम प्रकट हो जाओगे। लेकिन कहना हो बात, तो और कुछ कहने का उपाय भी नहीं है। जब तुम मिटते हो तो जो भी आंख के सामने होता है वही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है; परमात्मा निराकार शक्ति है।

तुम उसके सामने कैसे हो सकोगे? जहां तुम देखोगे, वहीं वह है। जो तुम देखोगे, वही वह है। जिस दिन आंख खुलेगी, सभी वह है। बस तुम मिट जाओ, आंख खुल जाए।

अहंकार तुम्हारी आंख में पड़ी हुई कंकड़ी है। उसके हटते ही परमात्मा प्रकट हो जाता है। परमात्मा प्रकट ही था, तुम मौजूद न थे। नानक मिटे, परमात्मा प्रकट हो गया। जैसे ही परमात्मा प्रकट हो जाता है, तुम भी परमात्मा हो गए। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

नानक लौटे; परमात्मा हो कर लौटे। फिर उन्होंने जो भी कहा है, एक-एक शब्द बहुमूल्य है। फिर उस एक-एक शब्द को हम कोई भी कीमत दें तो भी कीमत छोटी पड़ेगी। फिर एक-एक शब्द वेद-वचन हैं।

अब हम जपुजी को समझने की कोशिश करें।

इक ओंकार सतिनाम

करता पुरखु निरभउ निरवैर।

अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।।

'वह एक है, ओंकार स्वरूप है, सत नाम है, कर्ता पुरुष है, भय से रहित है, वैर से रहित है, कालातीत-मूर्ति है, अयोनि है, स्वयंभू है, गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।'

एक है–इक ओंकार सतिनाम।

–ओशो

इक ओंकार सतिनाम, प्रवचन-पहला

भगवान गौतमबुद्ध

गौतम बुद्ध ऐसे हैं जैसे हिमाच्छादित हिमालय। पर्वत तो और भी हैं, हिमाच्छादित पर्वत और भी हैं, पर हिमालय अतुलनीय है। उसकी कोई उपमा नहीं है। हिमालय बस हिमालय जैसा है। गौतम बुद्ध बस गौतम बुद्ध जैसे। पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में वैसा महिमापूर्ण नाम दूसरा नहीं। गौतम बुद्ध ने जितने हृदयों की वीणा को बजाया है, उतना किसी और ने नहीं। गौतम बुद्ध के माध्यम से जितने लोग जागे और जितने लोगों ने परम-भगवत्ता उपलब्ध की है, उतनी किसी और के माध्यम से नहीं।

गौतम बुद्ध की वाणी अनूठी है। और विशेषकर उन्हें, जो सोच-विचार, चिंतन-मनन, विमर्श के आदी हैं।

हृदय से भरे हुए लोग सुगमता से परमात्मा की तरफ चले जाते हैं। लेकिन हृदय से भरे हुए लोग कहां हैं? और हृदय से भरने का कोई उपाय भी तो नहीं है। हो तो हो, न हो तो न हो। ऐसी आकस्मिक, नैसर्गिक बात पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बुद्ध ने उनको चेताया जिनको चेताना सर्वाधिक कठिन है–विचार से भरे लोग, बुद्धिवादी, चिंतन-मननशील।

प्रेम और भाव से भरे लोग तो परमात्मा की तरफ सरलता से झुक जाते हैं; उन्हें झुकाना नहीं पड़ता। उनसे कोई न भी कहे, तो भी वे पहुंच जाते हैं; उन्हें पहुंचाना नहीं पड़ता। लेकिन वे तो बहुत थोड़े हैं, और उनकी संख्या रोज थोड़ी होती गयी है। उंगलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग हैं।

मनुष्य का विकास मस्तिष्क की तरफ हुआ है। मनुष्य मस्तिष्क से भरा है। इसलिए जहां जीसस हार जाएं, जहां कृष्ण की पकड़ न बैठे, वहां भी बुद्ध नहीं हारते हैं; वहां भी बुद्ध प्राणों के अंतरतम में पहुंच जाते हैं।

बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नहीं। शुरुआत बुद्धि से है। प्रारंभ बुद्धि से है। क्योंकि मनुष्य वहां खड़ा है। लेकिन अंत, अंत उसका बुद्धि में नहीं है। अंत तो परम अतिक्रमण है, जहां सब विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है; जहां केवल साक्षी, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोच-विचार में कुशल हैं।

बुद्ध के साथ मनुष्य-जाति का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पड़ेगा, और जो आने वाली सदियों तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण दिया, एनालिसिस दी। और जैसा सूक्ष्म विश्लेषण उन्होंने किया, कभी किसी ने न किया था, और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिए, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिए।

बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूं, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।

दुनिया के सारे धर्मों ने भरोसे को पहले रखा है, सिर्फ बुद्ध को छोड़कर। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है, फिर ही कदम उठेगा। बुद्ध ने कहा, अनुभव प्राथमिक है, श्रद्धा आनुसांगिक है। अनुभव होगा, तो श्रद्धा होगी। अनुभव होगा, तो आस्था होगी।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, आस्था की कोई जरूरत नहीं है; अनुभव के साथ अपने से आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी लायी हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लायी आस्था के पीछे भी छिपे होंगे तुम्हारे संदेह।

तुम आरोपित भी कर लोगे विश्वास को, तो भी विश्वास के पीछे अविश्वास खड़ा होगा। तुम कितनी ही दृढ़ता से भरोसा करना चाहो, लेकिन तुम्हारी दृढ़ता कंपती रहेगी और तुम जानते रहोगे कि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं उतरा है, उसे तुम चाहो भी तो भी कैसे मान सकते हो? मान भी लो, तो भी कैसे मान सकते हो? तुम्हारा ईश्वर कोरा शब्दजाल होगा, जब तक अनुभव की किरण न उतरी हो। तुम्हारे मोक्ष की धारणा मात्र शाब्दिक होगी, जब तक मुक्ति का थोड़ा स्वाद तुम्हें न लगा हो।

बुद्ध ने कहा: मुझ पर भरोसा मत करना। मैं जो कहता हूं, उस पर इसलिए भरोसा मत करना कि मैं कहता हूं। सोचना, विचारना, जीना। तुम्हारे अनुभव की कसौटी पर सही हो जाए, तो ही सही है। मेरे कहने से क्या सही होगा!

बुद्ध के अंतिम वचन हैं: अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनना। और तुम्हारी रोशनी में तुम्हें जो दिखायी पड़ेगा, फिर तुम करोगे भी क्या–आस्था न करोगे तो करोगे क्या? आस्था सहज होगी। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है।

बुद्ध का धर्म विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता वहां। समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

इसलिए बुद्ध को समझने में बड़ी भूल हुई। क्योंकि बुद्ध संदेह की भाषा बोलते हैं। तो लोगों ने समझा, यह संदेहवादी है। हिंदू तक न समझ पाए, जो जमीन पर सबसे ज्यादा पुरानी कौम है। बुद्ध निश्चित ही बड़े अनूठे रहे होंगे, तभी तो हिंदू तक समझने से चूक गए। हिंदुओं तक को यह आदमी खतरनाक लगा, घबड़ाने वाला लगा। हिंदुओं को भी लगा कि यह तो सारे आधार गिरा देगा धर्म के। और यही आदमी है, जिसने धर्म के आधार पहली दफा ढंग से रखे।

श्रद्धा पर भी कोई आधार रखा जा सकता है! अनुभव पर ही आधार रखा जा सकता है। अनुभव की छाया की तरह श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा अनुभव की सुगंध है। और अनुभव के बिना श्रद्धा अंधी है। और जिस श्रद्धा के पास आंख न हों, उससे तुम सत्य तक पहुंच पाओगे?

बुद्ध ने बड़ा दुस्साहस किया। बुद्ध जैसे व्यक्ति पर भरोसा करना एकदम सुगम होता है। उसके उठने-बैठने में प्रामाणिकता होती है। उसके शब्द-शब्द में वजन होता है। उसके होने का पूरा ढंग स्वयंसिद्ध होता है। उस पर श्रद्धा आसान हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैसाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरी बैसाखी के सहारे चल लिए–कितनी दूर चलोगे? मंजिल तक न पहुंच पाओगे। आज मैं साथ हूं, कल मैं साथ न रहूंगा, फिर तुम्हें अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी देर को संग-साथ हो गया है अंधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रास्ते अलग हो जाएंगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी, तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। अप्प दीपो भव!

यह बुद्ध का धम्मपद, कैसे वह रोशनी पैदा हो सकती है अनुभव की, उसका विश्लेषण है। श्रद्धा की कोई मांग नहीं है। श्रद्धा की कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसलिए बुद्ध को लोगों ने नास्तिक कहा। क्योंकि बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि तुम परमात्मा पर श्रद्धा करो।

तुम कैसे करोगे श्रद्धा? तुम्हें पता होता तो तुम श्रद्धा करते ही। तुम्हें पता नहीं है। इस अज्ञान में तुम कैसे श्रद्धा करोगे? और अज्ञान में तुम जो श्रद्धा बांध भी लोगे, वह तुम्हारी अज्ञान की ईंटों से बना हुआ भवन होगा; उसे तुम परमात्मा का मंदिर कैसे कहोगे? वह तुमने भय में बना लिया होगा। मौत डराती होगी, इसलिए सहारा पकड़ लिया होगा। यहां जिंदगी हाथ से जाती मालूम होती होगी, इसलिए स्वर्ग की कल्पनाएं कर ली

होंगी। लेकिन इन कल्पनाओं से, भय पर खड़ी हुई इन धारणाओं से, कहीं कोई मुक्त हुआ है! इससे ही तो आदमी पंगु है। इससे ही तो आदमी पक्षाघात में दबा है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर की बात नहीं की।

.... बुद्ध से ज्यादा कोई भी नहीं बोला; और बुद्ध से ज्यादा चुप भी कोई नहीं है। कितना बुद्ध बोले हैं! अन्वेषक खोज करते हैं तो वे कहते हैं, एक आदमी इतना बोला, यह संभव कैसे है! उन्हें डर लगता है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त है, दूसरों ने डाल दिया है। कुछ भी प्रक्षिप्त नहीं है। जितना बुद्ध बोले, पूरा संगृहीत ही नहीं हुआ है। खूब बोले। और फिर भी उनसे ज्यादा चुप कोई भी नहीं है। क्योंकि जहां-जहां नहीं बोलना था, वहां नहीं बोले। ईश्वर के संबंध में एक शब्द न कहा। इस खतरे को भी मोल लिया कि लोग नास्तिक समझेंगे। और आज तक लोग नास्तिक समझे जा रहे हैं। और इससे बड़ा कोई आस्तिक कभी हुआ नहीं।

बुद्ध महा आस्तिक हैं। अगर परमात्मा के संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है, तो फिर बुद्ध ने ही कुछ कहा–चुप रह कर; इशारा किया।.....

..... बुद्ध के धर्म को शून्यवादी कहा गया है। शून्यवादी उनका धर्म है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि शून्य पर उनकी बात पूरी हो जाती है। नहीं, बस शुरू होती है।

बुद्ध एक ऐसे उत्तुंग शिखर हैं, जिसका आखिरी शिखर हमें दिखायी नहीं पड़ता। बस थोड़ी दूर तक हमारी आंखें जाती हैं, हमारी आंखों की सीमा है। थोड़ी दूर तक हमारी गर्दन उठती है, हमारी गर्दन के झुकने की सामर्थ्य है। और बुद्ध खोते चले जाते हैं–दूर...हिमाच्छादित शिखर हैं। बादलों के पार! उनका प्रारंभ तो दिखायी पड़ता है, उनका अंत दिखायी नहीं पड़ता। यही उनकी महिमा है। और प्रारंभ को जिन्होंने अंत समझ लिया, वे भूल में पड़ गए। प्रारंभ से शुरू करना; लेकिन जैसे-जैसे तुम शिखर पर उठने लगोगे, और आगे, और आगे दिखायी पड़ने लगा, और आगे दिखायी पड़ने लगेगा।

बहुत लोग बोले हैं। बहुत लोगों ने मनुष्य के रोग का विश्लेषण किया है; लेकिन ऐसा सचोट नहीं। बड़े सुंदर ढंग से लोगों ने बातें कही हैं, बड़े गहरे प्रतीक उपाय में लाए हैं। पर बुद्ध, बुद्ध के कहने का ढंग ही और है। अंदाजे-बयां और! जिसने एक बार सुना, पकड़ा गया। जिसने एक बार आंख से आंख मिला ली, फिर भटक न पाया। जिसको बुद्ध की थोड़ी सी भी झलक मिल गयी, उसका जीवन रूपांतरित हुआ।

आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, जिस दिन बुद्ध का जन्म हुआ, घर में उत्सव मनाया जाता था। सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था, पूरी राजधानी सजी थी। रातभर लोगों ने दीए जलाए, नाचे। उत्सव का क्षण था! बूढ़े सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था। बड़े दिन की प्रतीक्षा पूरी हुई थी। बड़ी पुरानी अभिलाषा थी पूरे राज्य की। मालिक बूढ़ा होता जाता था और नए मालिक की कोई खबर न थी। इसलिए बुद्ध को सिद्धार्थ नाम दिया। सिद्धार्थ का अर्थ होता है, अभिलाषा का पूरा हो जाना।

पहले ही दिन, जब द्वार पर बैंड-बाजे बजते थे, शहनाई बजती थी, फूल बरसाए जाते थे महल में, चारों तरफ प्रसाद बंटता था, हिमालय से भागा हुआ एक वृद्ध तपस्वी द्वार पर खड़ा हुआ आकर। उसका नाम था असिता। सम्राट भी उसे सम्मान करता था। और कभी असिता राजधानी नहीं आया था। जब कभी जाना था तो शुद्धोदन को, सम्राट को, स्वयं उसके दर्शन करने जाना होता था। ऐसे बचपन के साथी थे। फिर शुद्धोदन सम्राट हो गया, बाजार की दुनिया में उलझ गया। असिता महातपस्वी हो गया। उसकी ख्याति दूर-दिगंत तक फैल गयी। असिता को द्वार पर आए देखकर शुद्धोदन ने कहा, आप, और यहां! क्या हुआ? कैसे आना हुआ? कोई मुसीबत है? कोई अड़चन है? कहें। असिता ने कहा, नहीं, कोई मुसीबत नहीं, कोई अड़चन नहीं। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ, उसके दर्शन को आया हूं।

शुद्धोदन तो समझ न पाया। सौभाग्य की घड़ी थी यह कि असिता जैसा तपस्वी और बेटे के दर्शन को आया। भागा गया अंतःगृह में। नवजात शिशु को लेकर बाहर आ गया। असिता झुका, और उसने शिशु के चरणों में सिर रख दिया। और कहते हैं, शिशु ने अपने पैर उसकी जटाओं में उलझा दिए। फिर तब से आदमी की जटाओं में बुद्ध के पैर उलझे हैं। फिर आदमी छुटकारा नहीं पा सका। और असिता हंसने लगा, और रोने भी लगा। और शुद्धोदन ने पूछा कि इस शुभ घड़ी में आप रोते क्यों हैं?

असिता ने कहा, यह तुम्हारे घर जो बेटा पैदा हुआ है, यह कोई साधारण आत्मा नहीं है; असाधारण है। कई सदियां बीत जाती हैं। यह तुम्हारे लिए ही सिद्धार्थ नहीं है; यह अनंत-अनंत लोगों के लिए सिद्धार्थ है। अनेकों की अभिलाषाएं इससे पूरी होंगी। हंसता हूं, कि इसके दर्शन मिल गए। हंसता हूं, प्रसन्न हूं, कि इसने मुझ बूढ़े की जटाओं में अपने पैर उलझा दिए। यह सौभाग्य का क्षण है! रोता इसलिए हूं कि जब यह कली खिलेगी, फूल बनेगी, जब दिग-दिगंत में इसकी सुवास उठेगी, और इसकी सुवास की छाया में करोड़ों लोग राहत लेंगे, तब मैं न रहूंगा। यह मेरा शरीर छूटने के करीब आ गया।

और एक बड़ी अनूठी बात असिता ने कही है, वह यह कि अब तक आवागमन से छूटने की आकांक्षा थी, वह पूरी भी हो गयी; आज पछतावा होता है। एक जन्म अगर और मिलता तो इस बुद्धपुरुष के चरणों में बैठने की, इसकी वाणी सुनने की, इसकी सुगंध को पीने की, इसके नशे में डूबने की सुविधा हो जाती। आज पछताता हूं, लेकिन मैं मुक्त हो चुका हूं। यह मेरा आखिरी अवतरण है; अब इसके बाद देह न धर सकूंगा। अब तक सदा ही चेष्टा की थी कि कब छुटकारा हो इस शरीर से, कब आवागमन से...आज पछताता हूं कि अगर थोड़ी देर और रुक गया होता...।

इसे तुम थोड़ा समझो।

बुद्ध के फूल के खिलने के समय, असिता चाहता है, कि अगर मोक्ष भी दांव पर लगता हो तो कोई हर्जा नहीं। तब से पच्चीस सौ साल बीत गए। बहुत प्रज्ञा-पुरुष हुए। लेकिन बुद्ध अतुलनीय हैं। और उनकी अतुलनीयता इसमें है कि उन्होंने इस सदी के लिए धर्म दिया, और आने वाले भविष्य के लिए धर्म दिया। कृष्ण की बात कितनी ही समझाकर कही जाए, इस सदी के लिए मौजूं नहीं बैठती। फासला बड़ा हो गया है। बड़ा अंतराल पड़ गया है। कृष्ण ने जिनसे कहा था उनके मनों में, और जिनके मन आज उसे सुनेंगे, बड़ा अंतर है। बुद्ध की कुछ बात ऐसी है, कि ऐसा लगता है अभी-अभी उन्होंने कही। बुद्ध की बात को समसामयिक बनाने की जरूरत नहीं है; वह समसामयिक है, वह कंटेम्प्रेरी है। कृष्ण पर बोलो, तो कृष्ण को खींचकर लाना पड़ता है बीसवीं सदी में; बुद्ध को नहीं लाना पड़ता। बुद्ध जैसे खड़े ही हैं, बीसवीं सदी में ही खड़े हैं। और ऐसा अनेक सदियों तक रहेगा। क्योंकि मनुष्य ने जो होने का ढंग अंगीकार कर लिया है, बुद्धि का, वह अब ठहरने को है; वह अब जाने को नहीं है। और उसके साथ ही बुद्ध का मार्ग ठहरने को है।

धम्मपद उनका विश्लेषण है। उन्होंने जो जीवन की समस्याओं की गहरी छानबीन की है, उसका विश्लेषण है। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करना। क्योंकि ये कोई सिद्धांत नहीं हैं जिन पर तुम श्रद्धा कर लो। ये तो निष्पत्तियां हैं, प्रयोग की। अगर तुम भी इनके साथ विचार करोगे तो ही इन्हें पकड़ पाओगे। यह आंख बंद करके स्वीकार कर लेने का सवाल नहीं है; यह तो बड़े सोच-विचार, मनन का सवाल है।

साधारणतः आदमी की जिंदगी क्या है? कुछ सपने! कुछ टूटे-फूटे सपने! कुछ अभी भी साबित, भविष्य की आशा में अटके! आदमी की जिंदगी क्या है? अतीत के खंडहर, भविष्य की कल्पनाएं! आदमी का पूरा होना क्या है? चले जाते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, काम करते हैं–कुछ पक्का पता नहीं, क्यों? कुछ साफ जाहिर नहीं, कहां

जा रहे हैं? बहुत जल्दी में भी जा रहे हैं। बड़ी पहुंचने की तीव्र उत्कंठा है, लेकिन कुछ पक्का नहीं, कहां पहुंचना चाहते हैं? किस तरफ जाते हो?

कल मैं एक गीत पढ़ता था साहिर का:

न कोई जादा न कोई मंजिल न रोशनी का सुराग

भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी

न कोई रास्ता; न कोई मंजिल; रोशनी का सुराग भी नहीं; कोई एक किरण भी नहीं। और पूरी जिंदगी अंधेरी घाटियों में, शून्य में भटक रही है।

भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी

ध्यान रखना कि जब बेईमानी तुम करोगे, तो ईमानदारी भी तुम ही करोगे। लेकिन जब जन्म भी तुम्हारा अपना नहीं है और मौत भी तुम्हारी अपनी नहीं है, तो दोनों के बीच में तुम्हारा अपना कुछ कैसे हो सकता है? जब दोनों छोर पराए हैं, जब जन्म के पहले कोई और के हाथ में तुम हो, मौत के बाद किसी और के हाथ में, तो यह बीच की थोड़ी सी जो घड़ियां हैं, इनमें तुम अपने को सोच लेते हो अपने हाथ में, वहीं भ्रांति हो जाती है। वही अहंकार तुम्हें जगने नहीं देता। वही अहंकार सोने की नयी तरकीबें, व्यवस्थाएं खोज लेता है।

इसलिए बुद्धपुरुष आते हैं। उनके तीर ठीक तरकस से तुम्हारे हृदय की तरफ निकलते हैं। पर तुम बचा जाते हो।

हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की

आदमी ने कितने बुद्धपुरुष पैदा किए! हजारों खिज्र–पैगंबर, तीर्थंकर!

हजारों खिज्र पैदा पर चुकी है नस्ल आदम की

ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है

–ओशो

एस धम्मों सनंतनो, भाग-01

पूर्णता का नाम कृष्ण

जीवन एक विशाल कैनवास है, जिसमें क्षण-क्षण भावों की कूची से अनेकानेक रंग मिल-जुल कर सुख-दुख के चित्र उभारते हैं। मनुष्य सदियों से चिर आनंद की खोज में अपने पल-पल उन चित्रों की बेहतरी के लिए जुटाता है। ये चित्र हजारों वर्षों से मानव-संस्कृति के अंग बन चुके हैं। किसी एक के नाम का उच्चारण करते ही प्रतिकृति हंसती-मुस्काती उदित हो उठती है।

आदिकाल से मनुष्य किसी चित्र को अपने मन में बसाकर कभी पूजा, तो कभी आराधना, तो कभी चिंतन-मनन से गुजरता हुआ ध्यान की अवस्था तक पहुंचता रहा है। इतिहास में, पुराणों में ऐसे कई चित्र हैं, जो सदियों से मानव संस्कृति को प्रभावित करते रहे हैं। महावीर, क्राइस्ट, बुद्ध, राम ने मानव-जाति को गहरे छुआ है। इन सबकी बातें अलग-अलग हैं। कृष्ण ने इन सबके रूपों-गुणों को अपने आपमें समाहित किया है। कृष्ण एक ऐसा नाम है, जिसने जीवन को पूर्णता दी। एक ओर नाचना-गाना, रास-लीला तो दूसरी ओर युद्ध और राजनीति, सामान्यतः परस्पर विरोधी बातों को अपने में समेटकर आनंदित हो मुरली बजाने जैसी सहज क्रियाओं से जुड़े कृष्ण सचमुच चौंकानेवाले चरित्र हैं। ऐसे चरित्र को रेखांकित करना कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। व्याख्याएं कभी-कभी दिशाएं मोड़ देती हैं, कभी-कभी भटका भी देती है।

ओशो ने कृष्ण को अपनी दृष्टि से हमारे सामने रखा है, अपनी दार्शनिक और चिंतनशील पारदर्शी दृष्टि से हम तक इस पुस्तक के माध्यम से पहुंचाया है। व्यक्तित्व जब बड़ा हो, विशाल हो तब मूर्ति बनाना आसान नहीं। सिर्फ बाहरी छबि उभारना पर्याप्त नहीं होता। व्यक्तित्व के सभी पहलू भी उभरने चाहिए। श्रेष्ठ कलाकार वही है जो मूर्ति में ऐसी बातों को भी उभार सके जो सामान्य आंखें देख नहीं पातीं।

कृष्ण भारतीय जन-मानस के लिए नए नहीं हैं। कृष्ण की छबि, मुद्रा परिचित है। चाहे यह बाल्यकाल की छबि सूरदास की हो या महाभारत की विभिन्न मुद्राएं हों या विभिन्न कवियों के कृष्ण हों, लोककथाओं या आख्यायिकाओं के कृष्ण हों–चिर-परिचित हैं। कृष्ण का चित्र स्टील फोटोग्राफी की तरह हमारे मन में रच-बस गया है।

परंतु, ओशो ने इस पुस्तक की विचार-शृंखला में कृष्ण का मात्र फोटो नहीं खींचा है बल्कि एक सधे हुए चिंतक-कलाकार की तरह अपने विचार-रंगों से कृष्ण के जीवन के उन पहलुओं को छुआ है, आकार दिया है, जो कैमरे की आंख से नहीं देखे जा सकते। सिर्फ कूची के स्पर्श से उभारे जा सकते हैं। कैमरा सिर्फ मूर्त आकृतियों की प्रतिकृति देता है पर कलाकार की कूची अमूर्तता को रेखांकित करती है। "कृष्ण स्मृति' ऐसी ही अनदेखी, अनजानी अमूर्त छटाओं का एक संपूर्ण संकलन है, जो ओशो की एक लंबी-प्रवचन-शृंखला से उभरा है। श्रोताओं की जिज्ञासाओं, कुतूहलों और कृष्ण व्यक्तित्व से उठनेवाले उन तमाम प्रश्नों के उत्तर में, झरने-सा कल-कल बहता हुआ, कांच की तरह पारदर्शी विचार-चिंतन इस पुस्तक में प्रवाहित हुआ है।

कृष्ण यथार्थवादी हैं। वे राग, प्रेम, भोग, काम, योग, ध्यान और आत्मा-परमात्मा जैसे विषयों को उनके यथार्थ रूप में ही स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर युद्ध और राजनीति को भी उन्होंने वास्तविक अर्थों में स्वीकार किया है। ओशो कहते हैं कृष्ण युद्धवादी नहीं हैं। कृष्ण का व्यक्तित्व पूर्वाग्रही नहीं है। यदि युद्ध होना ही हो तो भागना ठीक नहीं है। यदि युद्ध होना ही है और मनुष्य के हित में अनिवार्य हो जाए तो युद्ध को आनंद से स्वीकार करना चाहिए। उसे बोझ की तरह ढोना उचित नहीं। क्योंकि बोझ समझकर लड़ने में हार निश्चित है।

ओशो युद्ध और शांति के द्वंद्व को समझाते हुए कृष्ण के व्यक्तित्व को अधिक सरलता से प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि कृष्ण जीवन को युद्ध और शांति दोनों द्वारों से गुजरने देना चाहते हैं। शांति के लिए युद्ध की सामर्थ्य हो।

मनुष्य की युद्ध की मानसिकता को ओशो ने बड़ी सहजता से उजागर किया है। वे कहते हैं सतगुणों और दुर्गुणों से ही मनुष्य आकार लेता है। अनुपात कम-अधिक हो सकते हैं। ऐसा अच्छे से अच्छा आदमी नहीं है पृथ्वी पर, जिसमें बुरा थोड़ा-सा न हो। और ऐसा बुरा आदमी भी नहीं खोजा जा सकता, जिसमें थोड़ा-सा अच्छा न हो। इसलिए सवाल सदा अनुपात और प्रबलता का है। स्वतंत्रता, व्यक्ति, आत्मा, धर्म, ये मूल्य हैं जिनकी तरफ शुभ की चेतना साथ होगी। कृष्ण इसी चेतना के प्रतीक हैं।

ओशो ने कृष्ण पर बोलने का बड़ा सुंदर आधार दिया है–कृष्ण का महत्व अतीत के लिए कम और भविष्य के लिए ज्यादा है। सच ऐसा है कि कृष्ण अपने समय से कम पांच हजार वर्ष पहले पैदा हुए। सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति अपने समय से पहले पैदा होते हैं और सभी गैर-महत्वपूर्ण व्यक्ति अपने समय के बाद पैदा होते हैं। बस महत्वपूर्ण और गैर-महत्वपूर्ण व्यक्ति में इतना ही फर्क है। और सभी साधारण व्यक्ति अपने समय के साथ पैदा होते हैं। ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति को समझना आसान नहीं होता। उसका वर्तमान और अतीत उसे समझने में असमर्थता अनुभव करता है। ओशो ने कितना सुंदर कहा है कि जब हम समझने योग्य नहीं हो पाते, तब हम उसकी पूजा करना शुरू कर देते हैं। या तो हम उसका विरोध करते हैं। या तो हम गाली देते हैं या हम प्रशंसा करते हैं। दोनों पूजाएं हैं–एक शत्रु की है, एक मित्र की है।

ओशो की एक प्रखर आंखों ने कृष्ण को अपने वर्तमान के लिए देखा। दुख, निराशा, उदासी, वैराग्य, जैसी बातें कृष्ण ने पृथ्वी पर नहीं कीं। पृथ्वी पर जीनेवाले, उल्लास, उत्सव, आनंद, गीत, नृत्य, संगीत को कृष्ण ने विस्तार दिया। कृष्ण ने इस संसार की सारी चीजों को उनके वास्तविक अर्थों में ही स्वीकार किया।

कृष्ण के बहुआयामी व्यक्तित्व और रहस्यपूर्ण कृतित्व की व्याख्या ओशो ने सहजता और सरलता से की है। कृष्ण को देखने की उनकी दृष्टि सचमुच ऐसा विस्तार देती है, जो मात्र तुलना नहीं है। कृष्ण कुशलता से चोरी कर सकते हैं, महावीर एकदम बेकाम चोर साबित होंगे। कृष्ण कुशलता से युद्ध कर सकते हैं, बुद्ध न लड़ सकेंगे। जीसस की हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि वे बांसुरी बजा सकते हैं, लेकिन कृष्ण सूली पर चढ़ सकते हैं। कृष्ण को क्राइस्ट के व्यक्तित्व में सोचा ही नहीं जा सकता।

यह पूरा सिलसिला लंबे प्रवचनों के माध्यम से प्रश्नों के उत्तरों के रूप में है। इसमें मानव मन से उठनेवाली तमाम जिज्ञासाओं और कुतूहलों की आतुरता शांत की गई है। प्रेम, नैतिकता, पत्नी, प्रेमिका, स्त्री-पुरुष, विवाह, आध्यात्मिक संभोग, राधा-कृष्ण संबंधों और हजार-हजार प्रश्नों के रेशों को इसमें कुशलता से सहेजा गया है, समाधान किया गया है। प्रतीकों और यथार्थ की तराजू पर तौलते हुए मानवीय संवेदनाओं और शरीर की जैविक आवश्यकताओं तथा मन, बुद्धि और शरीर की यात्राओं में स्त्री-पुरुष की पूर्णता का युक्तिसंगत ऊहापोह ठोस मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया गया है। राधा और कृष्ण, कृष्ण और सोलह हजार गोपिकाएं, इनके बीच नैतिक-अनैतिक की परिभाषाएं उदाहरणों से इतनी पारदर्शी हो उठी हैं कि तर्कों की डोर बहुत शिथिल पड़ जाती है। कृष्ण की पृष्ठभूमि में विवाह, स्त्री-पुरुष संबंध, प्रेम और सामाजिक पृष्ठभूमि में ये विचार देशकाल की सीमाओं को तोड़कर व्यक्ति को एक नया अर्थ देते हैं। इन सारे संबंधों में निकटता, आकर्षण, ऊर्जा, बहाव, तृप्ति, हल्कापन और सृजन को बड़ी सुंदरता से प्रस्तुत किया है।

इन विस्तृत चर्चाओं में कृष्ण के इर्द-गिर्द जुड़े समस्त पात्रों के अलावा कृष्ण से फ्रॉयड तक की मनोवैज्ञानिक बातें और गांधी तक का दर्शन समाहित किया गया है।

कृष्ण को एक विस्तृत "कैनवास' के रूप में उपयोग कर हमारे वर्तमान जीवन के रंग और भविष्य के चित्र बड़ी खूबसूरती से उभरे हैं। कोई भी बात बाहर से थोपी नहीं गई है। अपनी विशिष्ट शैली में ओशो ने मन तक पहुंचाई हैं। कृष्ण के पक्ष या विपक्ष में ले जाने का कोई आग्रह नहीं है। पर ओशो की दृष्टि में आए कृष्ण को जानने, देखने, समझने और अनुभव करने की जिज्ञासा इस पुस्तक से जहां एक ओर शांत होती है, वहीं उस अनंत व्यक्तित्व के बारे में मौलिक चिंतन की शुरुआत का एक छोर भी अनायास ही हाथ लग जाता है।

ओशो ने अपनी इस पुस्तक में कहीं भी पुजारी की भूमिका नहीं की। सिर्फ विविध छटाओं को विस्तार दिया है। जिसको जो छटा भाती है, वह उसको सोचकर आनंद को प्राप्त होता है। कृष्ण का जीवन अन्य आराध्यों-सा सपाट और आदर्श के शिखर पर विराजमान नहीं है। बल्कि अत्यंत अकल्पनीय ढंग से उतार-चढ़ाव और रहस्यों से भरपूर होते हुए भी हमारी आपकी पृथ्वी पर खड़ा है। इसकी सिर्फ पूजा नहीं इसे जीया भी जा सकता है। संसार के बंधन और मन की गांठ खुल सकती है।

यह सब बताते हुए ओशो यह भी आगाह करते हैं कि अनुकरण से सावधान रहना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक का जीवन मौलिक होता है और अनुकरण से उसका पतन हो सकता है।

कृष्ण संपूर्णता के प्रतीक हैं। मानव-समाज के आनंद के लिए सुंदर आविष्कार के रूप में उभरते हैं, जहां किसी भी बात को पूर्वाग्रह से नकारा नहीं गया है। एक सहज, सकारात्मक, रागात्मक, प्रेमपूर्ण जीवन को उत्सव की तरह संपन्न करने वाले कृष्ण इस पुस्तक में जो चित्र उभरकर निखरता है, वह सर्वथा नया और आनंददायी है।

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अनूठा है। अनूठेपन की पहली बात तो यह है कि कृष्ण हुए तो अतीत में, लेकिन हैं भविष्य के। मनुष्य अभी भी इस योग्य नहीं हो पाया कि कृष्ण का समसामयिक बन सके। अभी भी कृष्ण मनुष्य की समझ से बाहर हैं। भविष्य में ही यह संभव हो पाएगा कि कृष्ण को हम समझ पाएं।

इसके कुछ कारण हैं।

सबसे बड़ा कारण तो यह है कि कृष्ण अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की परम गहराइयों और ऊंचाइयों पर होकर भी गंभीर नहीं हैं, उदास नहीं हैं, रोते हुए नहीं हैं। साधारणतः संत का लक्षण ही रोता हुआ होना है। जिंदगी से उदास, हारा हुआ, भागा हुआ। कृष्ण अकेले ही नाचते हुए वयक्ति हैं। हंसते हुए, गीत गाते हुए। अतीत का सारा धर्म दुखवादी था। कृष्ण को छोड़ दें तो अतीत का सारा धर्म उदास, आंसुओं से भरा हुआ था। हंसता हुआ धर्म मर गया है और पुराना ईश्वर, जिसे हम अब तक ईश्वर समझते थे, जो हमारी धारणा थी ईश्वर की, वह भी मर गई है।

जीसस के संबंध में कहा जाता है कि वह कभी हंसे नहीं। शायद जीसस का यह उदास व्यक्तित्व और सूली पर लटका हुआ उनका शरीर ही हम दुखी-चित्त लोगों को बहुत आकर्षण का कारण बन गया। महावीर या बुद्ध बहुत गहरे अर्थों में इस जीवन के विरोधी हैं। कोई और जीवन है परलोक में, कोई मोक्ष है, उसके पक्षपाती हैं। समस्त धर्मों ने दो हिस्से कर रखे हैं जीवन के–एक वह जो स्वीकार योग्य है और एक वह जो इनकार के योग्य है।

कृष्ण अकेले ही इस समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार कर लेते हैं। जीवन की समग्रता की स्वीकृति उनके व्यक्तित्व में फलित हुई है। इसलिए, इस देश ने और सभी अवतारों को आंशिक अवतार कहा है, कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा है। राम भी अंश ही हैं परमात्मा के, लेकिन कृष्ण पूरे ही परमात्मा हैं। और यह कहने का, यह सोचने का, ऐसा समझने का कारण है। और वह कारण यह है कि कृष्ण ने सभी कुछ आत्मसात कर लिया है।

अल्बर्ट श्वीत्ज़र ने भारतीय धर्म की आलोचना में एक बड़ी कीमत की बात कही है, और वह यह कि भारत का धर्म जीवन-निषेधक, "लाइफ निगेटिव' है। यह बात बहुत दूर तक सच है, यदि कृष्ण को भुला दिया जाए। और यदि कृष्ण को भी विचार में लिया जाए तो यह बात एकदम ही गलत हो जाती है। और श्वीत्ज़र यदि कृष्ण को समझते तो ऐसी बात न कह पाते। लेकिन कृष्ण की कोई व्यापक छाया भी हमारे चित्त पर नहीं पड़ी है। वे अकेले दुख के एक महासागर में नाचते हुए एक छोटे-से द्वीप हैं। या ऐसा हम समझें कि उदास और निषेध और दमन और निंदा के बड़े मरुस्थल में एक बहुत छोटे-से नाचते हुए मरूद्यान हैं। वह हमारे पूरे जीवन की धारा को नहीं प्रभावित कर पाए। हम ही इस योग्य न थे, हम उन्हें आत्मसात न कर पाए।

मनुष्य ाका मन अब तक तोड़कर सोचता रहा, द्वंद्व करके सोचता रहा। शरीर को इनकार करना है, आत्मा को स्वीकार करना है। तो आत्मा और शरीर को लड़ा देना है। परलोक को स्वीकार करना है, इहलोक को इनकार करना है। तो इहलोक और परलोक को लड़ा देना है। स्वभावतः, यदि हम शरीर का इनकार करेंगे, तो जीवन उदास हो जाएगा। क्योंकि जीवन के सारे रस-स्रोत और सारा स्वास्थ्य और जीवन का सारा संगीत और सारी संवेदनाएं शरीर से आ रही हैं। शरीर को जो धर्म इनकार कर देगा, वह पीतवर्ण हो जाएगा, रक्तशून्य हो जाएगा। उस पर से लाली खो जाएगी। वह पीले पत्ते की तरह सूखा हुआ धर्म होगा। उस धर्म की मान्यता भी जिनके मन में गहरी बैठेगी, वे भी पीले पत्ते की तरह गिरने की तैयारी में संलग्न, मरने के लिए उत्सुक और तैयार हो जाएंगे।

कृष्ण अकेले हैं जो शरीर को उसकी समस्तता में स्वीकार कर लेते हैं, उसकी "टोटलिटी' में। यह एक आयाम में नहीं, सभी आयाम में सच है। शायद कृष्ण को छोड़कर...कृष्ण को छोड़कर, और पूरे मनुष्यता के इतिहास में जरथुस्त्र एक दूसरा आदमी है, जिसके बाबत यह कहा जाता है कि वह जन्म लेते से हंसा। सभी बच्चे रोते हैं। एक बच्चा सिर्फ मनुष्य-जाति के इतिहास में जन्म लेकर हंसा। यह सूचक है। यह सूचक है इस बात का कि अभी हंसती हुई मनुष्यता पैदा नहीं हो पाई। और कृष्ण तो हंसती हुई मनुष्यता को ही स्वीकार हो सकते हैं। इसलिए कृष्ण का बहुत भविष्य है। फ्रायड-पूर्व धर्म की जो दुनिया थी, वह फ्रायड-पश्चात नहीं हो सकती है। एक बड़ी क्रांति घटित हो गई है, और एक बड़ी दरार पड़ गई है मनुष्य की चेतना में। हम जहां थे फ्रायड के पहले, अब हम वहीं कभी भी नहीं हो सकेंगे। एक नया शिखर छू लिया गया है और एक नई समझ पैदा हो गई है। वह समझ समझ लेनी चाहिए।

पुराना धर्म सिखाता था आदमी को दमन और "सप्रेशन'। काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, सभी को दबाना है और नष्ट कर देना है। और तभी आत्मा उपलब्ध होगी और तभी परमात्मा उपलब्ध होगा। यह लड़ाई बहुत लंबी चली। इस लड़ाई के हजारों साल के इतिहास में भी मुश्किल से दस-पांच लोग हैं जिनको हम कह पाए कि उन्होंने परमात्मा को पा लिया। एक अर्थ में यह लड़ाई सफल नहीं हुई। क्योंकि अरबों-खरबों लोग बिना परमात्मा को पाए मरे हैं। जरूर कहीं कोई बुनियादी भूल थी। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई माली करोड़ हजार पौधे लगाए और एक पौधे में फूल आ जाएं, और फिर भी हम उस माली के शास्त्र को मानते चले जाएं, और हम कहें कि देखो एक पौधे में फूल आए! और हम इस बात का खयाल ही भूल जाएं कि पचास करोड़ पौधे में अगर एक पौधे में फूल आते हैं, तो यह माली की वजह से न आए होंगे, यह माली से किसी तरह बच गया होगा पौधा, इसलिए आ गए हैं। क्योंकि माली का प्रमाण तो बाकी पचास करोड़ पौधे हैं जिनमें फूल नहीं आते, पत्ते नहीं लगते, सूखे ठूंठ रह जाते हैं।

एक बुद्ध, एक महावीर, एक क्राइस्ट अगर परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हैं, द्वंद्वग्रस्त धर्मों के बावजूद भी, तो यह कोई धर्मों की सफलता का प्रमाण नहीं हैं। धर्मों की सफलता का प्रमाण तो तब होगा, माली तो तब

सफल समझा जाएगा, जब पचास करोड़ पौधों में फूल लगें और एक में न लग पाएं, तो क्षमा योग्य है। कहा जा सकेगा कि यह पौधे की गलती हो गई। इसमें माली की गलती नहीं हो सकती। पौधा बच गया होगा माली से, इसलिए सूख गया है, इसलिए फूल नहीं आते हैं।

भविष्य के लिए कृष्ण की बड़ी सार्थकता है। और भविष्य में कृष्ण का मूल्य निरंतर बढ़ता ही जाने को है। जब कि सबके मूल्य फीके पड़ जाएंगे और द्वंद्व-भरे धर्म जब कि पीछे अंधेरे में डूब जाएंगे और इतिहास की राख उन्हें दबा देगी, तब भी कृष्ण का अंगार चमकता हुआ रहेगा। और भी निखरेगा क्योंकि पहली दफे मनुष्य इस योग्य होगा कि कृष्ण को समझ पाए। कृष्ण को समझना बड़ा कठिन है। कठिन है इस बात को समझना कि एक आदमी संसार को छोड़कर चला जाए और शांत हो जाए। कठिन है इस बात को समझना कि संसार के संघर्ष में, बीच में खड़ा होकर और शांत हो। आसान है यह बात समझनी कि एक आदमी विरक्त हो जाए, आसक्ति से संबंध तोड़कर भाग जाए और उसमें एक पवित्रता का जन्म हो। कठिन है यह बात समझनी कि जीवन के सारे उपद्रव के बीच, जीवन के सारे उपद्रव में अलिप्त, जीवन के सारे धूल-धवांस के कोहरे और आंधियों में खड़ा हुआ दिया हिलता न हो, उसकी लौ कंपती न हो–कठिन है यह समझना। इसलिए कृष्ण को समझना बहुत कठिन था। निकटतम जो कृष्ण के थे वे भी नहीं समझ सकते हैं। लेकिन पहली दफा एक महान प्रयोग हुआ है। पहली दफा आदमी ने अपनी शक्ति का पूरा परीक्षण कृष्ण में किया है। ऐसा परीक्षण कि संबंधों में रहते हुए असंग रहा जा सके, और युद्ध के क्षण पर भी करुणा न मिटे। और हिंसा की तलवार हाथ में हो, तो भी प्रेम का दिया मन से न बुझे।

इसलिए कृष्ण को जिन्होंने पूजा भी है, जिन्होंने कृष्ण की आराधना भी की है उन्होंने भी कृष्ण के टुकड़े-टुकड़े करके किया है। सूरदास के कृष्ण कभी बच्चे से बड़े नहीं हो पाते। बड़े कृष्ण के साथ खतरा है। सूरदास बर्दाश्त न कर सकेंगे। वह बाल कृष्ण को ही...। क्योंकि बाल कृष्ण अगर गांव की स्त्रियों को छेड़ देता है तो हमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन युवा-कृष्ण जब गांव की स्त्रियों को छेड़ देगा तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगा। फिर हमें समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हम अपने ही तल पर तो समझ सकते हैं। हमारे अपने तल के अतिरिक्त समझने का हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। तो कोई है जो कृष्ण के एक रूप को चुन लेगा, कोई है जो दूसरे रूप को चुन लेगा। गीता को प्रेम करने वाले गीता की चर्चा में न पड़ेंगे, क्योंकि कहां राग-रंग और कहां रास और कहां युद्ध का मैदान! उनके बीच कोई तालमेल नहीं है। शायद कृष्ण से बड़े विरोधों को एक-साथ पी लेने वाला कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। इसलिए कृष्ण की एक-एक शकल लोगों ने पकड़ लिया। है। जो जिसे प्रीतिकर लगी है, उसने छांट लिया है, बाकी शकल को उसने इनकार कर दिया है।

–ओशो

कृष्ण स्मृति, प्रवचन-01

महावीर से प्रेम

मैं महावीर का अनुयायी तो नहीं हूं, प्रेमी हूं। वैसे ही जैसे क्राइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का या लाओत्से का। और मेरी दृष्टि में अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता है।

और दुनिया में दो ही तरह के लोग होते हैं, साधारणतः। या तो कोई अनुयायी होता है, और या कोई विरोध में होता है। न अनुयायी समझ पाता है, न विरोधी समझ पाता है। एक और रास्ता भी है–प्रेम, जिसके अतिरिक्त हम और किसी रास्ते से कभी किसी को समझ ही नहीं पाते। अनुयायी को एक कठिनाई है कि वह एक से बंध जाता है और विरोधी को भी यह कठिनाई है कि वह विरोध में बंध जाता है। सिर्फ प्रेमी को एक मुक्ति है। प्रेमी को बंधने का कोई कारण नहीं है। और जो प्रेम बांधता हो, वह प्रेम ही नहीं है।

तो महावीर से प्रेम करने में महावीर से बंधना नहीं होता। महावीर से प्रेम करते हुए बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम किया जा सकता है। क्योंकि जिस चीज को हम महावीर में प्रेम करते हैं, वह और हजार-हजार लोगों में उसी तरह प्रकट हुई है।

महावीर को थोड़े ही प्रेम करते हैं। वह जो शरीर है वर्धमान का, वह जो जन्मतिथियों में बंधी हुई एक इतिहास रेखा है, एक दिन पैदा होना और एक दिन मर जाना, इसे तो प्रेम नहीं करते हैं। प्रेम करते हैं उस ज्योति को जो इस मिट्टी के दीए में प्रकट हुई। यह दीया कौन था, यह बहुत अर्थ की बात नहीं। बहुत-बहुत दीयों में वह ज्योति प्रकट हुई है।

जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह दीए से नहीं बंधेगा; और जो दीए से बंधेगा, उसे ज्योति का कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि दीए से जो बंध रहा है, निश्चित है कि उसे ज्योति का पता नहीं चला। जिसे ज्योति का पता चल जाए उसे दीए की याद भी रहेगी? उसे दीया फिर दिखाई भी पड़ेगा?

जिसे ज्योति दिख जाए, वह दीए को भूल जाएगा। इसलिए जो दीए को याद रखे हैं, उन्हें ज्योति नहीं दिखाई दी। और जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह इस ज्योति को, उस ज्योति को थोड़े ही प्रेम करेगा! जो भी ज्योतिर्मय है–जब एक ज्योति में दिख जाएगा उसे, तो कहीं भी ज्योति हो, वहीं दिख जाएगा। सूरज में भी, घर में जलने वाले छोटे से दीए में भी, चांदत्तारों में भी, आग में–जहां कहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगा।

लेकिन अनुयायी व्यक्तियों से बंधे हैं, विरोधी व्यक्तियों से बंधे हैं। प्रेमी भर को व्यक्ति से बंधने की कोई जरूरत नहीं। और मैं प्रेमी हूं। और इसलिए मेरा कोई बंधन नहीं है महावीर से। और बंधन न हो तो ही समझ हो सकती है, अंडरस्टैंडिंग हो सकती है।

यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि महावीर को चर्चा के लिए क्यों चुना?

बहाना है सिर्फ। जैसे एक खूंटी होती है, कपड़ा टांगना प्रयोजन होता है, खूंटी कोई भी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण में–बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। किसी भी खूंटी से काम लिया जा सकता है। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दीए में भी जल सकती है।

स्मरण मैं महान मानता हूं, अनुकरण नहीं। और स्मरण भी महावीर का जब हम करते हैं, तो भी महावीर का स्मरण नहीं है वह, स्मरण है उस तत्व का, जो महावीर में प्रकट हुआ। और उस तत्व का स्मरण आ जाए तो तत्काल स्मरण आत्म-स्मरण बन जाता है। और वही सार्थक है, जो आत्म-स्मरण की तरफ ले जाए।

लेकिन महावीर की पूजा से यह नहीं होता। पूजा से आत्म-स्मरण नहीं आता। बड़े मजे की बात है, पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है। जो अपने को भूलना चाहते हैं, वे पूजा में लग जाते हैं। और उनके लिए भी

महावीर खूंटी का काम देते हैं, बुद्ध, कृष्ण, सब खूंटी का काम देते हैं। जिसे अपने को भूलना ही हो, वह अपने भूलने का वस्त्र उनकी खूंटी पर टांग देता है। अनुयायी, भक्त, अंधे, अनुकरण करने वाले भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूंटियों का उपयोग कर रहे हैं आत्म-विस्मरण के लिए! पूजा, प्रार्थना, अर्चना–सब विस्मरण हैं।

स्मरण बहुत और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर में उस सार को खोज पाएं, देख पाएं–किसी रूप में, कहीं पर भी–वह सार हमें दिख जाए, उसकी एक झलक मिल जाए, उसका एक स्मरण आ जाए कि ऐसा भी हुआ है, ऐसा भी किसी व्यक्ति में होता है, ऐसा भी संभव है। यह संभावना का बोध तत्काल हमें अपने प्रति जगा देगा, कि जो किसी एक में संभव है, जो एक मनुष्य में संभव है, वह फिर मेरी संभावना क्यों न बने! और तब हम पूजा में न जाएंगे, बल्कि एक अंतर्पीड़ा में, एक इनर सफरिंग में उतर जाएंगे। जैसे जले हुए दीए को देख कर बुझा हुआ दीया एक आत्म-पीड़ा में उतर जाए, और उसे लगे कि मैं व्यर्थ हूं, मैं सिर्फ नाम मात्र को दीया हूं, क्योंकि वह ज्योति कहां? वह प्रकाश कहां? मैं सिर्फ अवसर हूं अभी जिसमें ज्योति प्रकट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नहीं।

लेकिन बुझे हुए दीयों के बीच बुझा हुआ दीया रखा रहे, तो उसे खयाल भी न आए, पता भी न चले। तो करोड़ बुझे हुए दीयों के बीच में भी जो स्मरण नहीं आ सकता, वह एक जले हुए दीए के निकट आ सकता है।

महावीर या बुद्ध या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं है कि वे जले हुए दीए हैं। और उनका खयाल और उनके जले हुए दीए की ज्योति की लपट एक बार भी हमारी आंखों में कौंध जाए, तो हम फिर वही आदमी नहीं हो सकेंगे, जो हम कल तक थे। क्योंकि हमारी एक नई संभावना का द्वार खुलता है, जो हमें पता ही नहीं था कि हम हो सकते हैं। उसकी प्यास जग गई। यह प्यास जग जाए, तो कोई भी बहाना बनता हो, उससे कोई प्रयोजन नहीं। तो मैं महावीर को भी बहाना बनाऊंगा, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी, बुद्ध को भी, लाओत्से को भी।

फिर हममें बहुत तरह के लोग हैं। और कई बार ऐसा होता है कि जिसे लाओत्से में ज्योति दिख सकती है, उसे हो सकता है बुद्ध में ज्योति न दिखे। और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर में ज्योति दिख सकती है, उसे लाओत्से में ज्योति न दिखे। एक बार अपने में ज्योति दिख जाए, तब तो लाओत्से, बुद्ध का मामला ही नहीं है, तब तो सड़क पर चलते हुए साधारण आदमी में भी ज्योति दिखने लगती है। तब तो फिर ऐसा आदमी ही नहीं दिखता, जिसमें ज्योति न हो। तब तो आदमी बहुत दूर की बात है, पशु-पक्षी में भी वही ज्योति दिखने लगती है। पशु-पक्षी भी बहुत दूर की बात है, पत्थर में भी वह ज्योति दिखने लगती है। एक बार अपने में दिख जाए, तब तो सबमें दिखने लगती है। लेकिन जब तक स्वयं में नहीं दिखी है, तब तक जरूरी नहीं है कि सभी लोगों को महावीर में ज्योति दिखे।

उसके कारण हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के देखने के ढंग में भेद है। और व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता में भेद है। और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि में भेद है। एक सुंदर युवती है, जरूरी नहीं सभी को सुंदर मालूम पड़े।

महावीर के संबंध में कुछ थोड़ी सी बातें कहूंगा और कुछ थोड़ी सी बातें आपके संबंध में कहूंगा। क्योंकि जो बातें केवल महावीर के संबंध में हों, वे आपके किसी काम की नहीं होंगी। और जो बातें केवल आपके संबंध में हों, उनसे महावीर का कोई संबंध नहीं होगा। इसलिए उचित है कि मैं थोड़ी सी बातें आपके संबंध में कहूं और थोड़ी सी बातें महावीर के संबंध में कहूं, ताकि आप महावीर से संबंधित हो सकें। ताकि रास्ता बन सके और आप उनके विचार तक, उनके उस आकाश तक आपकी आंखें खुल सकें। इसलिए थोड़ी सी बात आपकी और थोड़ी सी बात महावीर की।

इसके पहले कि महावीर के संबंध में कुछ कहूं, बहुत उचित है कि आपके संबंध में कहूं। क्योंकि आप महावीर को समझना चाहते हैं, आप महावीर को प्रेम करना चाहते हैं, आप महावीर के प्रति निष्ठावान होना चाहते हैं। और आप महावीर के विचार और उनकी साधना से लाभान्वित होना चाहते हैं, तो आपके संबंध में कुछ बातें बहुत जरूरी हैं।

पहली बात तो यह जरूरी है कि आप इस बात को समझ लें कि अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं इसलिए महावीर को श्रद्धा देते हों तो वैसी श्रद्धा का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा नहीं है। अगर आप जैन घर में पैदा होने से महावीर को आदर देते हों तो क्षमा मुझे करें, आप कोई भी आदर नहीं देते हैं। आपके किसी घर में पैदा होने से महावीर को दिए गए आदर का क्या संबंध हो सकता है? आपका किसी समाज में पैदा हो जाना, आपका किसी परिवार में पैदा हो जाना, महावीर से आपको संबंधित नहीं करता।

तो दूसरी बात आपसे मैं यह कहूं कि अगर महावीर के सिद्धांत आपको मालूम हों तो उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। अगर महावीर की जीवन-चर्या आपको मालूम हो तो उसका मूल्य है। महावीर क्या कहते थे कि सृष्टि कैसे बनी, महावीर क्या कहते थे कि कितने पदार्थ हैं और कितने तत्व हैं, महावीर क्या कहते थे कि तर्क क्या है और सत्य क्या है, इसे जान लेने का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य इस बात का है कि महावीर कैसे चलते थे, कैसे उठते थे, कैसे जीते थे। महावीर के तत्व-चिंतन का मूल्य नहीं है, महावीर की जीवन-चर्या का मूल्य है।

जो जीवन-चर्या को साधेगा, वह महावीर के तत्व-ज्ञान को अपने आप उपलब्ध हो जाएगा। जो महावीर के तत्व-ज्ञान को सीख कर बैठा रहेगा, वह तत्व-ज्ञानी बन कर रह जाएगा, वह महावीर की जीवन-चर्या को उपलब्ध नहीं होगा। जीवन-चर्या मूल है, तत्व-ज्ञान गौण है। जीवन-चर्या का वृक्ष कोई लगाए, तो तत्व-ज्ञान की शाखाएं अपने आप फूट आती हैं। और जो तत्व-ज्ञान की शाखाओं को इकट्ठा करता रहे, उसके हाथ में लकड़ियों का बंडल तो बहुत इकट्ठा हो जाता है, भार तो बहुत हो जाता है, उसके जीवन में मुक्ति का प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है। इसलिए दूसरी बात आपसे यह कहूं।

और तीसरी बात आपसे यह कहूं कि धर्म केवल उनके काम का है, जिन्हें प्यास हो। एक कुएं के पास हम खड़े हों। कुएं में जो पानी है, वह पानी केवल उन्हीं के लिए है, जिन्हें प्यास हो, अन्यथा पानी पानी नहीं है। पानी का होना पानी के भीतर नहीं है, आपकी प्यास में है। प्यास हो तो पानी पानी बन जाता है, प्यास न हो तो पानी कुछ भी नहीं रह जाता।

यह प्रकाश जल रहा है यहां। इस प्रकाश का होना प्रकाश में ही नहीं है, मेरी आंख में भी है। अगर आंख हो तो यह प्रकाश बन जाता है, आंख न हो तो सब अंधकार हो जाता है।

महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अंतिम व्यक्ति हैं, जिस संस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ग है। महावीर जैन विचार और परंपरा के अंतिम तीर्थंकर हैं..चैबीसवें। शिखर की, लहर की आखिरी ऊंचाई। और महावीर के बाद वह लहर और वह सभ्यता और वह संस्कृति सब बिखर गई। आज उन सूत्रों को समझना कठिन है; क्योंकि वह पूरा का पूरा 'मिल्यू', वह वातावरण जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं है।

ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए, याददाश्त रह जाएगी। वह याददाश्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हंसेंगे, वे कहेंगे कि कहां है हवाई जहाज, जिनकी तुम बात करते हो? ऐसा मालूम होता है कहानियां हैं, पुराण-कथाएं हैं, 'मिथ' हैं।

जैन चैबीस तीर्थंकरों की ऊंचाई..शरीर की ऊंचाई..बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है। उनमें महावीर भर की ऊंचाई आदमी की ऊंचाई है, बाकी तेईस तीर्थंकर बहुत ऊंचे हैं, जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गई है, वैसे-वैसे

जमीन पर ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया है। और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होता है, लोगों की ऊंचाई कम होती चली जाती है। आपकी दीवाल की छत पर छिपकली चलती है, आप कभी सोच नहीं सकते कि छिपकली आज से दस लाख साल पहले हाथी से बड़ा जानवर थी। वह अकेली बची है, उसकी जाति के सारे जानवर खो गए।

उतने बड़े जानवर अचानक क्यों खो गए? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण में कोई राज छिपा हुआ मालूम पड़ता है। अगर गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जाएगा। अगर आदमी चांद पर रहने लगे तो आदमी की ऊंचाई चैगुनी हो जाएगी, क्योंकि चांद पर चैगुना कम है गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से। अगर हमने कोई और तारे और ग्रह खोज लिए जहां गुरुत्वाकर्षण और कम हो तो ऊंचाई और बड़ी हो जाएगी। इसलिए आज एकदम कथा कह देनी बहुत कठिन है।

–ओशो

महावीर मेंरी दृष्टि में, प्रवचन-01

संत रैदास

आदमी को क्या हो गया है? आदमी के इस बगीचे में फूल खिलने बंद हो गए! मधुमास जैसे अब आता नहीं! जैसे मनुष्य का हृदय एक रेगिस्तान हो गया है, मरूद्यान भी नहीं कोई। हरे वृक्षों की छाया भी न रही। दूर के पंछी बसेरा करें, ऐसे वृक्ष भी न रहे। आकाश को देखने वाली आखें भी नहीं। अनाहत को सुनने वाले कान भी नहीं। मनुष्य को क्या हो गया है?

मनुष्य ने गरिमा कहां खो दी है? यह मनुष्य का ओज कहां गया? इसके मूल कारण की खोज करनी ही होगी। और मूल कारण कठिन नहीं है समझ लेना। जरा अपने ही भीतर खोदने की बात है और जड़ें मिल जाएंगी समस्या की। एक ही जड़ है कि हम अपने से वियुक्त हो गए हैं; अपने से ही टूट गए हैं अपने से ही अजनबी हो गए हैं!

और जो अपने से अजनबी है, वह सबसे अजनबी हो जाता है। अपने को जिसने पहचान लिया, उसकी सबसे पहचान हो जाती है। उसके लिए अजनबी भी अजनबी नहीं रह जाते, क्योंकि उसे दिखाई पड़ता है भीतर एक ही तरंग, एक ही चैतन्य, एक ही ज्योति! दीये होंगे अलग, दीयों के ढंग होंगे अलग, आकृति-रंग होंगे अलग; मगर ज्योति तो एक है! लेकिन जिसने अपनी ही ज्योति नहीं देखी, वह किसके भीतर ज्योति को देखेगा! उसे तो चलती-फिरती लाशें दिखाई पड़ती हैं। वह खुद भी मुर्दा है और दूसरे भी उसे मुर्दा ही मालूम होते हैं। वह मुर्दों की बस्ती में जीता है।

एक दुर्घटना घटी है और उस दुर्घटना के प्रति सचेत हो जाना जरूरी है, अन्यथा अपनी खोज न हो सकेगी। और जिसने स्वयं को न जाना उसने कुछ भी न जाना। वह जीया भी और जीया भी नहीं। वह जीया नहीं, बस मरा ही। उसके जन्म और मृत्यु के बीच में कुछ भी न घटा। अगर जन्म और मृत्यु के बीच में परमात्मा न घटे तो जानना कि कुछ भी न घटा, खाली आए, खाली गए। शायद कुछ गंवा कर गए, कमा कर नहीं।

एक दुर्घटना हुई है और वह दुर्घटना है मनुष्य की चेतना बहिर्मुखी हो गई है। सदियों में धीरे- धीरे यह हुआ, शनैः-शनैः, क्रमशः-क्रमशः। मनुष्य की आखें बस बाहर थिर हो गई हैं, भीतर मुड़ना भूल गई हैं। तो कभी अगर धन से ऊब भी जाता है- और ऊबेगा ही कभी, कभी पद से भी आदमी ऊब जाता है- ऊबना ही पड़ेगा, सब थोथा है! कब तक भरमाओगे अपने को? भ्रम हैं तो टूटेंगे। छाया को कब तक सत्य मानोगे? माया का मोह कब तक धोखा देगा? सपनों में कब तक अटके रहोगे? एक न एक दिन पता चलता है सब व्यर्थ है।

लेकिन तब भी एक मुसीबत खड़ी हो जाती है। वे जो आखें बाहर ठहर गई हैं, वे आखें अब भी बाहर खोजती हैं। धन नहीं खोजती, भगवान खोजती हैं- मगर बाहर ही। पद नहीं खोजती, मोक्ष खोजती हैं- लेकिन बाहर ही। विषय बदल जाता है, लेकिन तुम्हारी जीवन-दिशा नहीं बदलती।

और परमात्मा भीतर है; वह अंतर्यात्रा है। जिसकी भक्ति उसे बाहर के भगवान से जोड़े हुए है उसकी भक्ति भी धोखा है।

मन ही पूजा मन ही धूप।

चलना है भीतर! मन है मंदिर! उसी मन के अंतरगृह में छिपा हुआ बैठा है मालिक।

आदमी ने अपनी तरफ पीठ कर ली, यही उसका दुर्भाग्य है। रैदास याद दिलाते हैं : मुड़ो, अपनी ओर मुड़ो। मन ही पूजा मन ही धूप! छोड़ो मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे। वे सब तो आदमी के बनाए हुए हैं। खोजो अपने भीतर के चैतन्य में, क्योंकि वही परमात्मा से आया है। वही एक किरण है प्रकाश की, जो उस परम सूर्य तक ले जा सकती है, क्योंकि वह उस परम सूर्य से आती है। वही है सेतु।

–ओशो

मन ही पूजा मन ही धूप-रैदास

एक अनूठी यात्रा पर हम निकलते हैं।

मनुष्य-जाति के पास बहुत शास्त्र हैं, पर अष्टावक्र-गीता जैसा शास्त्र नहीं। वेद फीके हैं। उपनिषद बहुत धीमी आवाज में बोलते हैं। गीता में भी ऐसा गौरव नहीं; जैसा अष्टावक्र की संहिता में है। कुछ बात ही अनूठी है!

सबसे बड़ी बात तो यह है कि न समाज, न राजनीति, न जीवन की किसी और व्यवस्था का कोई प्रभाव अष्टावक्र के वचनों पर है। इतना शुद्ध भावातीत वक्तव्य, समय और काल से अतीत, दूसरा नहीं है। शायद इसीलिए अष्टावक्र की गीता, अष्टावक्र की संहिता का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा।

कृष्ण की गीता का बहुत प्रभाव पड़ा। पहला कारण: कृष्ण की गीता समन्वय है। सत्य की उतनी चिंता नहीं है जितनी समन्वय की चिंता है। समन्वय का आग्रह इतना गहरा है कि अगर सत्य थोड़ा खो भी जाये तो कृष्ण राजी हैं।

कृष्ण की गीता खिचड़ी जैसी है; इसलिए सभी को भाती है, क्योंकि सभी का कुछ न कुछ उसमें मौजूद है। ऐसा कोई संप्रदाय खोजना मुश्किल है जो गीता में अपनी वाणी न खोज ले। ऐसा कोई व्यक्ति खोजना मुश्किल है जो गीता में अपने लिए कोई सहारा न खोज ले। इन सबके लिए अष्टावक्र की गीता बड़ी कठिन होगी।

अष्टावक्र समन्वयवादी नहीं हैं–सत्यवादी हैं। सत्य जैसा है वैसा कहा है–बिना किसी लाग-लपेट के। सुनने वाले की चिंता नहीं है। सुनने वाला समझेगा, नहीं समझेगा, इसकी भी चिंता नहीं है। सत्य का ऐसा शुद्धतम वक्तव्य न पहले कहीं हुआ, न फिर बाद में कभी हो सका।

कृष्ण की गीता लोगों को प्रिय है, क्योंकि अपना अर्थ निकाल लेना बहुत सुगम है। कृष्ण की गीता काव्यात्मक है: दो और दो पांच भी हो सकते हैं, दो और दो तीन भी हो सकते हैं। अष्टावक्र के साथ कोई खेल संभव नहीं। वहां दो और दो चार ही होते हैं।

अष्टावक्र का वक्तव्य शुद्ध गणित का वक्तव्य है। वहां काव्य को जरा भी जगह नहीं है। वहां कविता के लिए जरा-सी भी छूट नहीं है। जैसा है वैसा कहा है। किसी तरह का समझौता नहीं है।

कृष्ण की गीता पढ़ो तो भक्त अपना अर्थ निकाल लेता है, क्योंकि कृष्ण ने भक्ति की भी बात की है; कर्मयोगी अपना अर्थ निकाल लेता है, क्योंकि कृष्ण ने कर्मयोग की भी बात की है; ज्ञानी अपना अर्थ निकाल लेता है, क्योंकि कृष्ण ने ज्ञान की भी बात की है। कृष्ण कहीं भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, कहीं ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, कहीं कर्म को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

कृष्ण का वक्तव्य बहुत राजनैतिक है। वे राजनेता थे–कुशल राजनेता थे! सिर्फ राजनेता थे, इतना ही कहना उचित नहीं–कुटिल राजनीतिज्ञ थे, डिप्लोमैट थे। उनके वक्तव्य में बहुत-सी बातों का ध्यान रखा गया है। इसलिए सभी को गीता भा जाती है। इसलिए तो गीता पर हजारों टीकाएं हैं; अष्टावक्र पर कोई चिंता नहीं करता। क्योंकि अष्टावक्र के साथ राजी होना हो तो तुम्हें अपने को छोड़ना पड़ेगा। बेशर्त! तुम अपने को न ले जा सकोगे। तुम पीछे रहोगे तो ही जा सकोगे। कृष्ण के साथ तुम अपने को ले जा सकते हो। कृष्ण के साथ तुम्हें बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है। कृष्ण के साथ तुम मौजूं पड़ सकते हो।

इसलिए सभी सांप्रदायिकों ने कृष्ण की गीता पर टीकाएं लिखीं–शंकर ने, रामानुज ने, निम्बार्क ने, वल्लभ ने, सबने। सबने अपने अर्थ निकाल लिए। कृष्ण ने कुछ ऐसी बात कही है जो बहु-अर्थी है। इसलिए मैं कहता हूं, काव्यात्मक है। कविता में से मनचाहे अर्थ निकल सकते हैं।

कृष्ण का वक्तव्य ऐसा है जैसे वर्षा में बादल घिरते हैं: जो चाहो देख लो। कोई देखता है हाथी की सूंड; कोई चाहे गणेश जी को देख ले। किसी को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता–वह कहता है, कहां की फिजूल बातें कर रहे हो? बादल हैं! धुआं–इसमें कैसी आकृतियां देख रहे हो?

अष्टावक्र का सुस्पष्ट संदेश है। उसमें जरा भी तुम अपनी व्याख्या न डाल सकोगे। इसलिए लोगों ने टीकाएं नहीं लिखीं। टीका लिखने की जगह नहीं है; तोड़ने-मरोड़ने का उपाय नहीं है; तुम्हारे मन के लिए सुविधा नहीं है कि तुम कुछ डाल दो। अष्टावक्र ने इस तरह से वक्तव्य दिया है कि सदियां बीत गईं, उस वक्तव्य में कोई कुछ जोड़ नहीं पाया, घटा नहीं पाया। बहुत कठिन है ऐसा वक्तव्य देना। शब्द के साथ ऐसी कुशलता बड़ी कठिन है।

इसलिए मैं कहता हूं, एक अनूठी यात्रा तुम शुरू कर रहे हो।

अष्टावक्र में राजनीतिज्ञों की कोई उत्सुकता नहीं है–न तिलक की, न अरविंद की, न गांधी की, न विनोबा की, किसी की कोई उत्सुकता नहीं है। क्योंकि तुम अपना खेल न खेल पाओगे। तिलक को उकसाना है देश-भक्ति, उठाना है कर्म का ज्वार–कृष्ण की गीता सहयोगी बन जाती है।

कृष्ण हर किसी को कंधा देने को तैयार हैं। कोई भी चला लो गोली उनके कंधे पर रख कर, वे राजी हैं। कंधा उनका, पीछे छिपने की तुम्हें सुविधा है, और उनके पीछे से गोली चलाओ तो गोली भी बहुमूल्य मालूम पड़ती है।

अष्टावक्र किसी को कंधे पर हाथ भी नहीं रखने देते। इसलिए गांधी की कोई उत्सुकता नहीं है; तिलक की कोई उत्सुकता नहीं है; अरविंद, विनोबा को कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि तुम कुछ थोप न सकोगे। राजनीति की सुविधा नहीं है। अष्टावक्र राजनीतिक पुरुष नहीं हैं।

यह पहली बात खयाल में रख लेनी जरूरी है। ऐसा सुस्पष्ट, खुले आकाश जैसा वक्तव्य, जिसमें बादल हैं ही नहीं, तुम कोई आकृति देख न पाओगे। आकृति छोड़ोगे सब, बनोगे निराकर, अरूप के साथ जोड़ोगे संबंध तो अष्टावक्र समझ में आयेंगे। अष्टावक्र को समझना चाहो तो ध्यान की गहराई में उतरना होगा, कोई व्याख्या से काम होने वाला नहीं है।

और ध्यान के लिए भी अष्टावक्र नहीं कहते कि तुम बैठ कर राम-राम जपो। अष्टावक्र कहते हैं: तुम कुछ भी करो, वह ध्यान न होगा। कर्ता जहां है वहां ध्यान कैसा? जब तक करना है तब तक भ्रांति है। जब तक करने वाला मौजूद है तब तक अहंकार मौजूद है।

अष्टावक्र कहते हैं: साक्षी हो जाना है ध्यान–जहां कर्ता छूट जाता है, तुम सिर्फ देखने वाले रह जाते हो, द्रष्टा-मात्र! द्रष्टा-मात्र हो जाने में ही दर्शन है। द्रष्टा-मात्र हो जाने में ही ध्यान है। द्रष्टा-मात्र हो जाने में ही ज्ञान है।

इसके पहले कि हम सूत्र में उतरें, अष्टावक्र के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। ज्यादा पता नहीं है, क्योंकि न तो वे सामाजिक पुरुष थे, न राजनीतिक, तो इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। बस थोड़ी-सी घटनाएं ज्ञात हैं–वे भी बड़ी अजीब, भरोसा करने योग्य नहीं; लेकिन समझोगे तो बड़े गहरे अर्थ खुलेंगे।

पहली घटना–अष्टावक्र पैदा हुए उसके पहले की; पीछे का तो कुछ पता नहीं है–गर्भ की घटना। पिता–बड़े पंडित। अष्टावक्र–मां के गर्भ में। पिता रोज वेद का पाठ करते हैं और अष्टावक्र गर्भ में सुनते हैं। एक दिन अचानक गर्भ से आवाज आती है कि रुको भी! यह सब बकवास है। ज्ञान इसमें कुछ भी नहीं–बस शब्दों का संग्रह है। शास्त्र में ज्ञान कहां? ज्ञान स्वयं में है। शब्द में सत्य कहां? सत्य स्वयं में है।

पिता स्वभावतः नाराज हुए। एक तो पिता, फिर पंडित! और गर्भ में छिपा हुआ बेटा इस तरह की बात कहे! अभी पैदा भी नहीं हुआ! क्रोध में आ गए, आगबबूला हो गए। पिता का अहंकार चोट खा गया। फिर पंडित

का अहंकार! बड़े पंडित थे, बड़े विवादी थे, शास्त्रार्थी थे। क्रोध में अभिशाप दे दिया कि जब पैदा होगा तो आठ अंगों से टेढ़ा होगा। इसलिए नाम–अष्टावक्र। आठ जगह से कुबड़े पैदा हुए। आठ जगह से ऊंट की भांति, इरछे-तिरछे! पिता ने क्रोध में शरीर को विक्षत कर दिया।

अब जो अष्टावक्र की कथा को देखेगा, वह सुनते से ही कह देगा: "गलत! असंभव!' यह तो कथा जिन्होंने लिखी है उनको भी पता है कि कहीं कोई गर्भ से बोलता है! वे तो केवल इतना कह रहे हैं कि जो आखिर में प्रगट हुआ वह गर्भ में मौजूद रहा होगा; जो वाणी आखिर में खिली वह किसी न किसी गहरे तल पर गर्भ में भी मौजूद रही होगी, अन्यथा खिलती कहां से, आती कहां से? शून्य से थोड़े ही कुछ आता है! हर चीज के पीछे कारण है। नहीं देख पाये हों हम, लेकिन था तो मौजूद।

ये सारी कथाएं इसी का सूचन देती हैं।

अष्टावक्र के संबंध में दूसरी बात जो ज्ञात है, वह है जब वे बारह वर्ष के थे। बस दो ही बातें ज्ञात हैं। तीसरी उनकी अष्टावक्र-गीता है; या कुछ लोग कहते हैं "अष्टावक्र-संहिता'। जब वे बारह वर्ष के थे तो एक बड़ा विशाल शास्त्रार्थ जनक ने रचा। जनक सम्राट थे और उन्होंने सारे देश के पंडितों को निमंत्रण दिया। और उन्होंने एक हजार गायें राजमहल के द्वार पर खड़ी कर दीं और उन गायों के सींगों पर सोना मढ़ दिया और हीरे-जवाहरात लटका दिये, और कहा, "जो भी विजेता होगा वह इन गायों को हांक कर ले जाये।'

बड़ा विवाद हुआ! अष्टावक्र के पिता भी उस विवाद में गये। खबर आई सांझ होते-होते कि पिता हार रहे हैं। सबसे तो जीत चुके थे, वंदिन नाम के एक पंडित से हारे जा रहे हैं। यह खबर सुन कर अष्टावक्र भी राजमहल पहुंच गया। सभा सजी थी। विवाद अपनी आखिरी चरम अवस्था में था। निर्णायक घड़ी करीब आती थी। पिता के हारने की स्थिति बिलकुल पूरी तय हो चुकी थी। अब हारे तब हारे की अवस्था थी।

अष्टावक्र दरबार में भीतर चला गया। पंडितों ने उसे देखा। महापंडित इकट्ठे थे! उसका आठ अंगों से टेढ़ा-मेढ़ा शरीर! वह चलता तो भी देख कर लोगों को हंसी आती। उसका चलना भी बड़ा हास्यास्पद था। सारी सभा हंसने लगी। अष्टावक्र भी खिलखिला कर हंसा। जनक ने पूछा: "और सब हंसते हैं, वह तो मैं समझ गया क्यों हंसते हैं; लेकिन बेटे, तू क्यों हंसा?'

अष्टावक्र ने कहा: "मैं इसलिए हंस रहा हूं कि इन चमारों की सभा में सत्य का निर्णय हो रहा है!'

बड़ा...आदमी अनूठा रहा होगा! "ये चमार यहां क्या कर रहे हैं?'

सन्नाटा छा गया!...चमार! सम्राट ने पूछा: "तेरा मतलब?' उसने कहा: "सीधी-सी बात है। इनको चमड़ी ही दिखायी पड़ती है, मैं नहीं दिखायी पड़ता। मुझसे सीधा-सादा आदमी खोजना मुश्किल है, वह तो इनको दिखायी ही नहीं पड़ता; इनको आड़ा-टेढ़ा शरीर दिखायी पड़ता है। ये चमार हैं! ये चमड़ी के पारखी हैं। राजन, मंदिर के टेढ़े होने से कहीं आकाश टेढ़ा होता है? घड़े के फूटे होने से कहीं आकाश फूटता है? आकाश तो निर्विकार है। मेरा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा है, लेकिन मैं तो नहीं। यह जो भीतर बसा है इसकी तरफ तो देखो! इससे तुम सीधा-सादा और कुछ खोज न सकोगे।'

यह बड़ी चौंकाने वाली घोषणा थी, सन्नाटा छा गया होगा। जनक प्रभावित हुआ, झटका खाया। निश्चित ही कहां चमारों की भीड़ इकट्ठी करके बैठा है! खुद पर भी पश्चात्ताप हुआ, अपराध लगा कि मैं भी हंसा। उस दिन तो कुछ न कहते बना, लेकिन दूसरे दिन सुबह जब सम्राट घूमने निकला था तो राह पर अष्टावक्र दिखायी पड़ा। उतरा घोड़े से, पैरों में गिर पड़ा। सबके सामने तो हिम्मत न जुटा पाया, एक दिन पहले। एक दिन पहले तो कहा था, "बेटे, तू क्यों हंसता है?' बारह साल का लड़का था। उम्र तौली थी। आज उम्र नहीं तौली। आज घोड़े से उतर गया, पैर पर गिर पड़ा–साष्टांग दंडवत! और कहा: पधारें राजमहल, मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करें!

हे प्रभु, आयें मेरे घर! बात मेरी समझ में आ गई है! रात भर मैं सो न सका। ठीक ही कहा: शरीर को ही जो पहचानते हैं उनकी पहचान गहरी कहां! आत्मा के संबंध में विवाद कर रहे हैं, और अभी भी शरीर में रस और विरस पैदा होता है, घृणा, आकर्षण पैदा होता है! मर्त्य को देख रहे हैं, अमृत की चर्चा करते हैं! धन्यभाग मेरे कि आप आये और मुझे चौंकाया! मेरी नींद तोड़ दी! अब पधारो!

राजमहल में उसने बड़ी सजावट कर रखी थी। स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाया था इस बारह साल के अष्टावक्र को और उससे जिज्ञासा की। पहला सूत्र जनक की जिज्ञासा है। जनक ने पूछा है, अष्टावक्र ने समझाया है।

इससे ज्यादा अष्टावक्र के संबंध में और कुछ पता नहीं है–और कुछ पता होने की जरूरत भी नहीं है। काफी है, इतना बहुत है। हीरे बहुत होते भी नहीं, कंकड़-पत्थर ही बहुत होते हैं। हीरा एक भी काफी होता है। ये दो छोटी-सी घटनाएं हैं।

एक तो जन्म के पहले की: गर्भ से आवाज और घोषणा कि "क्या पागलपन में पड़े हो? शास्त्र में उलझे हो, शब्द में उलझे हो? जागो! यह ज्ञान नहीं है, यह सब उधार है। यह सब बुद्धि का ही जाल है, अनुभव नहीं है। इसमें रंचमात्र भी सार नहीं है। कब तक अपने को भरमाये रखोगे?'

और दूसरी घटना: राजमहल में हंसना पंडितों का और कहना अष्टावक्र का, कि जीवन में देखने की दो दृष्टियां हैं–एक आत्म-दृष्टि, एक चर्म-दृष्टि। चमार चमड़ी को देखता है। प्रज्ञावान आत्मा को देखता है।

तुमने गौर किया? चमार तुम्हारे चेहरे की तरफ देखता ही नहीं, वह जूते को ही देखता है। असल में चमार जूते को देख कर सब पहचान लेता है तुम्हारे संबंध में कि आर्थिक हालत कैसी है; सफलता मिल रही है कि विफलता मिल रही है; भाग्य कैसा चल रहा है। वह सब जूते में लिखा है। जूते की सिलवटें कह देती हैं। जूते की दशा कह देती है। जूते में तुम्हारी आत्मकथा लिखी है। चमार पढ़ लेता है। जूते में चमक, जूते का ताजा और नया होना, चमार तुमसे प्रसन्नता से मिलता है। जूता ही उसके लिए तुम्हारी आत्मा का सबूत है।

दर्जी कपड़े देखता है। तुम्हारा कोट-कपड़ा देख कर समझ लेता है, हालत कैसी है।

सबकी अपनी बंधी हुई दृष्टियां हैं।

सिर्फ आत्मवान ही आत्मा को देखता है। उसकी कोई दृष्टि नहीं है। उसके पास दर्शन है।

एक छोटी घटना और–जो अष्टावक्र के जीवन से संबंधित नहीं, रामकृष्ण और विवेकानंद के जीवन से संबंधित है, लेकिन अष्टावक्र से उसका जोड़ है–फिर हम सूत्रों में प्रवेश करें।

विवेकानंद रामकृष्ण के पास आये, तब उनका नाम "नरेंद्रनाथ' था। "विवेकानंद' तो बाद में रामकृष्ण ने उनको पुकारा। जब आये रामकृष्ण के पास तो अति विवादी थे, नास्तिक थे, तर्कवादी थे। हर चीज के लिए प्रमाण चाहते थे।

कुछ चीजें हैं जिनके लिए कोई प्रमाण नहीं–मजबूरी है। परमात्मा के लिए कोई प्रमाण नहीं है; है और प्रमाण नहीं है। प्रेम के लिए कोई प्रमाण नहीं है; है और प्रमाण नहीं है। सौंदर्य के लिए कोई प्रमाण नहीं है; है और प्रमाण नहीं है।

अगर मैं कहूं, देखो ये खजूरिना के वृक्ष कैसे सुंदर हैं, और तुम कहो, "हमें तो कोई सौंदर्य दिखायी नहीं पड़ता। वृक्ष जैसे वृक्ष हैं। सिद्ध करें।' मुश्किल हो जायेगी। कैसे सिद्ध करें कि सुंदर हैं! सुंदर होने के लिए सौंदर्य की परख चाहिए–और तो कोई उपाय नहीं। आंख चाहिए–और तो कोई उपाय नहीं।

–ओशो

अष्टावक्र महागीता

मीरा बाई

आओ, प्रेम की एक झील में नौका-विहार करें। और ऐसी झील मनुष्य के इतिहास में दूसरी नहीं है, जैसी झील मीरा है। मानसरोवर भी उतना स्वच्छ नहीं।

और हंसों की ही गति हो सकेगी मीरा की इस झील में। हंस बनो, तो ही उतर सकोगे इस झील में। हंस न बने तो न उतर पाओगे।

हंस बनने का अर्थ है: मोतियों की पहचान आंख में हो, मोती की आकांक्षा हृदय में हो। हंसा तो मोती चुगे!

कुछ और से राजी मत हो जाना। क्षुद्र से राजी हो गया, वह विराट को पाने में असमर्थ हो जाता है। नदी-नालों का पानी पीने से जो तृप्त हो गया, वह मानसरोवरों तक नहीं पहुंच पाता है; जरूरत ही नहीं रह जाती।

मीरा की इस झील में तुम्हें निमंत्रण देता हूं। मीरा नाव बन सकती है। मीरा के शब्द तुम्हें डूबने से बचा सकते हैं। उनके सहारे पर उस पार जा सकते हो।

मीरा तीर्थंकर है। उसका शास्त्र प्रेम का शास्त्र है। शायद शास्त्र कहना भी ठीक नहीं।

नारद ने भक्ति-सूत्र कहे; वह शास्त्र है। वहां तर्क है, व्यवस्था है, सूत्रबद्धता है। वहां भक्ति का दर्शन है।

मीरा स्वयं भक्ति है। इसलिए तुम रेखाबद्ध तर्क न पाओगे। रेखाबद्ध तर्क वहां नहीं है। वहां तो हृदय में कौंधती हुई बिजली है। जो अपने आशियाने जलाने को तैयार होंगे, उनका ही संबंध जुड़ पाएगा।

प्रेम से संबंध उन्हीं का जुड़ता है, जो सोच-विचार खोने को तैयार हों; जो सिर गंवाने को उत्सुक हों। उस मूल्य को जो नहीं चुका सकता, वह सोचे भक्ति के संबंध में, विचारे; लेकिन भक्त नहीं हो सकता।

तो मीरा के शास्त्र को शास्त्र कहना भी ठीक नहीं। शास्त्र कम है, संगीत ज्यादा है। लेकिन संगीत ही तो केवल भक्ति का शास्त्र हो सकता है। जैसे तर्क ज्ञान का शास्त्र बनता है, वैसे संगीत भक्ति का शास्त्र बनता है। जैसे गणित आधार है ज्ञान का, वैसे काव्य आधार है भक्ति का। जैसे सत्य की खोज ज्ञानी करता है, भक्त सत्य की खोज नहीं करता, भक्त सौंदर्य की खोज करता है। भक्त के लिए सौंदर्य ही सत्य है। ज्ञानी कहता है: सत्य सुंदर है। भक्त कहता है: सौंदर्य सत्य है।

वैज्ञानिक कहते हैं: मनुष्य का मस्तिष्क दो हिस्सों में विभाजित है। बाईं तरफ जो मस्तिष्क है वह सोच-विचार करता है; गणित, तर्क, नियम, वहां सब शृंखलाबद्ध है। और दाईं तरफ जो मस्तिष्क है वहां सोच-विचार नहीं है; वहां भाव है, वहां अनुभूति है। वहां संगीत की चोट पड़ती है। वहां तर्क का कोई प्रभाव नहीं होता। वहां लयबद्धता पहुंचती है। वहां नृत्य पहुंच जाता है; सिद्धांत नहीं पहुंचते।

स्त्री दाएं तरफ के मस्तिष्क से जीती है; पुरुष बाएं तरफ के मस्तिष्क से जीता है। इसलिए स्त्री-पुरुष के बीच बात भी मुश्किल होती है; कोई मेल नहीं बैठता दिखता है। पुरुष कुछ कहता है, स्त्री कुछ कहती है। पुरुष और ढंग से सोचता है, स्त्री और ढंग से सोचती है। उनके सोचने की प्रक्रियाएं अलग हैं। स्त्री विधिवत नहीं सोचती; सीधी छलांग लगाती है, निष्कर्षों पर पहुंच जाती है। पुरुष निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता, विधियों से गुजरता है। क्रमबद्ध–एक-एक कदम।

प्रेम में काई विधि नहीं होती, विधान नहीं होता। प्रेम की क्या विधि और क्या विधान! हो जाता है बिजली की कौंध की तरह। हो गया तो हो गया। नहीं हुआ तो करने का कोई उपाय नहीं है।

पुरुषों ने भी भक्ति के गीत गाए हैं लेकिन मीरा का कोई मुकाबला नहीं है; क्योंकि मीरा के लिए, स्त्री होने के कारण जो बिलकुल सहज है, वह पुरुष के लिए थोड़ा आरोपित सा मालूम पड़ता है। पुरुष भक्त हुए; जिन्होंने अपने को परमात्मा की प्रेयसी माना, पत्नी माना, मगर बात कुछ अड़चन भरी हो जाती है। संप्रदाय है ऐसे भक्तों का, बंगाल में अब भी जीवित–जो पुरुष हैं लेकिन अपने को मानते हैं कृष्ण की पत्नी। रात स्त्री जैसा शृंगार करके, कृष्ण की मूर्ति को छाती से लगा कर सो जाते हैं। मगर बात में कुछ बेहूदापन लगता है। बात कुछ जमती नहीं। ऐसा ही बेहूदापन लगता है जैसे कि तुम, जहां जो नहीं होना चाहिए, उसे जबरदस्ती बिठाने की कोशिश करो, तो लगे।

पुरुष पुरुष है; उसके लिए स्त्री होना ढोंग ही होगा। भीतर तो वह जानेगा ही कि मैं पुरुष हूं। ऊपर से तुम स्त्री के वस्त्र भी पहन लो और कृष्ण की मूर्ति को हृदय से भी लगा लो–तब भी तुम भीतर के पुरुष को इतनी आसानी से खो न सकोगे। यह सुगम नहीं होगा।

स्त्रियां भी हुई हैं जिन्होंने ज्ञान के मार्ग से यात्रा की है, मगर वहां भी बात कुछ बेहूदी हो गई। जैसे ये पुरुष बेहूदे लगते हैं और थोड़ा सा विचार पैदा होता है कि ये क्या कर रहे हैं! ये पागल तो नहीं हैं!–ऐसे ही "लल्ला' कश्मीर में हुई, वह महावीर जैसे विचार में पड़ गई होगी; उसने वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न हो गई। लल्ला में भी थोड़ा सा कुछ अशोभन मालूम होता है। स्त्री अपने को छिपाती है। वह उसके लिए सहज है। वह उसकी गरिमा है। वह अपने को ऐसा उघाड़ती नहीं। ऐसा उघाड़ती है तो वेश्या हो जाती है।

मीरा को तर्क और बुद्धि से मत सुनना। मीरा का कुछ तर्क और बुद्धि से लेना-देना नहीं है। मीरा को भाव से सुनना, भक्ति से सुनना, श्रद्धा की आंख से देखना। हटा दो तर्क इत्यादि को, किनारे सरका कर रख दो। थोड़ी देर के लिए मीरा के साथ पागल हो जाओ। यह मस्तों की दुनिया है। यह प्रेमियों की दुनिया है। तो ही तुम समझ पाओगे, अन्यथा चूक जाओगे।

बहुत बार मौके आए जब मैं मीरा पर बोलता; लेकिन टालता गया। क्योंकि मीरा पर कुछ बोलना कठिन है। महावीर पर बोलना बहुत आसान है। बुद्ध पर बोलना बहुत आसान है। पतंजलि पर बोलना बहुत आसान है। मीरा पर बोलना बहुत कठिन है। क्योंकि यह बात बोलने की है ही नहीं; यह बात तो होने की है। यह भाव की है। मीरा गुनगुनाई जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या? मीरा गाई जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या? मीरा नाची जा सकती है, मीरा पर बोलो क्या?

इसलिए तुम से कहता हूं: आओ, इस गौरीशंकर पर चढ़ें–प्रेम के गौरीशंकर पर! इस ऊंचाई पर पंख फैलाएं! केवल वे ही उड़ पाने में समर्थ होंगे जो तर्क का बोझ एक तरफ हटा कर रख देंगे।

मीरा के पास तुम्हें देने को बहुत है। मीरा एक मेघ है, जो बरस जाए तो तुम तृप्त हो जाओ।

मीरा के जो वचन हम सुनेंगे, चर्चा करेंगे, गुनगुनाएंगे, डूबेंगे–इन वचनों में ऊपर से कोई तारतम्य नहीं है। ये तो भक्त की अनुभूतियां हैं। लेकिन भीतर बड़ा तारतम्य है। ऊपर-ऊपर कुछ न दिखाई पड़ेगा कि इनमें क्या संबंध है। मीरा ने कोई रामचरितमानस नहीं लिखा है कि शुरू किया बालकांड से और चले। ये तो भाव की अराजक अभिव्यक्तियां हैं। जब उठा भाव, गाया। जैसा उठा वैसा गाया। फिर यह लोगों के सामने भी गाई गई बातें नहीं हैं। ये तो उस परम प्यारे के सामने गाए गए गीत हैं। इन गीतों में सुधार भी नहीं किया गया है। कवि लिखता तो खूब सुधार-संशोधन करता है। ये तो कच्चे, कोरे, वैसे के वैसे जैसे खदान से हीरे निकलते हैं–तराशे नहीं गए–बेतराशे, अनगढ़!

मीरा को फिकर नहीं है आदमियों की कि इनमें, गीतों में भूल-चूक लगेगी, काव्य के नियम पूरे होंगे कि नहीं, मात्राएं ठीक बैठती हैं कि नहीं; इस सबका कोई हिसाब नहीं है।

तुम जब अपने प्रेमी के सामने गीत गाते हो तो यह सब थोड़े ही फिकर रखते हो! प्रेमी तुम्हारा परीक्षक थोड़े ही है! प्रेमी के सामने जब तुम गीत गाते हो, तो तुम यह थोड़े ही सोचते हो कि गीत भाषा की दृष्टि से, व्याकरण की दृष्टि से, मात्रा-छंद की दृष्टि से–पूरा है या नहीं! इतना ही देखते हो कि मेरा हृदय इस गीत में उंडल रहा है या नहीं! जब शराब से भरी हुई प्याली हो तो प्याली का आकार कौन देखता है–किस आकार की है!

तो तुम पीओगे तो समझोगे। और तारतम्य भी मिलेगा। लेकिन तारतम्य ऐसा रहेगा, ऊपर-ऊपर से दिखाई नहीं पड़ेगा! जैसे एक गुलाब की झाड़ी पर बहुत से गुलाब के फूल खिले हैं, ऊपर से तो कोई जुड़े दिखाई नहीं पड़ते। कोई छोटा है, कोई बड़ा है। और अगर माली कुशल रहा हो तो कोई सफेद है, और कोई लाल है, और कोई पीला है। सब अलग-अलग ढंग के खिले हैं। लेकिन सब एक ही जड़ से जुड़े हैं। वही जड़ तुम्हें दिखाई पड़ जाए तो तुम मीरा के साथ हो लोगे।

इसके पहले कि हम मीरा के शब्दों में उतरें, मीरा के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात: मीरा का कृष्ण से प्रेम मीरा की तरह शुरू नहीं हुआ! प्रेम का इतना अपूर्व भाव इस तरह शुरू हो भी नहीं सकता। यह कहानी पुरानी है। यह मीरा कृष्ण की पुरानी गोपियों में से एक है। मीरा ने खुद भी इसकी घोषणा की है, लेकिन पंडित तो मानते नहीं। क्योंकि इसके लिए इतिहास का कोई प्रमाण नहीं है। मीरा ने खुद भी कहा है कि कृष्ण के समय में मैं उनकी एक गोपी थी, ललिता मेरा नाम था। मगर पंडित तो इसको टाल जाते हैं; यह बात को ही कह देते हैं कि किंवदंती है, कथा-कहानी है। मैं ऐसा न कर सकूंगा। मैं पंडित नहीं हूं। और हजार पंडित कहते हों तो उनकी मैं दो कौड़ी की मानता हूं। मीरा खुद कहती है, उसे मैं स्वीकार करता हूं। सच-झूठ का मुझे हिसाब भी नहीं लगाना है। बात के इतिहास होने न होने से कोई प्रयोजन भी नहीं है। मीरा का वक्तव्य, मैं राजी हूं। मीरा जब खुद कहती है तो बात खतम हो गई। फिर किसी और को इसमें और प्रश्न उठाने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए। और जो इस तरह के प्रश्न उठाते हैं वे मीरा को समझ भी न पाएंगे।

मीरा ने कहा है: मैं ललिता थी। कृष्ण के साथ नाची, वृंदावन में कृष्ण के साथ गाई। यह प्रेम पुराना है–मीरा यही कह रही है–यह प्रेम नया नहीं है। और इसकी शुरुआत जिस ढंग से हुई, वह शुरुआत भी करती है साफ कि पंडित गलत होंगे, मीरा सही है। और पंडित कितने ही सही लगें, फिर भी सही नहीं होते, क्योंकि उनके सोचने का ढंग ही बुनियाद से गलत होता है। वे प्रमाण मांगते हैं। अब प्रमाण क्या? किसी अदालत की सील-मोहर लगी हुई कोई फाइल मौजूद करे मीरा, कि कृष्ण के समय में थी? कहां से प्रमाणपत्र लाए? गवाह जुटाए? अंतर्भाव पर्याप्त है। और उसका अंतर्भाव प्रमाण है।

मीरा छोटी थी, चार-पांच साल की रही होगी, तब एक साधु मीरा के घर मेहमान हुआ, और जब सुबह साधु ने उठ कर अपनी मूर्ति–कृष्ण की मूर्ति छुपाए था अपनी गुदड़ी में–निकाल कर जब उसकी पूजा की तो मीरा एकदम पागल हो गई। देजावुह हुआ। पूर्वभव का स्मरण आ गया। वह मूर्ति कुछ ऐसी थी कि चित्र पर चित्र खुलने लगे। वह मूर्ति जो थी–शुरुआत हो गई फिर से कहानी की; निमित्त बन गई। उससे चोट पड़ गई। कृष्ण की मूरत फिर याद आ गई। फिर वह सांवला चेहरा, वे बड़ी आंखें, वे मोरमुकुट में बंधे, वे बांसुरी बजाते कृष्ण! मीरा लौट गई हजारों साल पीछे अपनी स्मृति में। रोने लगी। साधु से मांगने लगी मूर्ति। लेकिन साधु को भी बड़ा लगाव था अपनी मूर्ति से; उसने मूर्ति देने से इनकार कर दिया। वह चला भी गया। मीरा ने खाना-पीना बंद दिया।

पंडितों के लिए यह प्रमाण नहीं होता कि इससे कुछ प्रमाण है देजावुह का। लेकिन मेरे लिए प्रमाण है। चार-पांच साल की बच्ची! हां, बच्चे कभी-कभी खिलौनों के लिए भी तरस जाते हैं, लेकिन घड़ी-दो घड़ी में भूल जाते हैं। दिन भर बीत गया, न उसने खाना खाया, न पानी पीया। उसकी आंखों से आंसू बहते रहे। वह रोती ही

रही। उसके घर के लोग भी हैरान हुए कि अब क्या करें? साधु तो गया भी, कहां उसे खोजें? और वह देगा, इसकी भी संभावना कम है।

और वह कृष्ण की मूरत जरूर ही बड़ी प्यारी थी, घर के लोगों को भी लगी थी। उन्होंने भी बहुत मूर्तियां देखी थीं, मगर उस मूर्ति में कुछ था जीवंत, कुछ था जागता हुआ, उस मूर्ति की तरंग ही और थी। जरूर किसी ने गढ़ी होगी प्रेम से; व्यवसाय के लिए नहीं। किसी ने गढ़ी होगी भाव से। किसी ने अपनी सारी प्रार्थना, अपनी सारी पूजा उसमें ढाल दी होगी। या किसी ने, जिसने कृष्ण को कभी देखा होगा, उसने गढ़ी होगी। मगर बात कुछ ऐसी थी, मूर्ति कुछ ऐसी थी कि मीरा भूल ही गई, इस जगत को भूल ही गई। वह तो उस मूर्ति को लेकर रहेगी, नहीं तो मर जाएगी। यह विरह की शुरुआत हुई चार-पांच साल की उम्र में!

रात उस साधु ने सपना देखा। दूर दूसरे गांव में जाकर सोया था। रात सपना आया: कृष्ण खड़े हैं। उन्होंने कहा कि मूर्ति जिसकी है उसको लौटा दे। तूने रख ली, बहुत दिन तक; यह अमानत थी; मगर यह तेरी नहीं है। अब तू नाहक मत ढो। तू वापस जा, मूर्ति उस लड़की को दे दे; जिसकी है उसको दे दे। उसकी थी, तेरी अमानत पूरी हो गई। तेरा काम पूरा हो गया। यहां तक तुझे पहुंचाना था, वहां तक पहुंचा दिया; अब खतम हो गई।

मूर्ति उसकी है जिसके हृदय में मूर्ति के लिए प्रेम है। और किसकी मूर्ति? साधु तो घबड़ा गया। कृष्ण तो कभी उसे दिखाई भी न पड़े थे। वर्षों से प्रार्थना-पूजा कर रहा था, वर्षों से इसी मूर्ति को लिए चलता था, फूल चढ़ाता था, घंटी बजाता था, कृष्ण कभी दिखाई न पड़े थे। वह तो बहुत घबड़ा गया। वह तो आधी रात भागा हुआ आया। आधी रात आकर जगाया और कहा: मुझे क्षमा करो, मुझसे भूल हो गई। इस छोटी सी लड़की के पैर पड़े, इसे मूर्ति देकर वापस हो गया।

यह जो चार-पांच साल की उम्र में घटना घटी, इससे फिर से दृश्य खुले; फिर प्रेम उमगा; फिर यात्रा शुरू हुई। यह मीरा के इस जीवन में कृष्ण के साथ पुनर्गठबंधन की शुरुआत है। मगर यह नाता पुराना था। नहीं तो बड़ा कठिन है। कृष्ण को देखा न हो, कृष्ण को जाना न हो, कृष्ण की सुगंध न ली हो, कृष्ण का हाथ पकड़ कर नाचे न होओ–तो लाख उपाय करो, तुम कृष्ण को कभी जीवंत अनुभव न कर सकोगे। इसलिए जीता सदगुरु ही सहयोगी होता है।

तुम भी कृष्ण की मूर्ति रख कर बैठ सकते हो, मगर तुम्हारे भीतर भाव का उद्रेक नहीं होगा। भाव के उद्रेक के लिए तुम्हारी अंतर-कथा में कोई संबंध चाहिए कृष्ण से; तुम्हारी अंतर-कथा में कोई समानांतर दशा चाहिए।

मीरा का भजन तुम भी गा सकते हो; लेकिन जब तक कृष्ण से तुम्हारा कुछ अंतर-नाता न हो, तब तक भजन ही रह जाएगा, जुड़ न पाओगे। हृदय–हृदय न मिलेगा, सेतु न बनेगा।

वह चार-पांच वर्ष की उम्र में घटी छोटी सी घटना–सांयोगिक घटना–और क्रांति हो गई। मीरा मस्त रहने लगी, जैसे एक शराब मिल गई। दो वर्ष बाद पड़ोस में किसी का विवाह हुआ, और यह सात-आठ साल की लड़की ने पूछा अपनी मां को: सबका विवाह होता है, मेरा कब होगा? और मेरा वर कौन है?

और मां ने तो ऐसे ही मजाक में कहा, क्योंकि वह उस वक्त भी कृष्ण की मूर्ति को छाती से लगाए खड़ी थी–कि तेरा वर कौन है?–यह गिरधर गोपाल! यह गिरधरलाल! यही तेरे वर हैं! और क्या चाहिए? यह तो मजाक में ही कहा था! मां को क्या पता था कि कभी-कभी मजाक में कही गई बात भी क्रांति हो जा सकती है। और क्रांति हो गई।

और कभी-कभी कितनी ही गंभीरता से तुमसे कहा जाए, कुछ भी नहीं होता, क्योंकि तुम्हारे भीतर कुछ छूता ही नहीं। हो तो छुए। बीज को पत्थर पर फेंक दोगे तो अंकुरित नहीं होता; ठीक भूमि मिल जाए तो

अंकुरित हो जाता है। वह ठीक भूमि थी। मां को भी पता नहीं था; सोचती थी कि बच्चे का खिलवाड़ है; कृष्ण एक खिलौना हैं। मिल गए हैं इसको। सुंदर मूर्ति है, माना। तो नाचती-गुनगुनाती रहती है–ठीक है–अपने उलझी रहती है; कुछ हर्जा भी नहीं है। मजाक में ही कहा था कि तेरे तो और कौन पति! ये गिरिधर गोपाल हैं! ये नंदलाल हैं! मगर उसका मन उसी दिन भर गया। यह बात हो गई। कभी-कभी संयोग महारंभ बन जाते हैं–महाप्रस्थान के पथ पर। उसने तो मान ही लिया। वह छोटा सा भोला-भाला मन! उसने मान लिया कि यही उसके पति हैं। फिर क्षण भर को भी यह बात डगमगाई नहीं। फिर क्षण भर को भी यह बात भूली नहीं।

असल में बचपन में अगर कोई भाव बैठ जाए तो बड़ा दूरगामी होता है। यह बात बैठ गई। उस दिन से उसने अपना सारा प्रेम, कृष्ण पर उंडेल दिया। जितना तुम प्रेम उंडेलोगे, उतने ही कृष्ण जीवित होते चले गए। पहले अकेली बात करती थी, फिर कृष्ण भी बात करने लगे। पहले अकेली डोलती थी, फिर कृष्ण भी डोलने लगे। यह नाता भक्त का और मूर्ति का न रहा; भक्त और भगवान का हो गया।

और इसके बाद कुछ घटनाएं घटीं, जो खयाल में ले लेनी चाहिए–जो महत्वपूर्ण हैं।

मीरा पर जिन लोगों ने किताबें लिखी हैं, वे सब लिखते हैं: दुर्भाग्य से मीरा की मां मर गई, जब वह बहुत छोटी थी। फिर उसके बाबा ने उसे पाला। फिर बाबा मर गए। फिर सत्रह-अठारह साल की उम्र में उसका विवाह किया गया। फिर उसके पति मर गए। फिर ससुर ने उसकी सम्हाल की। और फिर ससुर भी मर गए। फिर पिता उसकी देखभाल किए, फिर पिता भी मर गए। ऐसी पांच मृत्युएं हुईं। जब मीरा कोई बत्तीसत्तैंतीस साल की थी, तब तक उसके जीवन में जो भी महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, सभी मर गए। जिनको भी उसने चाहा था और प्रेम किया था, वे सब मर गए।

जो लोग मीरा पर किताबें लिखते हैं–वे सब लिखते हैं: दुर्भाग्य से। मैं ऐसा नहीं कह सकता। यह सौभाग्य से ही हुआ। वे लिखते हैं दुर्भाग्य से, क्योंकि मृत्यु को सभी लोग दुर्भाग्य मानते हैं। लेकिन यही तो मीरा के जन्म का कारण बना। जितना भी प्रेम कहीं था, वह सब सिकुड़ता गया। सारा प्रेम गोपाल पर उमड़ता गया। मां से लगाव था, मां चल बसी। उतना प्रेम जो मां से उलझा था, वह भी गोपाल के चरणों में रख दिया। फिर बाबा ने पाला, फिर बाबा चल बसे; उनसे प्रेम था, वह भी गोपाल के चरणों में रख दिया। ऐसे संसार छोटा होता गया, सिकुड़ता गया और परमात्मा बड़ा होता गया। तो मैं नहीं कह सकता दुर्भाग्य से; मैं तो कहूंगा सौभाग्य से; क्योंकि मृत्यु का मेरे लिए कोई ऐसा भाव नहीं है, मृत्यु के प्रति कि वह कोई आवश्यक रूप से अभिशाप है। सब तुम पर निर्भर है। मीरा ने उसका ठीक उपयोग कर लिया। जहां-जहां से प्रेम उखड़ता गया, एक-एक प्रेम-पात्र जाने लगा, वह अपने उस प्रेम को परमात्मा में चढ़ाने लगी।

अंतिम सूत्र था–पिता का रहना। पिता भी चल बसे। पति भी चल बसे, पिता भी चल बसे। पांच मृत्युएं हो गईं सतत। जगत से सारा संबंध टूट गया। उसने ठीक उपयोग कर लिया। जगत से टूटते हुए संबंधों को उसने जगत के प्रति वैराग्य बना लिया। और जगत से जो प्रेम मुक्त हो गया, उसको परमात्मा के चरणों में चढ़ा दिया। वह कृष्ण के राग में डूब गई।

और इन मृत्युओं ने एक और सौभाग्य का काम किया, कि इन्होंने एक बात दिखा दी कि इस जगत में सब क्षणभंगुर है; अगर प्यारा खोजना हो तो शाश्वत में खोजो। यहां कुछ अपना नहीं है। यहां भरमो मत, अपने को भरमाओ मत! यहां सब छूट जाने वाला है। यहां मृत्यु ही मृत्यु फैली है। यहां मरघट है। यहां बसने के इरादे मत करो। यहां कोई कभी बसा नहीं।

अपनी आंख से देखा सबको जाते उसने। बत्तीसत्तैंतीस साल की उम्र कोई बड़ी उम्र नहीं। जवान थी। जवानी में इतनी मौत घटीं कि मौत का कांटा उसे ठीक-ठीक साफ-साफ दिखाई पड़ गया कि जीवन क्षणभंगुर है। और तब उसका मन यहां से विरक्त हो गया। जो यहां से विरक्त है, वही परमात्मा में अनुरक्त हो सकता है।

तुम दोनों राग एक साथ नहीं पाल सकते हो। तुम दो नावों पर एक साथ सवार नहीं हो सकते हो।

तो जब मैंने तुमसे कहा, "आओ, प्रेम की झील में नौका-विहार को चलें'–तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं: अब तुम अपनी संसार की नाव से उतरो, अब परमात्मा को नाव बनाओ। "आओ, प्रेम के गौरीशंकर पर चढ़ें'–तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं: अपनी अंधेरी घाटियों से लगाव छोड़ो; वहां मृत्यु के सिवाय और कोई भी नहीं है।

जिन्हें तुमने घर समझा है, वह मरघट है। जिन्हें तुमने अपना समझा है, साथ हो गया है दो क्षण का राह पर–सब अजनबी हैं। आज नहीं कल सब छुट जाएंगे। तुम अकेले आए हो और अकेले जाओगे। और तुम अकेले हो। इस जगत में सिर्फ एक ही संबंध बन सकता है–और वह संबंध परमात्मा से है; शेष सारे संबंध बनते हैं और मिट जाते हैं। सुख तो कुछ ज्यादा नहीं लाते, दुख बहुत लाते हैं। सुख की तो केवल आशा रहती है; मिलता कभी नहीं है। अनुभव तो दुख ही दुख का होता है।

ये जो पांच मृत्युएं थीं, ये पांच सीढ़ियां बन गईं। और एक-एक मृत्यु मीरा को संसार से विमुख करती गई और कृष्ण के सन्मुख करती गई। इधर पीठ हो गई संसार की तरफ–कृष्ण की तरफ मुंह हो गया। धीरे-धीरे, पहले तो मीरा घर में ही नाचती थी–अपने कृष्ण की प्रतिमा पर; फिर बाढ़ की तरह उठने लगा प्रेम, फिर घर उसे नहीं समा सका। फिर गांव के मंदिरों में, साधु-सत्संगों में, वहां भी नाचने लगी। फिर प्रेम इतना बाढ़ की तरह आना शुरू हुआ कि उसे होश-हवास न रहा। वह मगन हो गई, वह तल्लीन हो गई, वह कृष्णमय हो गई। स्वभावतः राजघराने की महिला थी, प्रतिष्ठित परिवार से थी। परिवार को अड़चन आई। परिवार को अड़चन सदा आ जाती है। समाज में हजार तरह की बातें चलने लगीं, क्योंकि यह लोकलाज के बाहर थी बात।

तुम सोच सकते हो, राजस्थान पांच सौ साल पहले–जहां घूंघट के बाहर स्त्रियां नहीं आती थीं; जिनका चेहरा कभी लोग नहीं देखते थे। फिर राजघराने की तो और कठिन थी बात। और वह रास्तों पर नाचने लगी। साधारणजनों के बीच नाचने लगी। यद्यपि वह नाच परमात्मा के लिए था, फिर भी घर के लोगों को तो "नाच' नाच था; उनको तो कुछ फर्क नहीं था। फिर उसके निकटतम जो लोग थे वे जा चुके थे: उसका देवर गद्दी पर था। जहां-जहां मीरा उल्लेख करेगी कि राणा ने जहर भेजा, कि राणा ने सांप की पिटारी भेजी, कि राणा ने सेज पर कांटे बिछवा दिए–उस राणा से याद रखना, उसके देवर की तरफ इशारा है। उसके पति तो चल बसे थे।

उसके देवर थे विक्रमाजीत सिंह। वह क्रोधी किस्म का युवक था। दुष्ट प्रकृति का युवक था। और उसकी यह बरदाश्त के बाहर था। और उसे मीरा की प्रतिष्ठा भी बरदाश्त के बाहर थी। मीरा इतनी प्रतिष्ठित हो रही थी, दूर-दूर से लोग आने लगे थे। साधारणजन तो आते थे ही उसके दर्शन को; संत, साधु, ख्याति-उपलब्ध लोग दूर-दूर से मीरा की खबर सुन कर आने लगे थे। वह सुगंध उड़ने लगी थी। वह सुगंध कस्तूरी की तरह थी। जिनको भी नासापुटों में थोड़ा अनुभव था कस्तूरी की गंध का, वे चल पड़े थे।

यह बड़ी हैरानी की बात है। देश के कोने-कोने से लोग आ रहे थे, लेकिन परिवार के अंधे लोग न देख पाए। असल में इन लोगों का आना उन्हें और अड़चन का कारण हो गया, मीरा की प्रतिष्ठा उनके अहंकार को चोट करने लगी। जो राणा गद्दी पर था, वह सोचता था कि मुझसे भी ऊपर कोई मेरे परिवार में हो, यह बरदाश्त के बाहर है। फिर हजार बहाने मिल गए। और बहाने सब तर्कयुक्त थे–उनमें कभी भूल नहीं खोजी सकती–कि यह साधारणजनों में मिलने लगी है; घूंघट उघाड़ दिया है; रास्ते पर नाचती है; नाच में कभी वस्त्रों का भी ध्यान नहीं रह जाता। यह अशोभन है। यह राजघर की महिला को शुभ नहीं है।

लेकिन जो कहानियां हैं वे खयाल में लेना। जहर भेजा और मीरा उसे कृष्ण का नाम लेकर पी गई। और कहते हैं, जहर अमृत हो गया! हो ही जाना चाहिए। होना ही पड़ेगा। इतने प्रेम से, इतने स्वागत से अगर कोई जहर भी पी ले तो अमृत हो ही जाएगा। और अगर तुम क्रोध से, हिंसा से, घृणा से, वैमनस्य से अमृत भी पीओ तो जहर हो जाएगा।

खयाल रखना, ऐसा इतिहास में हुआ या नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है। मैं तो इसके भीतर की मनोवैज्ञानिक घटना को तुमसे कह देना चाहता हूं क्योंकि उसी का मूल्य है। अगर तुम्हारा पात्र भीतर से बिलकुल शुद्ध है, निर्मल है, निर्दोष है, तो जहर भी तुम्हारे पात्र में जाकर निर्मल और निर्दोष हो जाएगा। और अगर तुम्हारा पात्र गंदा है, कीड़े-मकोड़ों से भरा है और हजारों साल और हजारों जिंदगी की गंदगी इकट्ठी है–तो अमृत भी डालोगे तो जहर हो जाएगा। सब कुछ तुम्हारी पात्रता पर निर्भर है। अंततः निर्णायक यह बात नहीं है कि जहर है या अमृत, अंततः निर्णायक बात यही है कि तुम्हारे भीतर स्थिति कैसी है। तुम्हारे भीतर जो है, वही अंततः निर्णायक होता है।

मीरा ने देखा ही नहीं कि जहर है। सोचा ही नहीं कि जहर है। राणा ने भेजा है, तो जो मिलता है, प्रभु ही भेजने वाला है। राणा के पीछे भी वही भेजने वाला है। उसके अतिरिक्त तो कोई भी नहीं है। तो अमृत ही होगा। वह अमृत मान कर पी गई।

मीरा का रहना गांव में मुश्किल हो गया, तो उसने राजस्थान छोड़ दिया। वह वृंदावन चली गई। अपने प्यारे की बस्ती में चलें–उसने सोचा। कृष्ण के गांव चली गई। लेकिन वहां भी झंझटें शुरू हो गईं। क्योंकि कृष्ण तो अब वहां नहीं थे। कृष्ण के गांव पर पंडितों का कब्जा था–ब्राह्मण, पंडित-पुरोहित।

बड़ी प्यारी घटना है। जब मीरा वृंदावन के सबसे प्रतिष्ठित मंदिर में पहुंची तो उसे दरवाजे पर रोकने की कोशिश की गई, क्योंकि उस मंदिर में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था, क्योंकि उस मंदिर का जो महंत था, वह स्त्रियां नहीं देखता था; वह कहता था: ब्रह्मचारी को स्त्री नहीं देखनी चाहिए। तो वह स्त्रियां नहीं देखता था। मीरा स्त्री थी। तो रोकने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन जो लोग रोकने द्वार पर खड़े थे, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। जब मीरा नाचती हुई आई, अपने हाथ में अपना एकतारा लिए बजाती हुई आई, और जब उसके पीछे भक्तों का हुजूम आया और शराब छलकती चारों तरफ और सब मदमस्त–उस मस्ती में वे जो द्वारपाल खड़े थे, वे भी ठिठक कर खड़े हो गए। वे भूल ही गए कि रोकना है। तब तक तो मीरा भीतर प्रविष्ट हो गई। हवा की लहर थी एक–भीतर प्रविष्ट हो गई, पहुंच गई बीच मंदिर में। पुजारी तो घबड़ा गया। पुजारी पूजा कर रहा था कृष्ण की। उसके हाथ से थाल गिर गया। उसने वर्षों से स्त्री नहीं देखी थी। इस मंदिर में स्त्री का निषेध था। यह स्त्री यहां भीतर कैसे आ गई?

अब तुम थोड़ा सोचना। द्वार पर खड़े द्वारपाल भी डूब गए भाव में, पुजारी न डूब सका! नहीं, पुजारी इस जगत में सबसे ज्यादा अंधे लोग हैं। और पंडितों से ज्यादा जड़बुद्धि खोजने कठिन हैं। द्वार पर खड़े द्वारपाल भी डूब गए इस रस में। यह जो मदमाती, यह जो अलमस्त मीरा आई, यह जो लहर आई–इसमें वे भी भूल गए–क्षण भर को भूल ही गए कि हमारा काम क्या है। याद आई होगी, तब तक तो मीरा भीतर जा चुकी थी। वह तो बिजली की कौंध थी। तब तक तो एकतारा उसका भीतर बज रहा था, भीड़ भीतर चली गई थी। जब तक उन्हें होश आया तब तक तो बात चूक गई थी। लेकिन पंडित नहीं डूबा। कृष्ण के सामने मीरा आकर नाच रही है, लेकिन पंडित नहीं डूबा।

उसने कहा: "ऐ औरत! तुझे समझ है कि इस मंदिर में स्त्री का निषेध है?'

मीरा ने सुना। मीरा ने कहा: "मैं तो सोचती थी, कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष है नहीं। तो तुम भी पुरुष हो? मैं तो कृष्ण को ही बस पुरुष मानती हूं, और तो सारा जगत उनकी गोपी है; उनके ही साथ रास चल रहा है। तो तुम भी पुरुष हो? मैंने सोचा नहीं था कि दो पुरुष हैं। तो तुम प्रतियोगी हो?'

वह तो घबड़ा गया। पंडित तो समझा नहीं कि अब क्या उत्तर दें! पंडितों के पास बंधे हुए प्रश्नों के उत्तर होते हैं। लेकिन यह प्रश्न तो कभी इस तरह उठा ही नहीं था। किसी ने पूछा ही नहीं था, यह तो कभी किसी ने मीरा के पहले कहा ही नहीं था कि दूसरा भी कोई पुरुष है, यह तो हमने सुना ही नहीं। तुम भी बड़ी अजीब बात कर रहे हो! तुमको यह वहम कहां से हो गया? एक कृष्ण ही पुरुष हैं, बाकी तो सब उसकी प्रेयसियां हैं।

लेकिन अड़चनें शुरू हो गईं। इस घटना के बाद मीरा को वृंदावन में नहीं टिकने दिया गया। संतों के साथ हमने सदा दर्ुव्यवहार किया है। मर जाने पर हम पूजते हैं; जीवित हम दर्ुव्यवहार करते हैं। मीरा को वृंदावन भी छोड़ देना पड़ा। फिर वह द्वारिका चली गई।

वर्षों के बाद राजस्थान की राजनीति बदली, राजा बदला, राणा सांगा का सबसे छोटा बेटा राजा उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह राणा सांगा का बेटा था और राणा प्रताप का पिता। उदयसिंह को बड़ा भाव था मीरा के प्रति। उसने अनेक संदेशवाहक भेजे कि मीरा को वापस लिवा लाओ। यह हमारा अपमान है। यह राजस्थान का अपमान है कि मीरा गांव-गांव भटके, यहां-वहां जाए। यह लांछन हम पर सदा रहेगा। उसे लिवा लाओ। वह वापस लौट आए। हम भूल-चूकों के लिए क्षमा चाहते हैं। जो अतीत में हुआ, हुआ।

गए लोग, पंडितों को भेजा, पुरोहितों को भेजा, समझाने-बुझाने; लेकिन मीरा सदा समझा कर कह देती कि अब कहां आना-जाना! अब इस प्राण-प्यारे के मंदिर को छोड़ कर कहां जाएं!

वह रणछोड़दासजी के मंदिर में द्वारिका में मस्त थी।

फिर तो उदयसिंह ने बहुत कोशिश की, एक सौ आदमियों का जत्था भेजा, और कहा कि किसी भी तरह ले आना, न आए तो धरना दे देना; कहना कि हम उपवास करेंगे। वहीं मंदिर पर बैठ जाना।

और उन्होंने धरना दे दिया। उन्होंने कहा कि चलना ही होगा, नहीं तो हम यहीं मर जाएंगे।

तो मीरा ने कहा: फिर ऐसा है, चलना ही होगा तो मैं जाकर अपने प्यारे को पूछ लूं। उनकी बिना आज्ञा के तो न जा सकूंगी। तो रणछोड़दासजी को पूछ लूं!

वह भीतर गई। और कथा बड़ी प्यारी है और बड़ी अदभुत और बड़ी बहुमूल्य! वह भीतर गई और कहते हैं, फिर बाहर नहीं लौटी! कृष्ण की मूर्ति में समा गई!

यह भी ऐतिहासिक तो नहीं हो सकती बात। लेकिन होनी चाहिए, क्योंकि अगर मीरा कृष्ण की मूर्ति में न समा सके तो फिर कौन समाएगा! और कृष्ण को अपने में इतना समाया, कृष्ण इतना भी न करेंगे कि उसे अपने में समा लें! तब तो फिर भक्ति का सारा गणित ही टूट जाएगा। फिर तो भक्त का भरोसा ही टूट जाएगा। मीरा ने कृष्ण को इतना अपने में समाया, अब कुछ कृष्ण का भी दायित्व है! वह आखिरी घड़ी आ गई, महासमाधि की! मीरा ने कहा होगा: या तो अपने में समा लो मुझे, या मेरे साथ चल पड़ो, क्योंकि अब ये लोग भूखे बैठे हैं, अब मुझे जाना ही पडेगा।

वह आखिरी घड़ी आ गई, जब भक्त भगवान हो जाता है। यही प्रतीक है उस कथा में कि मीरा फिर नहीं पाई गई। मीरा कृष्ण की मूर्ति में समा गई। अंततः भक्त भगवान में समा ही जाता है।

–ओशो

पद धूंधरू बांध

संत चरण दास

चरणदास उन्नीस वर्ष के थे, तब यह तड़प उठी। बड़ी नई उम्र में तड़प उठी।

मेरे पास लोग आते है, वे पूछते हैः क्यों आप युवकों को भी संन्यास दे देते हैं? संन्यास तो वृद्धों के लिए है। शास्त्र तो कहते हैं पचहत्तर साल के बाद। तो शास्त्र बेईमानों ने लिखे होंगे, जो संन्यास के खिलाफ हैं। तो शास्त्र उन्होंने लिखें होंगे, जो संसार के पक्ष में हैं। क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर तो पचहत्तर साल के बाद तुम बचोगे ही नहीं। संन्यास कभी होगा ही नहीं; मौत ही होगी। और इस दुनिया में जहां जवान को मौत आ जाती हो, वहां संन्यास को पचहत्तर साल तक कैसे टाला जा सकता है?

इस दुनिया में जहां बच्चे भी मर जाते हों, इस दुनिया में जहां जन्म के बाद बस, एक ही बात निश्चित हैमृत्यु, वहां संन्यास को एक क्षण भी कैसे टाला जा सकता है? इस दुनिया में जो मौत से घिरी है जिस दिन तुम्हें मौत दिख जाएगी, जिस दिन इससे पहचान हो जाएगी, जिस दिन तुम देख लोगेः सब राख ही राख है, उसी दिन संन्यास घटेगा। फिर क्षणभर भी रुकना संभव नहीं। फिर स्थगित नहीं किया जा सकता।

उन्नीस वर्ष की उम्र में चरणदास चले गए जंगलों में रोते, चीखते, पुकारते। सब कुछ दांव पर लगा दिया। और एक अपूर्व घटना घटती है। जब तुम परमात्मा को खोजने निकलते हो, तब गुरु मिलता है। निकलते तुम परमात्मा को खोजने, मिलता गुरु है। क्योंकि परमात्मा का सीधा साक्षात नहीं हो सकता। तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच भूमिका का बड़ा अंतर है। गुरु कहां तुम, कहां परमात्मा? कहां तुम बाहर-बाहर, कहां परमात्मा भीतर-भीतर इन दोनों के बीच कोई सेतु नहीं, कोई संबंध नहीं।

जो भी परमात्मा को खोजने गया है, उसे गुरु मिला है। वह परमात्मा तुम्हारे प्रति सदय हुआ, तुम्हारे भाग्य खुले इसकी खबर है, इसकी सूचना है।

मांगो परमात्मा कोमिलतागुरू है। और गुरु मिल जाए, तो समझो कि तुम्हारी प्रार्थना सुनी गई; पहुंची। अब तुम अकेले नहीं हो। सेतु फैला; दोनों किनारे जुड़े।

तुम इस किनारे हो, परमात्मा उस किनारे है; गुरु सेतु हैजो दोनों किनारों को जोड़ देता है। गुरु कुछ तुम जैसा, कुछ परमात्मा जैसा। एक हाथ तुम्हारे हाथ में, एक हाथ परमात्मा के हाथ में। अब इस सहारे तुम जा सकोगे। अब यह जो झूलता सा पुल है, यह जो लक्षण झूला है इससे तुम जा सकोगे।

दूसरा किनारा तो शायद अभी दिखाई भी नहीं पड़ता, दूसरा किनारा बहुत दूर है और दूसरे किनारे को देखनेवालीआंखे भी अभी तुम्हारी जन्मी नहीं। तुम्हारी आंखे बहुत धुंधली हैं इस संसार की धुल से।

यह जो राख ही राख है, यह राख सब तरफ उड़ रही है; इसने तुम्हारी आंखों को भी धूमिल किया है और तुम्हारा दर्पण भी राख से दब गया है। और जन्मों-जन्मों से राख पड़ रही है। तुम भूल ही गए कि तुम्हारे भीतर कहीं दर्पण भी है। ऐसी अवस्था में तुम पुकारोगे परमात्मा को, मिलेगा गुरु। यह थोड़ा समझना।

वास्तविक खोजी परमात्मा को खोजने जाता है और गुरु के चरण मिलते हैं। अगर गुरु के चरण मिल जायें, तो समझ लेनाः तुम्हारी अरजी स्वीकार हो गई; तुम्हारी खबर पहुंच गई। उस किनारे से जुड़ा हुआ कोई मिल गया।

चरणदास के गुरु थे एक अपूर्व संन्यासी सुकदेवदास। बड़ी मीठी कथा है। चरणदास को जब सुकदेवदास मिले...। तो चरणदास ने कहीं भी नहीं कहा है अपने वचनों में, कि यह कोई और थे। उन्होंने तो यही कहा है कि व्यास के बेटे सुकदेवमुनि थे।

इस पर बड़ी अड़चन है, क्योंकि चरणदास और व्यास के बीच हजारों साल का फासला है। पंडित इससे राजी नहीं हैं; शास्त्रज्ञ इससे राजी नहीं हैं खोज-बीन करने वाले, राख के ढेर में ही तलाश करने वाले इससे राजी नहीं हैं।

वियोगी हरि ने यह लिखा हैः खोज के आधार पर यह पाया जाता है कि अपने गुरु को व्यास-पुत्र सुकदेव मुनि कहना तो केवल श्रध्दा-भावना की बात है। असल में उनके गुरु सुकदेवदास नाम के एक महात्मा थे, जो मुजफ्फरनगर के पास सूकरताल गांव में रहते थे।

वियोगी हरि का यह कहना कि अपने गुरु को व्यास-पुत्र सुकदेवमुनि कहना तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है...। केवल श्रद्धा-भावना की! जैसे श्रद्धा-भावना का कोई मूल्य नहीं है। जैसे तुम्हारे मुरदा तथ्य श्रद्धा-भावना से ज्यादा मूल्यवान हैं। जैसे सूकरताल गांव और मुजफ्फरनगर बड़ी मूल्यवान बातें हैं।

खोज के आधार पर...। पंडित इसी तरह की खोज में लगे रहते हैं। पंडित सार को तो पकड़ ही नहीं पाता, असार की खोज करता है।

श्रद्धा-भावना को केवल कहना! केवल श्रद्धा-भावना की बात है–अच्छे शब्दों में कहना है कि यह सब तो बातचीत है; यह सचाई नहीं है। संतों को समझने का यह रास्ता नहीं, यह ढंग नहीं।

संत इतिहास के हिस्से कम, इतिहास के किनारे-किनारे जो शाश्वत की धारा है, उसके हिस्से ज्यादा हैं।

अगर चरणदास ने कहा है कि मेरे गुरु व्यास-पुत्र सुकदेव थे, तो इस केवल श्रध्दा-भावना की बात कह कर मत टाल देना। सच तो यह है कि जब भी तुम्हें गुरु मिलेगा, तभी परम गुरु मिलेगा। गुरु मिला कि परम गुरु ही मिलता है। न मिले, तो बात अलग। गुरु जब मिलता है, तो वह परम गुरु की प्रतिमा है व्यास-पुत्र सुकदेव तो सिर्फ प्रतिभा हैं परम गुरु की।

जब भी किसी ने गुरु को पाया, तो उसने अपने गुरु में सारे गुरुओं को पा लिया। एक गुरु में जैसे सारे गुरुओं का सिलसिला,शृंखला उपलब्ध हो गई।

यह केवल श्रद्धा-भावना की बात नहीं है। यह जीवन को देखने का एक और ही ढंग है। श्रद्धा तो इसमें है, लेकिन श्रध्दा, कल्पना की पर्यायवाची नहीं है। भावना तो इसमें है, लेकिन भावना का मतलब बे-पर की बातें नहीं होता। यह जीवन को देखने का और ढंग है।

जैसे कोई गुलाब के फूल को देखे और गुलाब के फूल के सौंदर्य से अभिभूत हो जाए और नाच उठे। और तुम वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति उसके पास जा कर कहो कि यह क्या कर रहे हो? कहां है सौंदर्य? हां, फूल है सच, और फूल में पदार्थ भी हैसच; और ले चलते हैं इसे विज्ञान की प्रयोगशाला में और जांच-परख कर लेंगे; खंड खंड फूल को तोड़ कर देख लेंगे। और तुम भी पाओगेः और सब पाया जाता है, सौंदर्य नहीं पाया जाता। सौंदर्य तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है।

बात सच है। तथ्य के जगत् में यही सच हैः सौंदर्य तो श्रद्धा-भावना की बात है। लेकिन सौंदर्य के बिना फूल का अर्थ ही खो जाता है। तब उसमें कुछ रासायानिकद्रव्य मिलेंगेः जल मिलेगा, मिट्टी मिलेगी, रंग मिलेंगे–सब मिल जाएगा, लेकिन जो मिलने योग्य था, वह तो खो ही गया।

यह ऐसे है, जैसे कोई जीवित बच्चे को काट ले खंड-खंड और खोजने चले कि क्या था इसके भीतर, जो इसे चलाता था, जो इसे जिलाए था? कौन था जो श्वास लेता था? हड्डी-मांस-मज्जा मिलेगी; सब कुछ मिलेगा, लेकिन जो चलाता था, वह नहीं मिलेगा। इसे पाने का यह ढंग नहीं। वह अदृश्य तुम्हारी दृश्य की अतिशय पकड़ में खो जाएगा।

चरणदास जब कहते हैं कि मेरे गुरु व्यास-पुत्र सुकदेव थे, तो स्वभावतः पंडित हैरान होता है, क्योंकि इन दोनों के बीच समय का बड़ा फासला है, हजारों साल का फासला है। सुकदेव मिल कहां जायेंगेचरणदास को? मुजफ्फरपुर के पास सूकरताल गांव के निकट के जंगल में मिल कहां जायेंगेसुकदेवदास?

तो पंडित तथ्य को खोजता है। लेकिन जब चरणदास को गुरु मिले होंगे, तो चरणदास के लिए गुरु का जो औपचारिक रुप है, वह व्यर्थ हो गया। देह अलग होगी; रुप-रंग अलग होगा; लेकिन वह जो अंतर्निहित तत्व है, वह एक है।

सभी गुरूओं में एक ही परम गुरू होता है। इसलिए भारत की यह बात कई लोगों को समझ में नहीं आती। यहां कई किताबे हैं, जो सभी व्यासदेव ने रचीं! दो किताबों के बीच हजारों साल का फासला हो सकता है; दोनों व्यासदेव ने रंची। एक ही आदमी रचता इतनी किताबें?

तो वैज्ञानिक बुद्धि कहती है कि नहीं; या तो बहुत व्यासदेव नाम के आदमी हुआ और या फिर लोगों ने व्यासदेव के नाम से किताबें रच दीं। यह वस्तुतहव्यासदेव की रची नहीं हो सकतीं। लेकिन उन्हें पता नहीं हैं।

जो भी सत्य को उपलब्ध होता है, उसी को हम व्यासदेव कहते हैं। इसलिए तो जो भी कोई सत्य की प्रतिष्ठा से बोलता है, उसकी पीठ को व्यास-पीठ कहते हैं। वहां बैठते ही, उस पीठ पर बैठते ही, उस प्रतिष्ठा पर बैठते ही उसका जो नाम-धाम थाखो गया; उसका जो औपचारिक पता-ठिकाना था–खो गया। समय की धारा में उसके जो चिन्ह थे, वे खो गए। वह शाश्वत से जुड़ गया। शाश्वत गुरु का नाम है व्यासदेव।

चरणदास को उन अपने गुरु की आंखों में शाश्वत गुरु के दर्शन हुए–इतनी ही बात है।

यह श्रद्धा-भावना की बात नहीं है; यह सत्य ही है; लेकिन यह सत्य किसी दुसरे तल का है। यह सत्य वस्तुओं के तल का नहीं है; यह सत्य अनुभूतियों के तल का है।

चरणदास को गुरु मिले, उसके पहले चरणदास का नाम रणजीतसिंह था। गुरु ने नाम बदल दिया। दीक्षा दे दी। संन्यास में प्रवेश दिलवा दिया।

नाम की बदलाहट बड़ी महत्वपूर्ण है। रणजीतसिंहआक्रमक, हिंसात्मक, महत्वाकांक्षा से भरा हुआ नाम था। नाम दियाचरणदास। एकदम उलटा कर दिया! कहां रणजीतसिंह और कहां चरणदास! सारी जीवन-दिशा बदल दी!

रणजीतसिंह में हैः आक्रमण, विजय की आकांक्षा, हिसंक महत्वाकांक्षा! इसी हिंसक महत्वाकांक्षा के कारण तो सिंह; रणजीतयुद्ध को जीतने चला हुआ व्यक्ति; विजय की यात्रा। एकदम बदल दिया। प्रत्याहार किया। महावीर जिसको कहते हैंप्रतिक्रमण किया। जो बाहर जाती थी उर्जा, भीतर लौटा दी! कहां जाएगा बाहर? जीत बाहर नहीं है। जीत भीतर है।

और भीतर की जीत का अपूर्व नियम है कि जो हारने को राजी हो, वही जीतता। जो जीतने चला, वह हार जाता है। यहां जो संकल्प करेगा वह मिटेगा। और यहां जो समर्पण करता है, सभी कुछ उसे उपलब्ध हो जाता है।

चरणदास यानी समर्पण। रणजीतसिंह यानी संकल्प। रणजीतसिंह यानी दूसरों पर विजय की घोषणा करनी है। और चरणदास यानी अब किसी पर विजय की घोषणा नहीं करनी है। झुक गए, प्रभु के चरण में झुक गए। और जो झुका है, उसने पाया है कि सभी चरण उसके हैं, तो सभी चरणों में झुक गए।

संन्यास के क्षण में नाम का रूपांतरण सिर्फ नाम का रूपांतरण नहीं है। गुरु इंगित देता है, इशारा देता है, आगे की यात्रा की सारी कथा कह देता है। इस छोटे से फर्क से सारा फर्क हो गया। इसमें सारा शास्त्र आ गया, सारी साधना, सारा जीवन अनुशासन, सारी जीवन की शैली बदल दी।

चरणदास के पहले मैं उनकी दो शिष्याओं पर बोला–सहजो और दया पर। तुम थोड़े चैकोगे। शिष्यों पर पहले बोला, फिर गुरु पर बोलता हूं। लेकिन चैंकने की बात नहीं है।

कहते हैं वृक्ष फल से जाना जाता है। सहजी और दया दो फल लग चरणदास पर। उनका रस तुमने पिया–चखा। उनके रस के बाद ही अब तुम इस वृक्ष-मूल में उतर सकोगे। उस पहचान के बाद ही चरणदास में जाना आसान होगा।

सहजो ने अपने गुरु के संबंध में यह गीत गाया हैः

सखी री आज धन धरती धन देसा।

धन देहरा मेवातमंझारे हरि आए जन भेसा

कि आज का दिन धन्य है, कि आज धरती धन्य है, कि आज देश धन्य है।

सखी री आज धन धरती धन देसा।

धन देहरा मेवातमंझारे हरि आए जन भेसा

मेवात के दोहरा नाम के छोटे से गांव में हरि आए जन भेसा–चरणदास में हरि का अवतरण हुआ है।

धन भादों धन तीज सुधी है, धन मंगलकारी।

धन धूसर कुल बालक जनमई, फुल्लित भए नर नारी

धन-धन माई कुंजी रानी, धन मुरलीधर ताता।

अगले दत्तव अब फल पाए, जिनके सुत भयो ज्ञाता

कहा कि जिनके घर में एक जानने वाला पैदा हो गया है, उस घर में पहले जितने पैदा हुए थे, वे भी सब धन्य हो गए।

एक फल भी अमृत का लग गया, तो उस फल के पीछे का पूरा सिलसिला धन्य हो गया। पूर्णाहुति आ गई; परम शिखर आ गया।

अगले दत्तव अब फल पाए। सदियों-सदियों से यह कुल चेष्टा में रत रहा होगा। कितनों ने आकाक्षाएं बांधी होंगी। कितनों ने पाना चाहा होगा। कितने असफल बिना पाए विदा हो गए होंगे। लेकिन यह सब ने जो बीज बोए थे, प्रभु को पाने की आकांक्षा के, वे इस चरणदास से पूरे हुए। जिनके सुत भयो ज्ञाता...जिनको घर एक जानने वाला बेटा जनम गया।

सखी री आज धन धरती धन देसा।

धन देहरा मेवातमंझारे हरि आए जन भेसा

सहजो और दया का रस तुमने खूब लिया। वह रस चरणदास की प्रसादी थी। वह रस चरणदास के संपर्क में ही उन्हें लगा। वह रंग, वह ढंग, चरणदास की सोहबत का फल था। सत्संग उन्हें छू गया। और ऐसा दो के साथ ही नहीं हुआ। चरणदास के पास सैकड़ों लोग परम अवस्था को उपलब्ध हुए। चरणदास के चरणों में हजारों लोगों ने प्रभु का स्पर्श पाया, प्रभु का स्वाद पाया।

जंगल में भटकते थे। गुरु का तो कोई ख्याल भी न था। आस तो प्रभु की थी; प्यास तो प्रभु की थी; गुरु का तो ख्याल भी न था; गुरु की तो कोई खोज भी न चल रही थी।

अकसर ऐसा ही होता है। गुरु को खोजने कौन निकलता है? लोग तो प्रभु को ही खोजने निकलते हैं; गुरु मिलता हैयह दूसरी बात है।

खोज गुरु की कोई नहीं करता। गुरु की खोज तुम करोगे भी कैसे? खोज तो आत्यंतिक की है, अंतिम की है। खोज तो परमात्मा की है। लेकिन उसी खोज में धक्के खाते-खाते, रोते-रोते, चीखते-चिल्लाते, प्रार्थना-पूजा करते, ध्यान-प्रेम में रमते एक दिन गुरु से मिलना हो जाता है।

जाना तो उस पार है। अनेक-अनेक तरह से तुम उस पार जाने की चेष्टा करते हो, तब धीरे-धीरे तुम्हें समझ में आता है कि उस पार ऐसे न जा सकोगे; माझी की जरूरत पड़ेगी, नाव की जरूरत पड़ेगी। मगर जिसने बहुत खोज की उस पार जाने की, उसे माझी मिल जाता है।

यह जगत् तुम्हारी हा खोज में सहयोगी है। इस सत्य को तुम हृदय में सम्हाल कर रख लेना।

तुम गलत खोजते हो, तो भी यह जगत सहयोगी है। तुम पाप करने जाते हो, तो भी यह अस्तित्व तुम्हारा साथ देता है। इस अस्तित्व की अनुकंपा तुम पर अपार है और बेशर्त है।

तुम बुरा भी करने जाते हो, तो अस्तित्व रोक नहीं लेता। तुम बुरा भी करने जाते हो, तो ऐसा नहीं होता कि सांस चलनी बंद हो जाय; कि परमात्मा तुम्हारे जीवन को छीन ले; कि पैर न उठें; कि लकवा लग जाए; कि तुम गिर पड़ो।

नहीं, तुम बुरा करने जाते हो, तो भी परमात्मा तुम्हारे भीतर श्वास लेता ही रहता है। तुमसे कहे जाता है भीतर-भीतर; बड़े मंदिम स्वर हैं उसके; फुस-फुसाए जाता है कि रूको, मत करो। लेकिन तुम्हारे जीवन को नहीं छीन लेता; तुम्हारी स्वतंत्रता को नहीं छीन लेता। तुम्हें साथ देता है; बुरे में भी साथ देता है।

तो फिर उसकी तो बात ही क्या कहनी, जब तुम परमात्मा को ही खोजने निकलते हो। तब सब तरफ से तुम्हारे लिए सहयोग मिलता है।

हिरदैं माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।

सोइछकाहरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय।।

तब तुम उन मित्रों को खोज लेना, संगी-साथियों को खोज लेना, जिनके बीच बैठ क र तुम आनंद के आंसू रोओ और वे तुम्हारे धन्यभाग के गीत गाएं, वे तुम्हारा अभिनंदन करें। वे कह सकें◌ः बधाइयां।

तो मिलन दूसरा कदम; और तीसरा कदम–विसर्जन। पहले प्रभु से दूर-दूर हम; अंधेरी रात, अकेले। फिर प्रभु के साथ चांदनी रात और नृत्य और रास। और फिर एक घड़ी आती है, जब तुम तुम नहीं, प्रभु प्रभु नहीं; बूंद सागर में गिर गई या सागर बुंद में।

ये तीन कदम हैं भक्ति के। चरणदास के साथ इन कदमों को समझने की कोशिश करना।

–ओशो

नहीं सांझ नहीं भोर

वाजिद शाह

वाजिद–यह नाम मुझे सदा से प्यारा रहा है–एक सीधे-सादे आदमी का नाम, गैर-पढ़े-लिखे आदमी का नाम; लेकिन जिसकी वाणी में प्रेम ऐसा भरा है जैसा कि मुश्किल से कभी औरों की वाणी में मिले। सरल आदमी की वाणी में ही ऐसा प्रेम हो सकता है; सहज आदमी की वाणी में ही ऐसी पुकार, ऐसी प्रार्थना हो सकती है। पंडित की वाणी में बारीकी होती है, सूक्ष्मता होती है, सिद्धांत होता है, तर्क-विचार होता है, लेकिन प्रेम नहीं। प्रेम तो सरल-चित्त हृदय में ही खिलने वाला फूल है।

वाजिद बहुत सीधे-सादे आदमी हैं। एक पठान थे, मुसलमान थे। जंगल में शिकार खेलने गए थे। धनुष पर बाण चढ़ाया; तीर छूटने को ही था, छूटा ही था, कि कुछ घटा–कुछ अपूर्व घटा। भागती हिरणी को देखकर ठिठक गए, हृदय में कुछ चोट लगी, और जीवन रूपांतरित हो गया। तोड़कर फेंक दिया तीर-कमान वहीं। चले थे मारने, लेकिन वह जो जीवन की छलांग देखी–वह जो सुंदर हिरणी में भागता हुआ, जागा हुआ चंचल जीवन देखा–वह जो बिजली जैसी कौंध गई जीवन की! अवाक रह गए। यह जीवन नष्ट करने को तो नहीं, इसी जीवन में तो परमात्मा छिपा है। यही जीवन तो परमात्मा का दूसरा नाम है, यह जीवन परमात्मा की अभिव्यक्ति है। तोड़ दिए तीर-कमान; चले थे मारने, घर नहीं लौटे–खोजने निकल पड़े परमात्मा को। जीवन की जो थोड़ी-सी झलक मिली थी, यह झलक अब झलक ही न रह जाए–यह पूर्ण साक्षात्कार कैसे बने, इसकी तलाश शुरू हुई।

बड़ी आकस्मिक घटना है! ऐसा और बार भी हुआ है, अशोक को भी ऐसा ही हुआ था। कलिंग में लाखों लोगों को काटकर जिस युद्ध में उसने विजय पाई थी, लाशों से पटे हुए युद्ध-क्षेत्र को देखकर उसके जीवन में क्रांति हो गई थी। मृत्यु का ऐसा वीभत्स नृत्य देखकर उसे अपनी मृत्यु की याद आ गई थी। यहां सभी को मर जाना है, यहां मृत्यु आने ही वाली है। और अशोक जगत से उदासीन हो गया था। रहा फिर भी महल में, रहा सम्राट, लेकिन फकीर हो गया। उस दिन से उसकी जीवन की यात्रा और हो गई। युद्ध विदा हो गए, हिंसा विदा हो गई; प्रेम का सूत्रपात हुआ। उसी प्रेम ने उसे बुद्ध के चरणों में झुकाया। वाजिद अशोक से भी ज्यादा संवेदनशील व्यक्ति रहे होंगे। लाखों व्यक्तियों को काटने के बाद होश आया, तो संवेदनशीलता बहुत गहरी न रही होगी। वाजिद को होश आया, काटने के पहले। हिरणी को मारा भी नहीं था, अभी तीर छूटने को ही था–चढ़ गया था कमान पर, प्रत्यंचा खिंच गई थी, वहीं हाथ ढीले हो गए।

जीवन नष्ट करने जैसा तो नहीं; जीवन पूज्य है, क्योंकि जीवन में ही तो सारा रहस्य छिपा है। मंदिर-मस्जिदों में जो पूजा चलती है, वह जीवन की पूजा तो नहीं है। जीवन की पूजा होगी, तो तुम वृक्षों को पूजोगे, नदियों को पूजोगे, सागरों को पूजोगे, मनुष्यों को पूजोगे, जीवन को पूजोगे, जीवन की अनंत-अनंत अभिव्यक्तियों को पूजोगे। और यही अभिव्यक्तियां उसके चेहरे हैं। ये परमात्मा के भिन्न-भिन्न रंग-ढंग हैं, अलग-अलग झरोखों से वह प्रगट हुआ है।

अशोक को हत्या के बाद, भयंकर हत्या के बाद, रक्तपात के बाद मृत्यु का बोध हुआ था। मृत्यु के बोध से वह थरथरा गया था, घबड़ा गया था। उसी से उसकी सत्य की खोज शुरू हुई। वाजिद ज्यादा संवेदनशील व्यक्ति मालूम होते हैं। अभी मारा भी नहीं था, लेकिन हिरणी की वह छलांग, जैसे अचानक एक पर्दा हट गया, जैसे आंख से कोई धुंध हट गई; वह छलांग तीर की तरह हृदय में चुभ गई! वह सौंदर्य, हिरणी का वह जीवंत रूप! और परमात्मा की पहली झलक मिली।

सौंदर्य परमात्मा का निकटतम द्वार है। जो सत्य को खोजने निकलते हैं, वे लंबी यात्रा पर निकले हैं। उनकी यात्रा ऐसी है, जैसे कोई अपने हाथ को सिर के पीछे से घुमाकर कान पकड़े। जो सौंदर्य को खोजते हैं,

उन्हें सीधा-सीधा मिल जाता है; क्योंकि सौंदर्य अभी मौजूद है–इन हरे वृक्षों में, पक्षियों की चहचहाहट में, इस कोयल की आवाज में–सौंदर्य अभी मौजूद है! सत्य को तो खोजना पड़े। और सत्य तो कुछ बौद्धिक बात मालूम होती है, हार्दिक नहीं। सत्य का अर्थ होता है–गणित बिठाना होगा, तर्क करना होगा; और सौंदर्य तो ऐसा ही बरसा पड़ रहा है! न तर्क बिठाना है, न गणित करना है–सौंदर्य चारों तरफ उपस्थित है। धर्म को सत्य से अत्यधिक जोर देने का परिणाम यह हुआ कि धर्म दार्शनिक होकर रह गया, विचार होकर रह गया। धर्म सौंदर्य ज्यादा है। मैं भी तुमसे चाहता हूं कि तुम सौंदर्य को परखना शुरू करो। सौंदर्य को, संगीत को, काव्य को–परमात्मा के निकटतम द्वार जानो।

हिरणी का छलांग लगाना...हिरणी को छलांग लगाते देखा? उसकी छलांग में एक सौंदर्य होता है, एक अपूर्व सौंदर्य होता है! अत्यंत जीवंतता होती है! उस छलांग में त्वरा होती है, तीव्रता होती है–बिजली जैसे कौंध जाए, जीवन की बिजली जैसे कौंध जाए! हाथ तीर-कमान से छूट गए वाजिद के, यह सौंदर्य नष्ट करने जैसा तो नहीं! यह सौंदर्य विनष्ट करने जैसा तो नहीं! यह सौंदर्य ही तो पूजा का आराध्य है! झुक गए वहीं; फिर घर नहीं लौटे। जीवन में क्रांति हो गई!

यद्यपि बिजली के माध्यम से एक बात तय हो जाती है कि रास्ता है। अंधेरी रात है, तुम जंगल में खो गए हो। बिजली कौंधी, तुम्हें दिख जाता है कि रास्ता है। यद्यपि फिर भयंकर अंधकार छा जाता है और रास्ता खो जाता है; मगर भरोसा आ जाता है, श्रद्धा आ जाती है कि रास्ता है; अगर सम्हलकर चला, तो पहुंच जाऊंगा। रास्ता देख लिया, अपनी आंखों से देख लिया। हालांकि क्षण-भर को दिखा था, सपने की तरह दिखा था; अब फिर खो गया है और भयंकर अंधेरी रात है चारों तरफ। लेकिन अब तुम वही नहीं हो; बिजली कौंधने के पहले एक तुम थे, अब बिजली कौंधने के बाद दूसरे तुम हो। बिजली कौंधने के पहले संदेह ही संदेह था–पता नहीं रास्ता है भी या नहीं? अब संदेह नहीं है, अब श्रद्धा है। और यही क्रांति है। जिस घड़ी संदेह श्रद्धा बन जाता है, उसी क्षण क्रांति हो जाती है।

वह जो हरिण की छलांग थी, वह बिजली की कौंध थी! अब तक जैसे आदमी सोया ही रहा था, जैसे अब तक कुछ होश ही न था, जैसे नींद में चलते थे, नींद में उठते थे, नींद में बैठते थे। मगर आज कुछ हुआ! किस घड़ी परमात्मा तुम्हें पकड़ लेगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए हर घड़ी तैयार रहो। परमात्मा के लिए न समय है, न असमय है। परमात्मा कब तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे देगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जागे रहो, प्रतीक्षा करो; छोटी-छोटी घटनाओं में कभी-कभी परमात्मा उतर आता है। अब यह छोटी ही घटना थी। लाखों लोग शिकार करते रहे हैं, लाखों लोग अब भी शिकार कर रहे हैं; हरिण छलांग भरते हैं, लेकिन हाथ तो गिरते नहीं! तीर तो टूटते नहीं! सदगुरु की तलाश तो शुरू होती नहीं!

वाजिद सच में ही संवेदनशील व्यक्ति रहे होंगे–सरल, सीधे। पठान होते भी सरल और सीधे हैं। जो दिख गया था, अब उसकी तलाश शुरू हुई।

तलाश तभी शुरू हो सकती है, जब थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए। जो लोग बिना प्रतीति के खोजते हैं, वे व्यर्थ ही खोजते हैं। किसको खोजोगे? क्या खोजोगे? थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए; कहीं से हो–प्रेम में हो, सौंदर्य में हो, संगीत में हो–कैसे भी हो, थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए कि मुझ पर सब समाप्त नहीं है, मुझ से बड़ा भी है, मुझ से विराट भी है! कहीं भी हो, कैसे भी हो, इतना पता चल जाए कि मैं जैसा हूं, यह बहुत छोटा रूप है–बूंद जैसा। अभी सागर प्रतीक्षा कर रहा है! मैं जहां हूं, वहां अंधकार है; और पास ही कहीं रोशनी का स्रोत भी है। गुरु की तलाश तभी शुरू होती है।

जीवन की यह जो झलक मिली थी, यह ले चली गुरु की तलाश में। न मालूम कितने गुरुओं के पास वाजिद गए, उठे-बैठे, मगर वह झलक न मिली जो हिरणी की छलांग में मिली थी! वह झलक, लेकिन एक दिन मिली और भरपूर मिली–मूसलाधार वर्षा हो गई। दादू दयाल को देखते ही, वे आंखें दादू दयाल की, फिर वही जीवन की झलक–और प्रगाढ़तर, और ऐसी कि आरपार हो जाए!

फिर दादू के चरणों में रुक गए सो रुक गए, फिर चरण नहीं छोड़े। फिर दादू में जो सौंदर्य मिल गया, वह सौंदर्य देह का नहीं था, वह सौंदर्य पृथ्वी का भी नहीं था। सदगुरु में जो सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वह पारलौकिक है। दादू दयाल के पास और भी बहुत लोग आए और गए, लेकिन जो वाजिद को दिखाई पड़ा, औरों को दिखाई नहीं पड़ा। देखने की क्षमता चाहिए, पात्रता चाहिए। भीगने की तैयारी चाहिए। डूबने का साहस चाहिए। समर्पित होने की जोखिम जो उठाता है, वही सदगुरु से जुड़ पाता है। जैसे एक दिन तीर-कमान तोड़कर फेंक दिए थे, वैसे आज अपने अहंकार को भी तोड़कर फेंक दिया। झुक गए चरणों में तो फिर नहीं उठे। दादू के प्यारे शिष्यों में एक हो गए।

दादू ने हजारों लोगों के जीवन की ज्योति जलाई। दादू उन थोड़े-से संतों में से एक हैं, जिनके पास अनेक लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। स्वयं ज्ञान को उपलब्ध हो जाना एक बात है; वह भी बड़ी दूभर, बड़ी कठिन! जान लेना बड़ा दूभर, बड़ा कठिन, लेकिन जना देना और भी कठिन, और भी दूभर। खुद पी लेना परमात्मा के घट से, एक बात है, लेकिन दूसरों को भी पिला देना, बड़ी दूसरी बात है। तो दुनिया में करोड़ों में कभी कोई एकाध परमात्मा को पाने वाला होता है, और करोड़ों परमात्मा को पाने वालों में कभी कोई एकाध दूसरों को भी पिलाने वाला होता है। दादू उन थोड़े-से लोगों में एक थे। हजारों लोगों ने उनके पास पीया, उनके घाट से पीया। उनके एक सौ बावन निर्वाण को उपलब्ध शिष्यों में वाजिद भी एक हैं। उनके पास बहुत दीए जले, वाजिद का भी जला।

और जब वाजिद का दीया जला, तो उसके भीतर से काव्य फूटा। सीधा-सादा आदमी, उसकी कविता भी सीधी-सादी है, ग्राम्य है। पर गांव की सोंधी सुगंध भी है उसमें! जैसे नई-नई वर्षा हो और भूमि से सोंधी सुगंध उठे, ठीक ऐसी सोंधी सुगंध है वाजिद के काव्य में! मात्रा-छंद का हिसाब नहीं है बहुत; जरूरत भी नहीं है। जब सौंदर्य कम होता है, तो आभूषणों की जरूरत होती है; जब सौंदर्य परिपूर्ण होता है, तो न आभूषणों की जरूरत होती है, न साज-शृंगार की। जब सौंदर्य परिपूर्ण होता है, तो आभूषण सौंदर्य में बाधा बन जाते हैं, खटकते हैं। तब तो सादापन ही अति सुंदर होता है, तब तो सादेपन में ही लावण्य होता है, प्रसाद होता है। तो जो मात्रा, छंद, व्याकरण, भाषा को बिठाने में लगे रहते हैं, उनके इतने आयोजन का कारण ही यही होता है कि भाव पर्याप्त नहीं है, भाषा से उसकी पूर्ति करनी है। जब भाव ही पर्याप्त होता है, तो भाषा से पूर्ति नहीं करनी होती। जब भाव बहता है बाढ़ की तरह, तो किसी भी तरह की भाषा काम दे देती है। भाषा पर मत जाना, भाव पर जाना। काव्य फूटा उनसे! जब दीया भीतर जलता है, तो रोशनी–उसकी किरणें बाहर फैलनी शुरू हो जाती हैं। वही संतों का काव्य है।

इस घटना के तरफ संकेत देने वाला राघोदास का एक कवित्त वाजिद के संबंध में बहुत प्रसिद्ध है–

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ,
भजन प्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यो है।
हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी,
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यो है।
तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर,

दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यो है।

राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूं,

खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यो है।

वाजिद की जिंदगी में क्रांति ही हुई! प्रभु का स्मरण आया, जीवन की झलक को देखकर। जीवन याद दिला गया महाजीवन की। छोटा-सा सौंदर्य का कण, प्यास भर गया और सौंदर्य की। जरा-सी बूंद, सन्नाटा, उस घड़ी में हरिण की छलांग, हाथ का रुक जाना, हृदय का ठहर जाना, विचार का बंद हो जाना–थोड़ा-सा स्वाद लगा समाधि का! फिर गुरु की तलाश में निकले। हिंदू से कुछ लेना-देना नहीं था।

दादू दयाल कोई हिंदू थोड़े ही हैं। इस ऊंचाई के लोग हिंदू-मुसलमान थोड़े ही होते हैं! हिंदू-मुसलमान होना तो बड़ी नीचाइयों की बातें हैं, बाजार की बातें हैं। यह तो संयोग की बात है कि दादू दयाल हिंदू घर में पैदा हुए थे, बिलकुल संयोग की बात है। खोज में निकले थे वाजिद, बहुतों के पास गए, पांडित्य देखा, ज्ञान की बातें सुनीं, मगर जीवंत जलती हुए रोशनी नहीं देखी। शास्त्र तो सुना, सत्संग न हो सका। आंखों में आंखें डालकर देखीं, मगर वहां भी विचारों की भीड़ ही देखी; शांत सन्नाटा, संगीत, नाद वहां से उतरता न आया। बैठे पास बहुतों के, लेकिन खाली गए, खाली लौटे। दादू दयाल को हिंदू समझकर थोड़े ही गुरु बना लिया था; गुरु थे, इसलिए गुरु बना लिया था।

इस बात को ख्याल रखना, वाजिद कुछ हिंदू नहीं हो गए हैं! हिंदू-मुसलमान की बात ही नहीं है यह। सोया आदमी जाग गया, इसमें हिंदू-मुसलमान की क्या बात है? खोया आदमी रास्ते पर आ गया, इसमें हिंदू-मुसलमान की क्या बात है? हिंदू भी खोए हैं, मुसलमान भी खोए हैं; हिंदू भी सोए हैं, मुसलमान भी सोए हैं। जो जाग गया, वह तो तीसरे ही ढंग का आदमी है; उसको किसी संप्रदाय में तुम न रख सकोगे, वह सांप्रदायिक नहीं होता है।

यहां अड़चन आ जाती है। कोई सिक्ख आकर संन्यास ले लेता है, तो बस उसको सताने लगते हैं लोग, उसके संप्रदाय के लोग सताने लगते हैं कि अब तुम संन्यासी हो गए, अब तुम सिक्ख न रहे! सच बात यह है कि वह पहली दफा सिक्ख हुआ! सिक्ख का अर्थ होता है–शिष्य; शिष्य का ही रूप है सिक्ख। पहली दफा शिष्य हुआ, और तुम कहते हो सिक्ख न रहे! अब तक सिक्ख नहीं था, अब हुआ। अब तक सुनी-सुनी बातें थीं, अब गुरु से मिलना हुआ। और गुरु कुछ बंधा थोड़े ही है–हिंदू में, मुसलमान में, ईसाई, जैन में। नानक सिक्ख थोड़े ही हैं, न हिंदू हैं, न मुसलमान हैं; जागे पुरुष हैं।

जब किसी जाग्रत पुरुष से संबंध हो जाएगा, तो तुम शिष्य हुए–और तभी तुम हिंदू हुए, और तभी तुम मुसलमान हुए। सदगुरु तुम्हें धर्म से जोड़ देता है, संप्रदायों से तोड़ देता है।

मगर राघोदास सांप्रदायिक वृत्ति के रहे होंगे, खुश हुए होंगे।

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ।

इन्हें बड़ा रस आया होगा कि रामनाम का पाठ किया। देखो, राम से तरे! कुरान पढ़ते रहे, तब न तरे। दोहराते रहे आयतें, तब न तरे–अब तरे! राम हैं असली तारणहार!

तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर,

दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यो है।

और अब भीतर गुरु का उदय हो रहा है। बाहर गुरु मिल जाए, तो भीतर गुरु का उदय शुरू हो जाता है। बाहर का गुरु भीतर के गुरु को सजग करने लगता है। बाहर के गुरु की मौजूदगी भीतर सोए गुरु को जगाने लगती है। गुरु अंतर उदीत्यो है–यह बात ठीक है।

–ओशो

कहे वाजिद पूकार

बाबा गोरखनाथ

महाकवि सुमित्रानंदन पंत ने मुझसे एक बार पूछा कि भारत के धर्माकाश में वे कौन बारह लोग हैं–मेरी दृष्टि में–जो सबसे चमकते हुए सितारे हैं? मैंने उन्हें यह सूची दी: कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, शंकर, गोरख, कबीर, नानक, मीरा, रामकृष्ण, कृष्णमूर्ति। सुमित्रानंदन पंत ने आंखें बंद कर लीं, सोच में पड़ गये...।

सूची बनानी आसान भी नहीं है, क्योंकि भारत का आकाश बड़े नक्षत्रों से भरा है! किसे छोड़ो, किसे गिनो?...वे प्यारे व्यक्ति थे–अति कोमल, अति माधुर्यपूर्ण, स्त्रैण...। वृद्धावस्था तक भी उनके चेहरे पर वैसी ही ताजगी बनी रही जैसी बनी रहनी चाहिए। वे सुंदर से सुंदरतर होते गये थे...। मैं उनके चेहरे पर आते-जाते भाव पढ़ने लगा। उन्हें अड़चन भी हुई थी। कुछ नाम, जो स्वभावतः होने चाहिए थे, नहीं थे। राम का नाम नहीं था! उन्होंने आंख खोली और मुझसे कहा: राम का नाम छोड़ दिया है आपने! मैंने कहा: मुझे बारह की ही सुविधा हो चुनने की, तो बहुत नाम छोड़ने पड़े। फिर मैंने बारह नाम ऐसे चुने हैं जिनकी कुछ मौलिक देन है। राम की कोई मौलिक देन नहीं है, कृष्ण की मौलिक देन है। इसलिये हिंदुओं ने भी उन्हें पूर्णावतार नहीं कहा।

उन्होंने फिर मुझसे पूछा: तो फिर ऐसा करें, सात नाम मुझे दें। अब बात और कठिन हो गयी थी। मैंने उन्हें सात नाम दिये: कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, शंकर, गोरख, कबीर। उन्होंने कहा: आपने जो पांच छोड़े, अब किस आधार पर छोड़े हैं? मैंने कहा: नागार्जुन बुद्ध में समाहित हैं। जो बुद्ध में बीज-रूप था, उसी को नागार्जुन ने प्रगट किया है। नागार्जुन छोड़े जा सकते हैं। और जब बचाने की बात हो तो वृक्ष छोड़े जा सकते हैं, बीज नहीं छोड़े जा सकते। क्योंकि बीजों से फिर वृक्ष हो जायेंगे, नये वृक्ष हो जायेंगे। जहां बुद्ध पैदा होंगे वहां सैकड़ों नागार्जुन पैदा हो जायेंगे, लेकिन कोई नागार्जुन बुद्ध को पैदा नहीं कर सकता। बुद्ध तो गंगोत्री हैं, नागार्जुन तो फिर गंगा के रास्ते पर आये हुए एक तीर्थस्थल हैं–प्यारे! मगर अगर छोड़ना हो तो तीर्थस्थल छोड़े जा सकते हैं, गंगोत्री नहीं छोड़ी जा सकती।

ऐसे ही कृष्णमूर्ति भी बुद्ध में समा जाते हैं। कृष्णमूर्ति बुद्ध का नवीनतम संस्करण हैं–नूतनतम; आज की भाषा में। पर भाषा का ही भेद है। बुद्ध का जो परम सूत्र था–अप्प दीपो भव–कृष्णमूर्ति बस उसकी ही व्याख्या हैं। एक सूत्र की व्याख्या–गहन, गंभीर, अति विस्तीर्ण, अति महत्वपूर्ण! पर अपने दीपक स्वयं बनो, अप्प दीपो भव–इसकी ही व्याख्या हैं। यह बुद्ध का अंतिम वचन था इस पृथ्वी पर। शरीर छोड़ने के पहले यह उन्होंने सार-सूत्र कहा था। जैसे सारे जीवन की संपदा को, सारे जीवन के अनुभव को इस एक छोटे-से सूत्र में समाहित कर दिया था।

रामकृष्ण, कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। मीरा, नानक, कबीर में लीन हो जाते हैं; जैसे कबीर की ही शाखायें हैं। जैसे कबीर में जो इकट्ठा था, वह आधा नानक में प्रगट हुआ है और आधा मीरा में। नानक में कबीर का पुरुष-रूप प्रगट हुआ है। इसलिए सिक्ख धर्म अगर क्षत्रिय का धर्म हो गया, योद्धा का, तो आश्चर्य नहीं है। मीरा में कबीर का स्त्रैण रूप प्रगट हुआ है–इसलिए सारा माधुर्य, सारी सुगंध, सारा सुवास, सारा संगीत, मीरा के पैरों में घुंघरू बनकर बजा है। मीरा के इकतारे पर कबीर की नारी गाई है; नानक में कबीर का पुरुष बोला है। दोनों कबीर में समाहित हो जाते हैं।

इस तरह, मैंने कहा: मैंने यह सात की सूची बनाई। अब उनकी उत्सुकता बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने कहा: और अगर पांच की सूची बनानी पड़े? तो मैंने कहा: काम मेरे लिये कठिन होता जायेगा।

मैंने यह सूची उन्हें दी: कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, गोरख।...क्योंकि कबीर को गोरख में लीन किया जा सकता है। गोरख मूल हैं। गोरख को नहीं छोड़ा जा सकता। और शंकर तो कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। कृष्ण के ही एक अंग की व्याख्या हैं, कृष्ण के ही एक अंग का दार्शनिक विवेचन हैं।

तब तो वे बोले: बस, एक बार और...। अगर चार ही रखने हों?

तो मैंने उन्हें सूची दी: कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, गोरख।...क्योंकि महावीर बुद्ध से बहुत भिन्न नहीं हैं, थोड़े ही भिन्न हैं। जरा-सा ही भेद है; वह भी अभिव्यक्ति का भेद है। बुद्ध की महिमा में महावीर की महिमा लीन हो सकती है।

वे कहने लगे: बस एक बार और...। आप तीन व्यक्ति चुनें।

मैंने कहा: अब असंभव है। अब इन चार में से मैं किसी को भी छोड़ न सकूंगा। फिर मैंने उन्हें कहा: जैसे चार दिशाएं हैं, ऐसे ये चार व्यक्तित्व हैं। जैसे काल और क्षेत्र के चार आयाम हैं, ऐसे ये चार आयाम हैं। जैसे परमात्मा की हमने चार भुजाएं सोची हैं, ऐसी ये चार भुजाएं हैं। ऐसे तो एक ही है, लेकिन उस एक की चार भुजाएं हैं। अब इनमें से कुछ छोड़ना तो हाथ काटने जैसा होगा। यह मैं न कर सकूंगा। अभी तक मैं आपकी बात मानकर चलता रहा, संख्या कम करता चला गया। क्योंकि अभी तक जो अलग करना पड़ा, वह वस्त्र था; अब अंग तोड़ने पड़ेंगे। अंग-भंग मैं न कर सकूंगा। ऐसी हिंसा आप न करवायें।

वे कहने लगे: कुछ प्रश्न उठ गये; एक तो यह, कि आप महावीर को छोड़ सके, गोरख को नहीं?

गोरख को नहीं छोड़ सकता हूं क्योंकि गोरख से इस देश में एक नया ही सूत्रपात हुआ, महावीर से कोई नया सूत्रपात नहीं हुआ। वे अपूर्व पुरुष हैं; मगर जो सदियों से कहा गया था, उनके पहले जो तेईस जैन तीर्थंकर कह चुके थे, उसकी ही पुनरुक्ति हैं। वे किसी यात्रा का प्रारंभ नहीं हैं। वे किसी नयी शृंखला की पहली कड़ी नहीं हैं, बल्कि अंतिम कड़ी हैं।

गोरख एक शृंखला की पहली कड़ी हैं। उनसे एक नये प्रकार के धर्म का जन्म हुआ, आविर्भाव हुआ। गोरख के बिना न तो कबीर हो सकते हैं, न नानक हो सकते हैं, न दादू, न वाजिद, न फरीद, न मीरा–गोरख के बिना ये कोई भी न हो सकेंगे। इन सब के मौलिक आधार गोरख में हैं। फिर मंदिर बहुत ऊंचा उठा। मंदिर पर बड़े स्वर्ण-कलश चढ़े...। लेकिन नींव का पत्थर नींव का पत्थर है। और स्वर्ण-कलश दूर से दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नींव के पत्थर से ज्यादा मूल्यवान नहीं हो सकते। और नींव के पत्थर किसी को दिखाई भी नहीं पड़ते, मगर उन्हीं पत्थरों पर टिकी होती है सारी व्यवस्था, सारी भित्तियां, सारे शिखर...। शिखरों की पूजा होती है, बुनियाद के पत्थरों को तो लोग भूल ही जाते हैं। ऐसे ही गोरख भी भूल गये हैं।

लेकिन भारत की सारी संत-परंपरा गोरख की ऋणी है। जैसे पतंजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना न रह जायेगी; जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जायेगी; जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा–ऐसे गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिये विधियों की जो तलाश शुरू हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी। गोरख ने जितना आविष्कार किया मनुष्य के भीतर अंतर-खोज के लिये, उतना शायद किसी ने भी नहीं किया है। उन्होंने इतनी विधियां दीं कि अगर विधियों के हिसाब से सोचा जाये तो गोरख सबसे बड़े आविष्कारक हैं। इतने द्वार तोड़े मनुष्य के अंतरतम में जाने के लिये, इतने द्वार तोड़े कि लोग द्वारों में उलझ गये।

इसलिए हमारे पास एक शब्द चल पड़ा है–गोरख को तो लोग भूल गये–गोरखधंधा शब्द चल पड़ा है। उन्होंने इतनी विधियां दीं कि लोग उलझ गये कि कौन-सी ठीक, कौन-सी गलत, कौन-सी करें, कौन-सी छोड़ें...

? उन्होंने इतने मार्ग दिये कि लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, इसलिए गोरखधंधा शब्द बन गया। अब कोई किसी चीज में उलझा हो तो हम कहते हैं, क्या गोरखधंधे में उलझे हो!

गोरख के पास अपूर्व व्यक्तित्व था, जैसे आइंस्टीन के पास व्यक्तित्व था। जगत के सत्य को खोजने के लिये जो पैने से पैने उपाय अलबर्ट आइंस्टीन दे गया, उसके पहले किसी ने भी नहीं दिये थे। हां, अब उनका विकास हो सकेगा, अब उन पर और धार रखी जा सकेगी। मगर जो प्रथम काम था वह आइंस्टीन ने किया है। जो पीछे आयेंगे वे नंबर दो होंगे। वे अब प्रथम नहीं हो सकते। राह पहली तो आइंस्टीन ने तोड़ी, अब इस राह को पक्का करनेवाले, मजबूत करनेवाले, मील के पत्थर लगानेवाले, सुंदर बनानेवाले, सुगम बनानेवाले बहुत लोग आयेंगे। मगर आइंस्टीन की जगह अब कोई भी नहीं ले सकता। ऐसी ही घटना अंतरजगत में गोरख के साथ घटी।

लेकिन गोरख को लोग भूल क्यों गये? मील के पत्थर याद रह जाते हैं, राह तोड़नेवाले भूल जाते हैं। राह को सजानेवाले याद रह जाते हैं, राह को पहली बार तोड़नेवाले भूल जाते हैं। भूल जाते हैं इसलिए कि जो पीछे आते हैं उनको सुविधा होती है संवारने की। जो पहले आता है, वह तो अनगढ़ होता है, कच्चा होता है। गोरख जैसे खदान से निकले हीरे हैं। अगर गोरख और कबीर बैठे हों तो तुम कबीर से प्रभावित होओगे, गोरख से नहीं। क्योंकि गोरख तो खदान से निकले हीरे हैं; और कबीर–जिन पर जौहरियों ने खूब मेहनत की, जिन पर खूब छेनी चली है, जिनको खूब निखार दिया गया है!

यह तो तुम्हें पता है न कि कोहिनूर हीरा जब पहली दफा मिला तो जिस आदमी को मिला था उसे पता भी नहीं था कि कोहिनूर है। उसने बच्चों को खेलने के लिये दे दिया था, समझकर कि कोई रंगीन पत्थर है। गरीब आदमी था। उसके खेत से बहती हुई एक छोटी-सी नदी की धार में कोहिनूर मिला था। महीनों उसके घर पड़ा रहा, कोहिनूर बच्चे खेलते रहे, फेंकते रहे इस कोने से उस कोने, आंगन में पड़ा रहा...।

तुम पहचान न पाते कोहिनूर को। कोहिनूर का मूल वजन तीन गुना था आज के कोहिनूर से। फिर उस पर धार रखी गई, निखार किये गये, काटे गये, उसके पहलू उभारे गये। आज सिर्फ एक तिहाई वजन बचा है, लेकिन दाम करोड़ों गुना ज्यादा हो गये। वजन कम होता गया, दाम बढ़ते गये, क्योंकि निखार आता गया–और, और निखार...।

कबीर और गोरख साथ बैठे हों, तुम गोरख को शायद पहचानो ही न; क्योंकि गोरख तो अभी गोलकोंडा की खदान से निकले कोहिनूर हीरे हैं। कबीर पर बड़ी धार रखी जा चुकी, जौहरी मेहनत कर चुके।...कबीर तुम्हें पहचान में आ जायेंगे।

इसलिये गोरख का नाम भूल गया है। बुनियाद के पत्थर भूल जाते हैं!

गोरख के वचन सुनकर तुम चौंकोगे। थोड़ी धार रखनी पड़ेगी; अनगढ़ हैं। वही धार रखने का काम मैं यहां कर रहा हूं। जरा तुम्हें पहचान आने लगेगी, तुम चमत्कृत होओगे। जो भी सार्थक है, गोरख ने कह दिया है। जो भी मूल्यवान है, कह दिया है।

तो मैंने सुमित्रानंदन पंत को कहा कि गोरख को न छोड़ सकूंगा। और इसलिए चार से और अब संख्या कम नहीं की जा सकती। उन्होंने सोचा होगा स्वभावतः कि मैं गोरख को छोडूंगा, महावीर को बचाऊंगा। महावीर कोहिनूर हैं, अभी कच्चे हीरे नहीं हैं खदान से निकले। एक पूरी परंपरा है तेईस तीर्थंकरों की, हजारों साल की, जिसमें धार रखी गई है, पैने किये गये हैं–खूब समुज्ज्वल हो गये हैं! तुम देखते हो, चौबीसवें तीर्थंकर हैं महावीर; बाकी तेईस के नाम लोगों को भूल गये! जो जैन नहीं हैं वे तो तेईस के नाम गिना ही न सकेंगे। और जो जैन हैं वे भी तेईस का नाम क्रमबद्ध रूप से न गिना सकेंगे, उनसे भी भूल-चूक हो जायेगी। महावीर तो अंतिम

हैं–मंदिर का कलश! मंदिर के कलश याद रह जाते हैं। फिर उनकी चर्चा होती रहती है। बुनियाद के पत्थरों की कौन चर्चा करता है!

आज हम बुनियाद के एक पत्थर की बात शुरू करते हैं। इस पर पूरा भवन खड़ा है भारत के संत-साहित्य का! इस एक व्यक्ति पर सब दारोमदार है। इसने सब कह दिया है जो धीरे-धीरे बड़ा रंगीन हो जायेगा, बड़ा सुंदर हो जायेगा; जिस पर लोग सदियों तक साधना करेंगे, ध्यान करेंगे; जिसके द्वारा न मालूम कितने सिद्धपुरुष पैदा होंगे!

मरौ वे जोगी मरौ!

ऐसा अदभुत वचन है! कहते हैं: मर जाओ, मिट जाओ, बिलकुल मिट जाओ!

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।

क्योंकि मृत्यु से ज्यादा मीठी और कोई चीज इस जगत में नहीं है।

तिस मरणी मरौ...।

और ऐसी मृत्यु मरो,

जिस मरणी गोरष मरि दीठा।

जिस तरह से मरकर गोरख को दर्शन उपलब्ध हुआ, ऐसे ही तुम भी मर जाओ और दर्शन को उपलब्ध हो जाओ।

एक मृत्यु है जिससे हम परिचित हैं; जिसमें देह मरती है, मगर हमारा अहंकार और हमारा मन जीवित रह जाता है। वही अहंकार नये गर्भ लेता है। वही अहंकार नयी वासनाओं से पीड़ित हुआ फिर यात्रा पर निकल जाता है। एक देह से छूटा नहीं कि दूसरी देह के लिये आतुर हो जाता है। तो यह मृत्यु तो वास्तविक मृत्यु नहीं है।

मैंने सुना है, एक आदमी ने गोरख से कहा कि मैं आत्महत्या करने की सोच रहा हूं। गोरख ने कहा: जाओ और करो, मैं तुमसे कहता हूं तुम करके बहुत चौंकोगे।

उस आदमी ने कहा: मतलब? मैं आया था कि आप समझायेंगे कि मत करो। मैं और साधुओं के पास भी गया। सभी ने समझाया कि भाई, ऐसा मत करो, आत्महत्या बड़ा पाप है।

गोरख ने कहा: पागल हुए हो, आत्महत्या कोई कर ही नहीं सकता। कोई मर ही नहीं सकता। मरना संभव नहीं है। मैं तुमसे कहे देता हूं, करो, करके बहुत चौंकोगे। करके पाओगे कि अरे, देह तो छूट गयी, मैं तो वैसा का वैसा हूं! और अगर असली आत्महत्या करनी हो तो फिर मेरे पास रुक जाओ। छोटा-मोटा खेल करना हो तो तुम्हारी मर्जी–कूद जाओ किसी पहाड़ी से, लगा लो गर्दन में फांसी। असली मरना हो तो रुक जाओ मेरे पास। मैं तुम्हें वह कला दूंगा जिससे महामृत्यु घटती है, फिर दुबारा आना न हो सकेगा। लेकिन वह महामृत्यु भी सिर्फ हमें महामृत्यु मालूम होती है, इसलिए उसको मीठा कह रहे हैं।

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।

तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।

जीवन एक खेल है। इसको खेल से ज्यादा मत लेना, खेल से ज्यादा लिया कि बस उलझे। नाटक समझो, अभिनय समझो। अभिनय में कोई परेशान थोड़े ही होता है। जो अभिनय मिल गया है उसी को मस्ती से कर देता है। रावण भी बनना पड़ता है रामलीला में किसी को तो कुछ परेशान थोड़े ही होता है; कोई दिल ही दिल में रोता थोड़े ही है कि हाय, मैं कैसा अभागा कि मुझे रावण बनना पड़ा! पर्दा हटते ही राम और रावण सब बराबर हो जाते हैं। यहां एक-दूसरे की जान लेने को उतारू थे, पर्दे के पीछे जाकर देखना बैठे चाय पी रहे हैं,

गपशप कर रहे हैं। सीताजी दोनों के बीच में बैठी हैं। न कोई चुराने का सवाल है, न कोई बचाने का सवाल है। जीवन एक अभिनय है; लेकिन उसी के लिये पूर्ण अभिनय हो पाता है जो शून्य को उपलब्ध हो जाता है।

हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं...।

–ओशो

मरो हे जोगी मरो

वसंत आया हुआ है। द्वार पर दस्तक दे रहा है। लेकिन तुम द्वार बंद किये बैठे हो।

जिस अपूर्व व्यक्ति के साथ हम आज यात्रा शुरू करते हैं, इस पृथ्वी पर हुए अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तियों में वह एक है। चौरासी सिद्धों में जो प्रथम सिद्ध है, सरहपा उसके साथ हम अपनी यात्रा आज शुरू करते हैं।

सरहपा के तीन नाम हैं, कोई सरह की तरह उन्हें याद करता है, कोई सरहपाद की तरह, कोई सरहपा की तरह। ऐसा प्रतीत होता है सरहपा के गुरु ने उन्हें सरह पुकारा होगा, सरहपा के संगी-साथियों ने उन्हें सरहपा पुकारा होगा, सरहपा के शिष्यों ने उन्हें सरहपाद पुकारा होगा। मैंने चुना है कि उन्हें सरहपा पुकारूं, क्योंकि मैं जानता हूं तुम उनके संगी-साथी बन सकते हो। तुम उनके समसामयिक बन सकते हो। सिद्ध होना तुम्हारी क्षमता के भीतर है।

सिद्धों में और तुममें समय का फासला हो, स्वभाव का फासला नहीं है। स्वभाव से तो तुम अभी भी सिद्ध हो। सोये हो सही, जैसे बीज में सोया पड़ा है अंकुर; समय पाकर फूटेगा, पल्लव निकलेंगे। जैसे मां के गर्भ में बच्चा है, समय पाकर जन्मेगा। समय का ही फासला है। तुममें, सिद्धों और बुद्धों में, स्वभाव का जरा भी फासला नहीं है। तुम ठीक वैसे ही हो जैसे बुद्ध, जैसे महावीर, जैसे मुहम्मद, जैसे कृष्ण, जैसे सरहपा। यह तो पहला सूत्र है जो स्मरण रखना, क्योंकि सरहपा इसीकी तुम्हें याद दिलायेंगे। और इस सूत्र की जिसे ठीक से प्रतीति हो जाये, इस सूत्र की अनुभूति हो जाये, इस सूत्र को जो हृदय में समा ले, सम्हाल ले, उसका नब्बे प्रतिशत काम पूरा हो गया।

सिद्ध होना नहीं है–सिद्ध तुम हो, ऐसा जानना है। सिर्फ जानना है, सिर्फ जागना है। वसंत आया ही हुआ है, द्वार पर दस्तकें दे रहा है। तुम पलक खोलो और सारा जगत अपरिसीम सौंदर्य से भरा हुआ है। तुम पलक खोलो, और उत्सव से तुम्हारा मिलन हो जाये! विषाद कटे, यह रात का अंधेरा कटे। यह रात का अंधेरा, बस तुम्हारी बंद आंख के कारण है।

सरहपा जन्म से ब्राह्मण थे, लेकिन जन्म से ही ब्राह्मण न रहे, अनुभव से भी ब्राह्मण हो गये। जन्म से तो बहुत लोग ब्राह्मण होते हैं, मगर जन्म के ब्राह्मणत्व का कोई भी मूल्य नहीं है, दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। ठीक से समझो तो जन्म से सभी शूद्र होते हैं। जन्म से कोई ब्राह्मण कैसे होगा? नाममात्र की बात है। ब्राह्मण तो अनुभव की बात है, बोध की बात है। ब्रह्म को जो जाने, सो ब्राह्मण। ब्रह्म को जो पहचाने, सो ब्राह्मण। तो जन्म से तो सभी शूद्र हैं। जो जाग जाये वही ब्राह्मण; जो सोया है वह शूद्र–ऐसी परिभाषा करना। जो जागा है वह ब्राह्मण।

सरहपा जन्म से ब्राह्मण थे, लेकिन जन्म से ही ब्राह्मण न रहे, अनुभव से भी ब्राह्मण हो गये। बड़े पंडित थे और यह विरल घटना है, कि पंडित और सिद्ध हो जाये। यह काम अति कठिन है। अज्ञानी सिद्ध हो जाये, यह उतना कठिन नहीं है; लेकिन पंडित सिद्ध हो जाये, यह बहुत कठिन है। कारण? अज्ञानी को इतना तो भाव होता ही है कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे पता नहीं; इसलिए अकड़ नहीं होती, अहंकार नहीं होता। अज्ञान में एक निर्दोषता होती है। छोटे बच्चे का अज्ञान, दूर जंगल में बसे आदिवासी का अज्ञान–उसमें तुम्हें एक निर्दोष भाव मिलेगा; दंभ न मिलेगा जानने का। और दंभ जानने में सबसे बड़ी बाधा है। अहंकार भटकाता है, बहुत भटकाता है।

और सरहपा बड़े पंडित थे, नालंदा के आचार्य थे। नालंदा में तो प्रवेश भी होना बहुत कठिन बात थी। नालंदा में विद्यार्थी जो प्रवेश होते थे, उनको महीनों द्वार पर पड़े रहना पड़ता था। प्रवेश-परीक्षा ही जब तक

पूरी न होती तब तक द्वार के भीतर प्रवेश नहीं मिलता था। नालंदा अदभुत विश्वविद्यालय था! दस हजार विद्यार्थी थे वहां और हजारों आचार्य थे और एक-एक आचार्य अनूठा था। जो नालंदा का आचार्य हो जाता, उसके पांडित्य की तो पताका फहर जाती थी सारे देश में।

सरहपा नालंदा के आचार्य थे; बड़ी उनकी कीर्ति थी, बड़ा उनका पांडित्य था! एक दिन सारे पांडित्य को लात मार दी। धन को छोड़ना आसान है, पद को छोड़ना आसान है, पांडित्य को छोड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि धन तो बाहर है; चोर चुरा लेते हैं, सरकारें बदल जायें, सिक्के न पुराने चलें, बैंक का दीवाला निकल जाये...। धन का क्या भरोसा है! धन तो बाहर की मान्यता पर निर्भर है। लेकिन ज्ञान तो भीतर है, न चोर चुरा सकते, न डाकू लूट सकते। तो ज्ञान पर पकड़ ज्यादा गहरी होती है। ज्ञान अपना मालूम होता है। इसे कोई छीन नहीं सकता। यह दूसरों पर निर्भर नहीं है। यह धन ज्यादा सुरक्षित मालूम होता है। फिर ज्ञान के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है, धन के साथ हमारा तादात्म्य कभी नहीं होता। तुम्हारे पास हजारों सिक्कों का ढेर लगा हो, तो भी तुम ऐसा नहीं कहते कि मैं यह सिक्कों का ढेर हूं। तुम जानते हो ये सिक्के मेरे पास हैं, कल मेरे पास नहीं थे, कल हो सकता है मेरे पास फिर न हों। तुम ज्यादा से ज्यादा सिक्कों की मालकियत कर सकते हो। वह मालकियत भी बड़ी संदिग्ध है। हजार-हजार परिस्थितियों पर निर्भर है।

लेकिन ज्ञान के साथ तादात्म्य हो जाता है। तुम जो जानते हो, वही हो जाते हो। वेद को जानने वाला अनुभव करने लगता है कि जैसे मैं वेद हो गया। कुरान जिसे कंठस्थ है उसे अनुभव होने लगता है कि जैसे मैं कुरान हो गया। ज्ञान मन के इतने गहरे में है कि आत्मा उसके साथ अभिभूत हो जाती है; इतना निकट है कि तादात्म्य हो जाता है। इसलिए दुनिया में लोग और सब आसानी से छोड़ देते हैं...।

मेरे एक परिचित, सब छोड़कर जंगल चले गये। जंगल से मैं गुजरता था, किसी यात्रा पर था, तो मैंने, जो मित्र मुझे अपनी गाड़ी से ले जा रहे थे, उनसे कहा कि एक पांच-सात मील का चक्कर होगा, लेकिन मेरे एक पुराने परिचित हैं, वे सब छोड़-छाड़ चुके हैं–धन, पद-प्रतिष्ठा, वे इस जंगल में हैं, उनसे मिलते चलें। उन्हें मिलने मैं गया। उन्होंने सब छोड़ दिया था, लेकिन सब छोड़कर भी वे जैन थे सो जैन ही थे!

मैंने उनसे पूछा: तुम सब छोड़ आये–समाज छोड़ दिया, घर छोड़ दिया, पत्नी-बच्चे छोड़ दिये, धन छोड़ दिया–लेकिन जिस समाज ने तुम्हें यह जैन होने की भ्रांति दी थी, उस समाज को तो छोड़ आये, मगर भ्रांति को तुम लिये बैठे हो! अभी भी तुम जैन हो!

उनको एकदम से समझ में न आया कि यह कैसे छोड़ा जा सकता है!

जैन होना क्या है? ज्ञान की एक खास राशि। हिंदू होना क्या है? ज्ञान की एक दूसरी राशि। ईसाई होना क्या है? ज्ञान की तीसरी राशि। जिसने बाइबिल से अपना ज्ञान चुना है वह ईसाई है और जिसने गीता से अपना ज्ञान चुना है वह हिंदू है। सब छोड़कर आदमी चला जाता है। तुम देखते हो, संन्यासी हैं, सब छोड़ देते हैं मगर फिर भी हिंदू हैं सो हिंदू हैं, ज्ञान नहीं छूटता। और जब तक ज्ञान न छूटे, तब तक जानना कुछ भी नहीं छूटा। समाज मत छोड़ो, चलेगा। घर-द्वार मत छोड़ो, चलेगा। मगर ज्ञान छोड़ दो; क्योंकि ज्ञान के कारण तुम्हें भ्रांति हो रही है कि मुझे मालूम है, जबकि तुम्हें मालूम नहीं है। मालूम तुम्हें तभी हो सकता है जब तुम पहले यह अंगीकार कर लो कि मुझे मालूम नहीं है। ज्ञान की यात्रा ही अज्ञान के बोध से शुरू होती है।

अदभुत व्यक्ति रहे होंगे सरहपा! एक दिन पांडित्य को लात मार दी। अज्ञानी हो गये। सब छोड़-छाड़ दिया। शास्त्र, जानकारी, उपाधियां–सब छोड़ दिया। एक फक्कड़ फकीर हो गये। अज्ञानी की तरह घूमने लगे। मुझे कुछ मालूम नहीं है, ऐसी घोषणा करने लगे। और जो आदमी ऐसी घोषणा करे कि मुझे कुछ मालूम नहीं है,

मालूम होने के करीब उसके दिन आ गये, समय आ गया; क्योंकि अहंकार गिर गया, अब रुकावट कहां रही! अहंकार की दीवाल ही तोड़े थी।

खयाल करना, जानने के लिए छोटे बच्चे जैसा सरल हो जाना जरूरी है। जानने के लिए फिर आंखों में वही आश्चर्य चाहिए जो छोटे बच्चों की आंखों में होता है–और वही निर्मलता, वही निर्दोष भाव! वही छोटी-से-छोटी चीज को देखकर अवाक हो जाना! वृक्ष से आता हुआ धूप का एक टुकड़ा–और बच्चा आश्चर्य-विमुग्ध हो जाता है। जैसे सोने की ढेरी मिल गयी हो!...कि हवाओं का गुजरना वृक्षों से और वृक्षों का नाच, वृक्षों से टकरा कर होता हुआ नाद–और छोटा बच्चा नाच उठता है, मग्न हो जाता है! फूल खिल जायें, कि तितलियां उड़ने लगें, कि कोयल पुकार ले–और छोटे बच्चे का सारा प्राण रस-विमुग्ध हो जाता है।

लेकिन तुम गुजर जाते हो ऐसे, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा। वृक्षों से छनती हुई धूप, उस धूप में छाया हुआ रहस्य तुम्हें आंदोलित नहीं करता। न नाचते हुए वृक्ष तुम्हें प्रभावित करते हैं, न आकाश के तारे तुम्हें छूते हैं। तुम अस्पर्शित गुजर जाते हो। तुमने चारों तरफ ज्ञान की इतनी राशियां इकट्ठी कर ली हैं, इतनी पतर् इकट्ठी कर ली हैं कि तुम्हारी जानकारी के कारण तुम्हारा आश्चर्य का भाव मर गया है। और आश्चर्य के भाव से ही कोई परमात्मा को अनुभव कर सकता है। आश्चर्यविमुग्ध जो है वही प्रार्थना में रत है। आश्चर्य प्रार्थना की शुरुआत है। और तुम्हारा ज्ञान आश्चर्य को मार डालता है, आश्चर्य की गर्दन घोंट देता है।

सरहपा को यह अनुभव हुआ होगा कि यह जो मैंने शास्त्रों से सीख लिया है, मेरा नहीं है, उधार है, बासा है। इसका कोई मूल्य नहीं है। मैंने तो जाना नहीं, किसी और ने जाना है। किसी और के जानने से क्या होगा? किसी और ने रोशनी देखी, इससे मैंने तो रोशनी नहीं देख ली। और किसी और ने भोजन किया तो मुझे पोषण न मिला। और कोई और चला तो मेरी मंजिल तो आयी नहीं। मैं चलूं तो मेरी मंजिल आये। मैं देखूं तो मुझे दर्शन हो। और मैं जल पिऊं तो मेरी प्यास बुझे। एक दिन यह बात समझ में आ गयी होगी।

यह बहुत बिरली घटना है। पंडित को यह बात समझ में नहीं आती। आए तो भी पंडित समझना नहीं चाहता। क्योंकि इसका मतलब हुआ कि वह इतने दिन तक, वषर्ो तक जो पांडित्य इकट्ठा किया था, उसे छोड़ना होगा। तो वे सारे वर्ष व्यर्थ गये! तो वे सारी चेष्टाएं, वह रात देर-देर तक जाग कर शास्त्रों के साथ सिर फोड़ना, शब्दों का संग्रह, और उन शब्दों और शास्त्रों के कारण मिली प्रतिष्ठा, अहंकार पर चढ़ी हुई पुष्पमालायें, वे सब व्यर्थ गईं! तो इतने दिन मूढ़ता में बीते! इतनी हिम्मत कम होती है।

सरहपा बड़े हिम्मत के आदमी रहे होंगे। उनके शब्दों से भी मालूम पड़ता है कि बड़े जानदार व्यक्ति थे। सदियां बीत गयीं, लेकिन उनके शब्दों में ऐसी अंगार है अभी भी, कि अभी भी तुम्हें तिलमिला देंगे। पांडित्य छोड़ा, नालंदा छोड़ा–और उस समय का एक बहुत फक्कड़ों का संप्रदाय था, वज्रयान, उसमें सम्मिलित हो गये। यह जमात ऐसी ही थी जैसी मेरी जमात है। इसमें जिनको तुम समादृत कहो, प्रतिष्ठित कहो, ऐसे लोग सम्मिलित नहीं होते थे। इसमें तो तुम उन्हीं को देख पा सकते थे, जिनको बगावती कहो, क्रांतिकारी कहो–जो लात मार दें सारी प्रतिष्ठा पर, समाज के सम्मान पर।

वज्रयान बड़े हिम्मतवर लोगों का समूह था। वज्रयान की मूल धारणा है कि जो है उसे ऐसे जाना जा सकता है, जैसे बिजली की कौंध होती है। एक क्षण में सब दिखाई पड़ जाता है। सत्य को जानने के लिए कोई क्रमिक आरोहण की जरूरत नहीं है, क्योंकि सत्य दूर नहीं है कि उस तक पहुंचने में समय लगे। सत्य तो यहीं मौजूद है; बिजली कौंध जाए, जैसे बिजली कौंध जाए, ऐसा अभी मिल सकता है, इसी क्षण मिल सकता है। साहस चाहिए। त्वरा चाहिए। तो जैसे कोई तलवार से एक ही झटके में गर्दन काट दे, ऐसे एक ही झटके में सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। यही मैं भी तुमसे कह रहा हूं: क्रमिक उपलब्धि की बात कि धीरे-धीरे मिलेगा,

कि जनम-जनम श्रम करेंगे तब मिलेगा, भ्रांत है। इसलिए भ्रांत है कि मौलिक रूप से मन यही चाहता है कि कल पर टाला जा सके। और क्रमिक विकास की धारणा में कल पर टालने की सुविधा है। कल मिलेगा, परसों मिलेगा, अगले जन्म में मिलेगा; आज तो नहीं मिलने वाला है। इसलिए आज तो तुम जो कर रहे हो करो, जैसे हो रहो, कल की फिक्र करो।

वज्रयान कहता है: अभी मिल सकता है, यहीं, इसी क्षण! या तो इसी क्षण या कभी नहीं। या तो अभी या कभी नहीं। और जब भी मिलेगा तब अभी ही मिलेगा। क्योंकि अभी के अतिरिक्त और कोई समय नहीं है। आज के अतिरिक्त कोई दिन नहीं। कल कभी आया है? जिस कल पर तुम टाले चले जाते हो, वह तुम्हारे टालने का उपाय है, और कुछ भी नहीं। तुम्हारी बेईमानी का एक ढंग है समय। समय तुम्हारी ईजाद है। फूल अभी खिल रहे हैं, वृक्ष अभी बढ़ रहे हैं, पक्षी अभी गीत गा रहे हैं, सूरज अभी निकला है–और तुम...तुम कल खिलोगे! और तुम कल गीत गाओगे! तुम कल उगोगे! कल कभी आता है? फूलों ने नहीं टाला कल पर, वृक्षों ने नहीं टाला कल पर, पक्षियों ने नहीं टाला कल पर, आदमी ने कल पर टाला है।

सिवाय आदमी के और कोई भविष्य में नहीं जी रहा है। सिर्फ इसीलिए आदमी भर परेशान है, और कोई परेशान नहीं है। वृक्ष अशांत नहीं हैं। तुम वृक्षों को मनोवैज्ञानिकों के पास जाते नहीं देखते हो। और न पशु-पक्षी अशांत हैं।

तुमने कभी किसी पशु-पक्षी के चेहरे पर तनाव की, बेचैनी की रेखायें देखीं? कभी कोई पशु-पक्षी जंगल में स्वाभाविक अवस्था में तुमने पागल होते सुना? हां कभी-कभी सर्कस के जानवर पागल हो जाते हैं, अजायबघर के जानवर पागल हो जाते हैं–वह आदमियों के कारण। उनका जुम्मा आदमियों पर है। अब कोई जानवर सर्कस में रहने को थोड़े ही बना है, कि अजायबघर में रहने को बना है।

ऐसा समझो कि पशुओं की दुनिया हो और उसमें अजायबघर हों जिनमें आदमी बंद हों, उनकी क्या हालत होगी? और पशु देखने आयें...हाथी चले आयें, घोड़े चले आयें, गधे चले आयें देखने आदमी को अजायबघर में, और आदमी घूम रहा है कटघरे में। जैसे आदमी पागल हो जाए, ऐसे तुम्हारे अजायबघरों में तुम्हारे जानवर कभी-कभी पागल हो जाते हैं। तुम्हारे कारण। लेकिन प्रकृति में पागलपन घटता ही नहीं। प्रकृति पागलपन को जानती नहीं। क्यों? अशांति ही नहीं है तो विक्षिप्तता कैसे होगी? अशांति नहीं है, क्योंकि समय ही नहीं है, तो अशांत कोई कैसे होगा?

इसे थोड़ा समझ लेना, तो ये सूत्र समझ में आने आसान हो जायेंगे।

अशांत होने के लिए समय चाहिए। अशांत होने के लिए अतीत का भाव चाहिए, भविष्य का भाव चाहिए। अतीत की याददाश्त चाहिए अशांत होने के लिए। वह जो दस साल पहले किसी ने गाली दी थी, वह अभी भी चुभनी चाहिए। गाली भी गई, देने वाले भी गये, समय भी गया, मगर तुम भीतर चुभाए बैठे हो। तुम उसे पकड़े बैठे हो। तुम उसे ढो रहे हो। वर्षों पहले की याददाश्तें तुम्हारे चित्त पर बोझिल होनी चाहिए तो तुम अशांत हो सकते हो। और भविष्य की कल्पना होनी चाहिए कि कल ऐसा करेंगे, परसों ऐसा करेंगे। योजनायें, कल्पनायें भविष्य की और स्मृतियां अतीत की–इन दोनों के बीच में ही पिसकर तुम पागल होओगे। इन दो चक्की के पाट के बीच जो फंस जाता है वह बच नहीं पाता।

वज्रयान कहता है: वर्तमान में जीयो। इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है। और जिस दिन तुम इस क्षण में जीयोगे, सहज हो जाओगे। वज्रयान सहज योग है।

वज्रयान क्यों नाम पड़ा: वज्र की भांति चोट करता है, और एक ही चोट में फैसला कर देता है।

सरहपा पालवंशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ईस्वी. ७६८-८०९ माना जाता है। पूर्वी प्रदेश के किसी राज्ञी नगरी के निवासी थे। इस नगरी का अब कोई पता नहीं चलता। कभी महानगरी रही होगी, अब तो खंडहर भी नहीं मिलते। ऐसी ही हमारी नगरियां भी खो जाएंगी। ऐसे ही जहां बस्तियां हैं, मरघट बन जाते हैं; जहां मरघट हैं वहां बस्तियां बन जाती हैं।

हड़प्पा की खुदाई में सात पर्तें मिलीं, कि हड़प्पा सात बार बसा और सात बार उजड़ा। एक-एक नगर के नीचे न-मालूम कितने नगर दबे पड़े होंगे। तुम जहां बैठे हो, वैज्ञानिक हिसाब लगाकर कहते हैं कि एक-एक आदमी के नीचे कम-से-कम दस-दस आदमियों की लाश गड़ी है। इतने आदमी इस जमीन पर हो चुके हैं। और मर चुके हैं कि सारी जमीन मरघट हो गयी है। अब तुम मरघट जाने से मत डरा करो। तुम जहां हो मरघट पर ही हो। मरघट के अलावा अब कोई जगह बची नहीं है। सब तरफ कब्रें ही कब्रें हैं। और एक-एक जगह न मालूम कितनी बार भवन बने, मंदिर उठे! और कितनी बार भवन गिरे, मंदिर गिरे! धूल में मिल गये। मगर आदमी बड़ा अदभुत है! वह इसी तरह के विचारों में पड़ा रहता है।

मैं मांडवगढ़ एक मित्र के साथ था। मांडवगढ़ कभी सात लाख लोगों की आबादी का नगर था। प्रमाण भी हैं कि सात लाख लोग रहे होंगे। खंडहर बताते हैं। इतने खंडहर हैं कि किसी जमाने की बड़ी महानगरी रही होगी। मांडवगढ़ उसका नाम था तब। इतनी बड़ी मस्जिदें हैं कि जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ नमाज पढ़ सकें। अब तो खंडहर ही हैं। इतनी-इतनी बड़ी धर्मशालायें हैं कि जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ ठहर सकें। इतनी बड़ी-बड़ी घुड़सालें हैं जिनमें हजारों घोड़े एक साथ रुक सकें, हजारों ऊंट एक साथ रुक सकें। किसी जमाने में जब ऊंटों से ही सारी यात्रा होती थी, मांडवगढ़ बड़ी प्रसिद्ध नगरी थी।

अब मांडवगढ़ नहीं बचा। अब उसका नाम है: मांडू। अब वहां केवल तीन सौ पांच आदमी रहते हैं। कुल आबादी! जिस होटल में मैं ठहरा था, बस वही एक होटल यात्रियों के लिए है। जिन मित्र के साथ ठहरा था, वह मित्र विचार कर रहे थे। इंदौर में उन्हें एक भवन बनाना है, कैसे बनाना है। वह सब ले आये थे नक्शे, मुझे दिखा रहे थे कि मैं चुन दूं, कि किस तरह का। स्थिति मुझे बड़ी विडंबना की मालूम पड़ी। मैंने उनसे कहा: जरा बाहर चलो। उन्होंने कहा: बाहर क्या होगा? मैंने कहा: जरा देखो, यह मांडू जो कभी मांडवगढ़ था, यहां बड़े महल थे। सब गिर गये! सब मिट्टी में पड़े हैं। और तुम इतनी उत्सुकता से महल बनाने के लिए आतुर हो! चौबीस घंटे तुम्हें एक ही धुन सवार है कि ऐसा महल बने कि इंदौर में कोई दूसरा महल न हो। सब गिर जायेंगे। लोगों का पता नहीं चलता, लोगों की बनाई हुई चीजों का पता नहीं चलता। मगर इन पर ही हम सब कुछ लगा देते हैं। और जो वास्तविक धन है उसकी तलाश ही नहीं हो पाती।

"राज्ञी' नगरी की बड़ी खोज की गयी है, लेकिन कहीं पता भी नहीं चलता कि यह नगरी कभी थी भी। निशान भी नहीं मिलते, सबूत भी नहीं रह गये हैं। ऐसे ही सब खो जाता है। नहीं जागोगे, नहीं सम्हलोगे तो ऐसा ही कुछ व्यर्थ करते रहोगे, जिसके मिट्टी में निशान भी नहीं छूटेंगे।

जागो! जागरण की यही बेला है। सरहपा जैसे जागे वैसे ही तुम भी जागो।

सरहपा का स्वर क्रांति का स्वर है। समस्त जानने वालों का स्वर क्रांति का ही स्वर रहा है। जहां क्रांति न हो, समझना ज्ञान नहीं है। ज्ञान अग्नि की भांति है–प्रज्वलित अग्नि की भांति! और जो ज्ञान से गुजरेगा वह अग्नि में जलकर कुंदन हो जाता है। और बिना जले कोई भी कुंदन नहीं होता। बिना आग से गुजरे, बिना अग्नि-परीक्षा दिए कोई भी शुद्ध नहीं होता है।

लेकिन लोगों को धर्म के साथ क्रांति के जोड़ने की बात ठीक नहीं लगती। धर्म के साथ तो लोग शांति को जोड़ते हैं, क्रांति को नहीं जोड़ते। धर्म के साथ तो लोग सांत्वना को जोड़ते हैं, सत्य को नहीं जोड़ते। धर्म के साथ

संप्रदाय को जोड़ते हैं, साधना को नहीं जोड़ते। धर्म संप्रदाय नहीं है, साधना है। धर्म सांत्वना नहीं है, सत्य है। धर्म शांति नहीं है, क्रांति है। यद्यपि क्रांति से अपूर्व शांति मिलती है, लेकिन वह गौण है। वह लक्ष्य नहीं है।

और कोई भी व्यक्ति जो दकियानूसी है, धार्मिक नहीं होता, न हो सकता है। जो परंपराग्रस्त है, धार्मिक नहीं होता। धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। क्रांति की कहीं कोई परंपरा होती है?

धर्म लीक पर नहीं चलता–अपनी पगडंडी खोजता है, अपना मार्ग बनाता है। लीक पर तो भेड़ें चलती हैं, भीड़ में तो भेड़ें चलती हैं। भेड़चाल कभी किसी व्यक्ति को आत्मवान नहीं बनाती। निजता की घोषणा चाहिए, रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए। अंधविश्वासों से बाहर आने का साहस चाहिए। और ध्यान रखना, अंधविश्वासों में बड़ी सुरक्षा है! झंझट नहीं है। रूढ़ि को मानने में बड़ी सुविधा है, क्योंकि और सभी भी उसी को मानते हैं। सांत्वना मिलती है। जब सभी लोग किसी बात को मानते हैं तो खोजने की झंझट नहीं रह जाती। मुफ्त हमने भी मान लिया। जिस भीड़ में संयोग से पड़ गये, हिंदुओं की तो हिंदू और मुसलमानों की तो मुसलमान...जिस भीड़ में संयोग से पड़ गये वही हो गये। और संयोग की ही बात है कि तुम किस भीड? में पड़ गये हो।

लेकिन सत्य इतना सस्ता नहीं है। सत्य तो केवल उनको मिलता है जो खोजते हैं। और खोजने वाला कभी भी भेड़चाल से नहीं चल सकता। खोजने वाले को तो अकेले चलना होगा। एकला चलो रे! उसे तो अभियान पर निकलना होगा। उसे तो बहुत-सी मान्यताओं के विपरीत जाना होगा। उसे तो बहुत-सी अंधी धारणाओं का खंडन करना होगा।

और तुम सरहपा के वचनों में इसी तरह का अदभुत खंडन पाओगे। लेकिन खंडन लक्ष्य नहीं है। खंडन का इरादा इतना ही है, ताकि गलत का खंडन हो जाये और सही शेष रह जाये। क्रांतिवादी नकारात्मक होता है। उसके स्वर में चोट होती है तलवार की। वह तोड़ने को आतुर होता है। वह तब तक तोड़ता ही जाता है जब तक ऐसी कोई चीज न आ जाए जो तोड़ी ही नहीं जा सकती। नेति-नेति उसकी व्यवस्था होती है। वह कहता है: यह भी नहीं, यह भी नहीं। तुम ऐसा स्वर पाओगे सरहपा में कि वह कहेंगे: यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं! घबड़ा मत जाना। उनके निषेध से बेचैन मत हो जाना।

नकार तो केवल विधायक को खोजने की विधि है। विधायक तो तभी मिलता है जब हम सब निषेध कर चुके और अब निषेध करने को न बचा, तब जो शेष रह जाता है उस शेष को जानना मुक्ति है, निर्वाण है।

–ओशो

सहज-योग

यारि

एक बुद्धपुरुष का जन्म इस पृथ्वी पर परम उत्सव का क्षण है। बुद्धत्व मनुष्य की चेतना का कमल है। जैसे वसंत में फूल खिल जाते हैं, ऐसे ही वसंत की घड़ियां भी होती हैं पृथ्वी पर, जब बहुत फूल खिलते हैं, बहुत रंग के फूल खिलते हैं, रंग-रंग के फूल खिलते हैं। वैसे वसंत आने पृथ्वी पर कम हो गए, क्योंकि हमने बुलाना बंद कर दिया। वैसे वसंत अपने-आप नहीं आते, आमंत्रण से आते हैं। अतिथि बनाए हम उन्हें तो आते हैं। आतिथेय बनें हम उनके तो आते हैं।

प्रकृति का वसंत तो जड़ है, आता है, जाता है; लेकिन आत्मा के वसंत तो बुलाए जाते हैं तो आते हैं। हमने बुलाना ही बंद कर दिया। हमने प्रभु को पुकारना ही बंद कर दिया। पुकारते नहीं प्रभु को, आता नहीं प्रभु, तो फिर हम कहते हैं–प्रभु है कहां? प्रमाण क्या है उसका? बिना बुलाए उसका कोई भी प्रमाण नहीं। बिना उसके आए उसका कोई भी प्रमाण नहीं। और जब आता है तो बाढ़ की तरह आता है। एक प्रमाण नहीं अनंत प्रमाण लेकर आता है। स्वतः प्रमाण होकर आता है। जिस व्यक्ति ने भी कभी उसे पुकारा है, पुकार खाली नहीं गयी है।

यारी की पुकार भी खाली नहीं गयी। यारी भी भर उठे–बड़ी सुगंध से! और लुटी सुगंध! उनके गीतों में बंटी सुगंध! और जब भी किसी व्यक्ति के जीवन में परमात्मा का आगमन होता है तो गीतों की झड़ी लग जाती है; उस व्यक्ति की श्वास-श्वास गीत बन जाता है। उसका उठना-बैठना संगीत हो जाता है। उसके पैर जहां पड़ जाते हैं वहां तीर्थ बन जाते हैं।

ऐसे ही एक अदभुत व्यक्ति के साथ आज हम यात्रा शुरू करते हैं। यारी का जन्म हुआ दिल्ली में। नाम था: यार मुहम्मद। फिर मुहम्मद तो जल्दी ही खो गया; क्योंकि जिसे परमात्मा को पुकारना हो, वह हिंदू नहीं रह सकता, वह मुसलमान भी नहीं रह सकता, वह ईसाई भी नहीं रह सकता। परमात्मा को पुकारने के लिए कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। और पहली शर्त है–विशेषण छोड़ देने पड़ते हैं, आग्रह छोड़ देने पड़ते हैं, मंदिर और मस्जिद छोड़ देने पड़ते हैं। तभी तो खुद मंदिर बनोगे, खुद मस्जिद बनोगे। जब तक बाहर के मंदिर और मस्जिद को पकड़े रहोगे, याद ही न आएगी कि अपने भीतर भी एक मंदिर था। और उस मंदिर में न कभी दीप जले, और उस मंदिर में न कभी धूप जली। उस मंदिर में कभी नाद न हुआ। अपने भीतर भी एक मस्जिद थी, जिसमें कभी अजान न उठी, जिसमें कभी नमाजें न पढ़ी गईं, जहां अंधेरा था तो अंधेरा ही रहा।

बाहर के मंदिर-मस्जिदों में जो भटका है, वह भीतर के असली मंदिर और मस्जिद से वंचित रह जायेगा। जिसने नजर बाहर रखी, वह कभी परमात्मा को नहीं पा सकेगा। और धन को खोजने वाले भी बाहर खोजते हैं, और ध्यान को खोजने वाले भी बाहर खोजते हैं। धन के खोजने वालों को क्षमा किया जा सकता है, ध्यान के खोजनेवालों को क्षमा नहीं किया जा सकता। धन तो बाहर है, ध्यान तो बाहर नहीं है। पद खोजते हो, प्रतिष्ठा खोजते हो; बाहर ही खोजनी पड़ेगी। परमात्मा खोजना है। तो भीतर खोजना पड़ेगा। और भीतर कोई हिंदू है, कि भीतर कोई मुसलमान है, कि भीतर कोई ईसाई है, कि कोई जैन है, कि कोई बौद्ध है, कि कोई सिक्ख है, कि पारसी है? भीतर तो तुम निर्मल हो, निराकार हो। भीतर तो तुम विशेषण-रहित हो–न तुम ब्राह्मण, न तुम शूद्र, न तुम स्त्री, न तुम पुरुष, न तुम गोरे, न तुम काले। भीतर तो तुम बच्चे भी नहीं, जवान भी नहीं, बूढ़े भी नहीं। भीतर तो तुम शाश्वत हो, समयातीत हो कालातीत हो। और भीतर का ही स्वाद मिले तो परमात्मा का स्वाद मिले।

सो जल्दी ही यार मुहम्मद का मुहम्मद कहां खो गया पता नहीं! अब तो लोग अनुमान लगता हैं कि यार मुहम्मद नाम रहा होगा। यह अनुमान है, ऐतिहासिक कोई प्रमाण नहीं। ऐसा ही होता है। ये तो बाहर के रंग हैं। यह तो एक उसकी वर्षा का झोंका आया कि ये रंग बह जाएंगे।

शिष्य थे वीरू फकीर के। वीरू मुसलमान नहीं हैं। वीरू तो जन्में थे हिंदू घर में। लेकिन जब कोई ज्योति जलती है तो सब तरह के दीवाने चले आते हैं, भांति-भांति के परवाने चले आते हैं! उस मदमस्ती में कौन देखता है–कौन हिंदू, कौन मुसलमान वीरू खुद एक मुसलमान फकीर स्त्री के शिष्य थे–बावरी साहिबा के।

संतों का जगत कुछ और ही है। वहां बाहर के भेदों का कोई मूल्य नहीं है। यह स्त्री बावरी साहिबा भी बड़ी अदभुत स्त्री थी। स्त्रियां तो थोड़ी ही हुई हैं जो अंगुलियों पर गिनी जा सकें, उनमें बावरी भी एक है। उसका तो नाम भी पता नहीं। ऐसी पागल हुई प्रभु के प्रेम में कि बस इतनी ही याद रह गयी कि बावरी थी, कि दीवानी थी, कि पागल थी। बावरी थी मुसलमान–संस्कारगत, जन्मगत। शिष्य थे वीरू–जन्मगत, संस्कारगत हिंदू। प्रशिष्य थे यारी साहब, फिर मुसलमान। ऐसे यारी में दो धाराओं का मिलन हुआ। ऐसे यारी में संगम हुआ। और यारी के वचनों में जगह-जगह उस संगम की झलक मिलेगी। पहले मुहम्मद गया, फिर यार थे, यार से यारी हो गए। वह बात भी समझ लेनी चाहिए। या का अर्थ होता है–मित्र; यारी का अर्थ होता है–मैत्री, मित्रता। जब अहंकार खो जाए तो मित्र मैत्रेयी हो जाता है, मित्र मित्रता हो जाता है। जब अहंकार खो जाए तो फूल खो जाता है, सुवास रह जाती है। फिर तुम पकड़ नहीं सकते इस सुवास को, मुट्ठी में बांध नहीं सकते इस सुवास को। न उसका कोई रूप है न रंग है। ऐसी ही मैत्री है।

बुद्ध ने तो कहा है कि बुद्ध पुरुष कल्याण मित्र होते हैं। यारी एक कल्याण मित्र हैं।

मगर एक और अनूठी बात की यारी से यार शब्द भी खो गया। मित्र में भी थोड़ी-सी सीमा है। मित्रता असीम है। मित्र में केंद्र है, कहीं छिपा मैं है। मित्रता में मैं तो गया, बिलकुल गया! प्रेम अपनी परिशुद्धि में प्रकट होता है। मित्रता और मैत्री में भी थोड़ा फर्क है। मित्रता होती है दो व्यक्तियों के बीच; एक संबंध है मित्रता। मैत्री संबंध नहीं समाधि की अवस्था है। मैत्री दूसरा न भी हो तो भी चलती है। तो भी बहती है। मित्रता के लिए दूसरा जरूरी है, मैं और तू का नाता जरूरी है। मित्रता में द्वैत शेष रहता है। मैत्री में द्वैत भी अशेष हो सकता है।

मैत्री का अर्थ है: वृक्ष हो तो, चट्टान हो तो, आकाश में बादल हो तो, कोई भी न हो तो, तो भी सुवास उड़ती रहती है; तू से नहीं बंधी है। जब मैं ही न रहा तो तू कैसे रहेगा? मैं और तू तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर गया मैं उधर गया तू। तब एक सहज प्रेम का प्रवाह रह जाता है–निरुद्देश्य, किसी पते पर निवेदित नहीं। प्रेम की पाती तो लिखी जाती है, लेकिन किसी पते पर नहीं। और जब तुम बिना किसी पते के प्रेम की पाती लिखते हो तो परमात्मा तक पहुंचती है।

मैत्री मित्रता की पराकाष्ठा है। छूट गए सीमाओं के बंधन, गिर गईं जंजीरें मैत्री ने पंख फैला दिए, उड़ गई आकाश में!...प्रेम का चरम रूप है, इसलिए नाम प्यारा है! यार मुहम्मद से रह गए यार; फिर यार भी खो गया, बची यारी। और इसलिए मैं कहता हूं:

गिरने देना यारी के वचनों को जैसे वर्षा की बूंदाबांदी हो। घिरने देना उनके मेघ को तुम्हारे ऊपर! नहा लेना! यही वस्तुतः गंगा का स्नान है। संतों की वाणी बरस जाए तुम पर तो देह ही नहीं शुद्ध हो जाती, प्राणों के प्राणों तक भी शुद्धि पहुंच जाती है। तन ही नहीं नहा लेता, मन ही नहीं नहा लेता–तन और मन के पीछे छिपा हुआ साक्षी भी, सारी धूल झाड़ कर उठ बैठता है। नींद टूट जाती है। और तुम्हारे भीतर जो कली न मालूम कितने दिन से बे-खिली पड़ी थी, खिल उठती है। खिले हुए फूलों के संग-साथ का यही तो अर्थ है। खिले हुए

फूलों के संग-साथ का यही तो प्रयोजन है कि तुम्हें भी याद आ जाए कि तुम भी खिलने को आए थे यहां और बिना खिले मत लौट जाना। तुम्हें भी याद आ जाए कि खिलना तुम्हारी भी क्षमता है, तुम्हारा भी स्वभाव है।

ऐसे करना यारी का सत्संग!

सूत्र: बिरहिनी मंदिर दियना बार।

हम सब विरह में हैं, हमें पता हो या न पता हो। बीमार तो बीमार है, बीमार को पता हो या न पता हो। बीमारी महीनों चलती है और जब तक कोई चिकित्सक न मिल जाए, ठीक-ठीक निदान भी नहीं हो पाता कि बीमारी क्या है। नहीं मिला था चिकित्सक तो भी बीमारी तो चलती थी।

रूस में एक बड़े वैज्ञानिक किरिलियान ने एक नए किस्म की फोटोग्राफी का आविष्कार किया है, जिसमें बीमारी के आने के छह महीने पहले बीमारी का पता चल जाता बीमार होने के छह महीने पहले अभी बीमार को भी छह महीने बाद पता चलेगा और बीमार को भी पता चलते-चलते जब महीने-दो महीने बीत जाएंगे, तब यह चिकित्सक के पास जाएगा। लेकिन किरिलियान फोटो से छह महीने पहले पता चल जाता है कि किस तरह की बीमारी, किस भांति की बीमारी पकड़ने वाली है। कहीं बीमारी ने पकड़ ही लिया है किसी गहरे तल पर। उस गहरे तल से आते-आते तुम्हारे चेतन तक, अचेतन से चेतन की यात्रा करते-करते समय लगेगा। फिर कुछ दिन तो तुम टालोगे। कुछ दिन तो तुम मन समझा लोगे कि यों ही होगा, कि सर्दी-जुखाम है, कि सर दर्द है, कि थकान है, कि काम ज्यादा है, कि कल रात ठीक से सो नहीं पाए। टालते रहोगे कुछ बहाने खोज कर।

और कुछ बीमारियां तो ऐसी हैं कि आदमी जिंदगीभर टाल सकता है। और कुछ बीमारियां तो इतनी सूक्ष्म हैं कि टालने की जरूरत ही नहीं पड़ती, पता ही नहीं चलता है। उतनी सूक्ष्म बुद्धि ही कम लोगों के पास है। उतनी प्रकीर्ण संवेदनशीलता ही बहुत कम लोगों के पास है। फिर शरीर की बीमारियों की बात हुई यह तो; मन की बीमारियां और भी गहरी हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि चार में से तीन लोग मानसिक रूप से बीमार हैं। चार में से तीन तो बड़ी संख्या हो गयी! और मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि चौथा स्वस्थ है, यह भी हम गारंटी से नहीं रह सकते। तीन तो निश्चित बीमार हैं, चौथा संदिग्ध है। यह तो खूब बात हुई! इसका तो अर्थ हुआ कि सारी मनुष्यता बीमार है! और यह तो मन की बीमारी की बात है; फिर उसके गहरे आत्मा की बीमारी है। जब मन में चार में से तीन बीमार हैं और चौथा संदिग्ध है, तो आत्मा के संबंध में तो निश्चित मानो कि चारों बीमार हैं और चारों की बीमारी सुनिश्चित है। उस बीमारी का नाम विरह है।

बिरहिनी मंदिर दियना बार! मंदिर से अर्थ है–तुम्हारी देह से। क्योंकि इसी मंदिर में तो परमात्मा विराजमान है। कहां भागे जाते हो? किसे खोजने निकले हो? अनंत से तो खोज रहे हो, मिला नहीं। जरूर कोई बुनियादी चूक हो रही है। जो भीतर हो, उसे बाहर खोजोगे तो कैसे पाओगे? मंदिर हो तुम!

और तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित तुम्हारी देह की निंदा में संलग्न हैं। सदियों से उनका एक ही काम है कि तुम्हारी देह की निंदा करें, कि तुम्हें देह का शत्रु बनाएं कि तुम्हें बताएं कि देह के कारण ही तुम परमात्मा से टूटे हो। झूठी यह बात है, सरासर झूठी यह बात है, सौ प्रतिशत झूठी यह बात है।

तुम्हारी देह परमात्मा के विपरीत नहीं है। तुम्हारी देह को तो परमात्मा ने अपना आवास बनाया है। तुम्हारी देह मंदिर है, पूजा का स्थल है, काबा है, काशी है! तुम्हारी देह को दबाना मत, सताना मत। तुम्हारी देह को तोड़ने में मत लग जाना। हालांकि यही तुम्हें सिखाया गया है, यही जहर तुम्हें पिलाया गया है। दूध के साथ, घुटी के साथ, तुम्हें यह जहर पिलाया गया है कि देह पाप है।

और जिसको यह समझ में आ गई बात, जिसके भीतर यह बात बहुत गहराई में बैठ गई, यह नासमझी कि देह पाप है, वह परमात्मा से कभी भी न मिल सकेगा। क्योंकि देह से डरा-डरा बाहर-बाहर रहेगा और देह के भीतर तो प्रवेश कैसे करेगा? पाप में कहीं प्रवेश किया जाता है!

देह उसकी भेंट है, पाप नहीं। देह पुण्य है, पाप नहीं। देह पवित्र है, अपवित्र नहीं। देह का सम्मान करो। देह का सत्कार करो। और तभी तो तुम प्रवेश कर पाओगे। देह से मैत्री बनाओ, यारी साधो! और धीरे-धीरे देह में भीतर सरको।

योग तैयार करता है तुम्हारी देह को, ताकि तुम भीतर सरक सको; तुम्हारी देह के द्वार खोलता है। और ध्यान, तुम्हें देह के भीतर बैठने की कला सिखाता है। और जिसने देह के द्वार खोल लिए योग से और जिसने ध्यान से भीतर बैठने की कला सीख ली, पा लिया उसने परमात्मा को! सदा परमात्मा ऐसे ही पाया गया है।

...मंदिर दियना बार! आत्म-ज्योति भीतर जलानी है। यह दीया तुम्हारी देह में जलना है। जलाना है, कहना शायद ठीक नहीं–जल ही रहा है, पहचानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है।

यह तुम्हारी देह, यह तुम्हारा दिल धड़कता है जो भीतर, इसी के अंतरतम में परमात्मा विराजमान है। तुम झूठे फूलों में भटके हो, जब कि सच्चा फूल तुम्हारे भीतर खिलने को राजी है। तुम्हारी झील में नील-कमल खिलने को राजी है; तुम मांगते फिरते हो प्लास्टिक के फूलों को! बाजारों में खरीद रहे हो कागज के फूलों को!

उतरो देह की सीढ़ियों से, पाओगे हृदय को। वह तुम्हारा अंतरगृह है। फिर उतरो हृदय की सीढ़ियों से और तुम पाओगे उस अमृत के स्रोत को–जिसके बिना जीवन उदास है, जिसके बिना जीवन संताप है, जिसके बिना जीवन विषाद है!

बिरहिनी मंदिर दियना बार!

–ओशो

बिरहिनी मंदिर दियान बार

दुल्हन

मनुष्य तो बांस का एक टुकड़ा है–बस, बांस का! बांस की एक पोली पोंगरी । प्रभु के ओंठों से लग जाए तो अभिप्राय का जन्म होता है, अर्थ का जन्म होता है, महिमा प्रगट होती है। संगीत छिपा पड़ा है बांस के टुकड़े में, मगर उसके जादुई स्पर्श के बिना प्रकट न होगा। पत्थर की मूर्ति भी पूजा से भरे हृदय के समक्ष सप्राण हो जाती है। प्रेम से भरी आंखें प्रकृति में ही परमात्मा का अनुभव कर लेती हैं।

सारी बात परमात्मा से जुड़ने की है। उससे बिना जुड़े सब है और कुछ भी नहीं है। वीणा पड़ी रहेगी और छंद पैदा न होंगे। हृदय तो रहेगा, श्वास भी चलेगी, लेकिन प्रेम की रसधार न बहेगी। वृक्ष भी होंगे लेकिन फूल न खिलेंगे; जीवन में फल न आएंगे। परमात्मा से जुड़े बिना कोई परितृप्ति नहीं है। परमात्मा से जुड़े बिना लंबी-लंबी यात्रा है, बड़ी लंबी अथक यात्रा है; लेकिन मरुस्थल और मरुस्थल! मरूद्यानों का कोई पता नहीं चलता।

आज हम एक अपूर्व संत दूलनदास के साथ तीर्थयात्रा पर निकलते हैं। दूलनदास अब केवल बांस के टुकड़े नहीं हैं, बांसुरी हो गए हैं। कृष्ण के स्वर उनके प्राणों को तरंगित कर रहे हैं। अब वे केवल सागर नहीं हैं। मंथन हो चुका, अमृत प्रकट हुआ है। कहां खारा सागर और कहां मंथन से प्रकट हुआ अमृत! दोनों में जोड़ भी नहीं बैठता। गणित और तर्क काम नहीं आते। अब उनकी वीणा मुर्दा नहीं है, आत्मवान हो उठी है।

दूलनदास का वादन शुरू हो गया है। बांसुरी सप्राण हो उठी है। दूलनदास के हृदय में परमात्मा नाच रहा है। अगर उनकी दो-चार बूंदें भी तुम्हारे हृदय पर पड़ गईं तो तुम कुछ के कुछ हो जाओगे; फिर तुम वही न रहोगे जो थे। तुम्हारी दृष्टि बदलेगी और जब दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है। तुम्हारे भीतर भी मोती पैदा हो सकते हैं। दूलनदास के स्वाति नक्षत्र में बरसती बूंदों को अपने हृदय तक पहुंचने दो। खोलो अपने हृदय की सीप को। सुनो ही मत, पियो। क्योंकि ये बातें नहीं हैं जो सुनकर पूरी हो जाएं; ये जीवन को रूपांतरित करने के सूत्र हैं। ये क्रांति के सूत्र हैं। यह पारस का स्पर्श है; लोहा सोना हो सकता है।

छोड़ना मत यह अवसर। मुश्किल से आता है स्वाति का नक्षत्र। मुश्किल से बरसती है अमृत की बूंद। कहीं ऐसा न हो कि सीप तुम्हारी बंद ही रह जाए। बूंद गिरे भी और तुम्हारे हृदय तक न पहुंचे। वर्षा हो भी और तुम प्यासे रह जाओ।

दूलनदास के साथ थोड़े दिन तक की यह यात्रा तुम्हारे जीवन में अविस्मरणीय हो सकती है। उनकी रोशनी में तुम अगर चल लो तो तुम्हें अपनी रोशनी की याद आ सकती है।

यही तो सदगुरु का सत्संग है। तुम्हारे पास अपना दीया नहीं है लेकिन किसी का दीया जला है। रात अंधेरी है, अमावस है। जिसका दीया जला है उसके साथ तुम चार कदम चल लो तो तुम्हारा पथ भी प्रकाशित होता है। और न केवल यही कि तुम्हारा पथ प्रकाशित होता है, तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि यही संभावना मेरी भी है, ऐसा ही दीया मैं भी हूं। तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि जैसा आज मैं अंधेरा हूं, कल सदगुरु भी अंधेरा था। आज सदगुरु प्रकाशित हुआ है, कल मैं भी प्रकाशित हो सकता हूं। जो मेरा वर्तमान है वही तो कल सदगुरु का अतीत था। जो आज उसका वर्तमान है, कल मेरा भविष्य हो सकता है।

उड़ते हुए पक्षी को देखकर, जो पक्षी कभी न उड़ा हो उसके भी पंख फड़फड़ा उठते हैं। वृक्ष को खिलते हुए देखकर जो वृक्ष कभी न खिला हो उसके प्राणों में भी सुगबुगाहट शुरू हो जाती है। झरने को बहते देखकर सागर की तरफ जो सरोवर सदा अपने में बंद रहा हो उसके भीतर भी एक व्याकुलता उठती है, एक विरह-वेदना उठती है, एक पुकार उठती है कि चलूं, बढ़ूं, कि मैं भी खोजूं। खोजूं उसे जिसे पाकर समग्र हो जाऊं। खोजूं उसे जिसे पाकर विराट हो जाऊं।

ये थोड़े-से कदम जो दूलनदास के साथ लेने हैं, बहुत संभल-संभल कर लेना। ये पूजन के क्षण हैं। और अगर जिन्होंने जाना है उनके पास बैठकर भी जानना न घटे, जिन्होंने पाया है उनके पास बैठकर भी पाने की प्रबल पुकार न उठे, प्यास न जगे–तो बड़े अभागे हो। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है। सत्य की तरफ जाने का सत्संग के अतिरिक्त और कोई द्वार ही नहीं है।

सदगुरु संस्पर्श है अज्ञात का। सदगुरु साक्षात है अज्ञात का। दृश्य है अदृश्य के लिए। परिचित है अपरिचित का। दूर-दूर की ध्वनि है लेकिन तुम्हारे कानों के पास, तुम्हारे हृदय के पास गूंजती हुई। लेकिन तुम्हारे विरोध में कोई मुक्ति संभव नहीं है, तुम्हारा सहयोग चाहिए।

दूलनदास तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले सकते हैं, लेकिन तुम ही दोगे तो; स्वेच्छा से दोगे तो! सत्य थोपे नहीं जाते, आरोपित नहीं किए जाते, आमंत्रित किए जाते हैं। सत्य का स्वागत करना होता है बंदनवार बांधकर, दीए जलाकर, आरती सजाकर। आरती सजाकर सुनना इन वचनों को। ये बड़े प्रीति-रस पगे हैं। बंदनवार बांधकर, हृदय के द्वार खोलकर, पूजा का थाल सजाकर इन अमृत-वचनों को अतिथि की भांति अपने अंतर्गृह में ले जाना। ये बीज बनेंगे, इनसे बड़े वृक्ष होंगे, इनसे तुम्हारी पृथ्वी और आकाश के बीच सेतु बनेगा।

कहते हैं दूलन–

जग में जै दिन है जिंदगानी

ज्यादा देर की जिंदगी नहीं है जग में, थोड़े-से दिन की है; बहुत थोड़े दिन की है। अंगुलियों पर गिने जाएं इतनी छोटी है जिंदगी। और अगर यह छोटी-सी जिंदगी भी कैसे व्यर्थ के कामों में व्यतीत हो जाती है!

अगर आदमी साठ साल जिंदा रहे तो बीस साल तो सोने में ही बीत जाते हैं। बचे बीस साल, रोटी-रोजी कमाने में–दुकान से घर, घर से दुकान। बचे बीस साल! अद्‌भुत आदमी है! इसलिए दूलनदास कहते हैं, "दुनिया है हैरानी'। कोई ताश खेल रहा है, कोई फिल्म देख रहा है, कोई होटल में बैठकर गपशप मार रहा है। और पूछो कि क्या कर रहे हो तो लोग कहते हैं, समय काट रहे हैं। इतनी छोटी जिंदगी, समय इतना बहुमूल्य कि जो क्षण एक बार गया, गया; फिर लौटता नहीं, उसे भी काट रहे हो?

जब तुम कहते हो समय काट रहे हैं, तो तुम क्या सोचते हो, जानते हो? तुम यह कहते हो, जिंदगी काट रहे हैं। जब तुम कहते हो समय काट रहे हैं तब तुमने याद किया? तुमने परमात्मा की शिकायत की। तुमने यह कहा कि क्या जिंदगी दे दी मुझे! यह क्या व्यर्थ का समय दे दिया, काटे नहीं कटता! जब तुम कहते हो, समय काट रहा हूं, तब तुम धन्यवाद नहीं दे रहे परमात्मा को, शिकायत कर रहे हो। इतना अपूर्व जीवन मिले, धन्यवाद तो दूर, हमारे हृदय शिकायतों से भरे हैं। जहां एक-एक क्षण अमृत की वर्षा हो सकती है और जहां एक-एक क्षण अनाहत के नाद में बीत सकता है–वहां समय काट रहे हो!

जग में जै दिन है जिंदगानी

थोड़े से दिन की तो जिंदगी है! चार दिन की तो जिंदगी है! ऐसे तो बह जाती है जैसे पानी की लहर। फिर भी होश नहीं आता। मौत रोज-रोज द्वार पर दस्तक देती है, उसकी दस्तक रोज-रोज तीव्र होती जाती है; फिर भी होश नहीं आता।

ऐसे मनुष्य के मन के सम्मोहन हैं। और तुम्हारा अहंकार खड़िया की खींची हुई लकीर है। खड़िया की लकीर तो कुछ होती है, तुम्हारा अहंकार उतना भी नहीं है। अहंकार सिर्फ एक मानी हुई भ्रांति है जो बचपन से हमें समझायी गई है कि तुम हो; तुम अलग हो; कि तुम भिन्न हो; कि तुम्हें कुछ दुनिया में करके दिखाना है; कि तुम्हें नाम छोड़ जाना है; कि इतिहास में तुम्हें अपने चिह्न छोड़ जाने हैं, ऐसे ही मत मर जाना, कि तुम कुलीन

घर में पैदा हुए हो, अपने बाप-दादों का नाम रोशन करना है। हजार-हजार ढंग से हमने हर बच्चे को यह सिखाया है कि तू भिन्न है और तुझे अपनी भिन्नता का हस्ताक्षर इस पृथ्वी पर सदा के लिए छोड़ जाना है। यह लक्ष्मणरेखा गहरी हो गई है। इस लक्ष्मणरेखा को मिटाने के लिए कुछ उपाय खोजने जरूरी हैं।

गुरु के चरणों में सिर रखना बहुत उपायों में एक उपाय है और बहुत कारगर उपाय है। क्योंकि मंदिर की मूर्ति के सामने भी तुम सिर रख सकते हो लेकिन कारगर नहीं होगा। क्योंकि मंदिर पत्थर की मूर्ति है, उसके सामने झुकने में तुम्हारे अहंकार को चोट नहीं लगती। जब तुम अपने ही जैसे मांस-मज्जा के बने हुए मनुष्य के सामने झुकते हो तब चोट लगती है। पत्थर के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। आकाश में बैठे परमात्मा के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण, राम, बुद्ध, अतीत में हुए सत्पुरुषों के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुम्हारे सामने जो मौजूद हो, तुम्हारे जैसा हो, भूख लगती हो, प्यास लगती हो, सर्दी-धूप लगती हो, बीमार होता हो, बूढ़ा होता हो, ठीक तुम जैसा हो, उसके सामने झुकने में बड़ी अड़चन होती है। अहंकार कहता है इसके सामने क्यों झुकूं? यह तो मेरे जैसा ही है। मुझमें-इसमें भेद क्या है? अहंकार बचाव करता है। इसलिए जीवित सदगुरु के सामने जो झुक गया उसका अहंकार तत्क्षण गिर जाता है। मगर यह मत सोचना कि सिर्फ झुकने से गिर जाता है। झुकना औपचारिक भी हो सकता है–जैसा इस देश में है।

इस देश में झुकना औपचारिक हो गया है। लोग झुक जाते हैं, झुकने का कोई खयाल ही नहीं आता। झुकते रहे हैं। जो आया उसके सामने झुकते रहे हैं। झुकना एक शिष्टाचार हो गया है। जैसे पश्चिम में लोग हाथ मिलाते हैं, ऐसे यहां लोग पैर पड़ लेते हैं। जैसे नमस्कार करते हैं ऐसा पैर पड़ लेते हैं। नमस्कार भी औपचारिक हो गई है; होनी तो नहीं थी, जिन्होंने खोजी थी, बड़े विचार से खोजी थी।

–ओशो

प्रेम रस रंग औढ चदरियां

गूलाल

आंखें हों तो परमात्मा प्रति क्षण बरस रहा है। आंखें न हों तो पढ़ो कितने ही शास्त्र, जाओ काबा, जाओ काशी, जाओ कैलाश, सब व्यर्थ है। आंख है, तो अभी परमात्मा है..यहीं! हवा की तरंग-तरंग में, पक्षियों की आवाजों में, सूरज की किरणों में, वृक्षों के पत्तों में!

परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है। हो भी नहीं सकता। परमात्मा एक अनुभव है। जिसे हो, उसे हो। किसी दूसरे को समझाना चाहे तो भी समझा न सके। शब्दों में आता नहीं, तर्को में बंधता नहीं। लाख करो उपाय, गाओ कितने ही गीत, छूट-छूट जाता है। फेंको कितने ही जाल, जाल वापस लौट आते हैं। उस पर कोई पकड़ नहीं बैठती। ऐसे सब जगह वही मौजूद है। जाल फेंकने वाले में, जाल में..सब में वही मौजूद है। मगर उसकी यह मौजूदगी इतनी घनी है और इतनी सनातन है, इस मौजूदगी से तुम कभी अलग हुए नहीं, इसलिए इसकी प्रतीति नहीं होती।

जैसे तुम्हारे शरीर में खून दौड़ रहा है, पता ही नहीं चलता! तीन सौ वर्ष पहले तक चिकित्सकों को यह पता ही नहीं था कि खून शरीर में परिभ्रमण करता है। यही ख्याल था कि भरा हुआ है; जैसे कि गगरी में पानी भरा हो। यह तो तीन सौ वर्षो में पता चला कि खून गतिमान है।

हजारों वर्ष तक यह धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है। जो लोग घोषणा करते हैं कि वेदों में सारा विज्ञान है, उनको ख्याल रखना चाहिए: वेदों में पृथ्वी को कहा है..'अचला', जो चलती नहीं, हिलती नहीं, डुलती नहीं। क्या खाक विज्ञान रहा होगा! अभी पृथ्वी के अचला होने की धारणा है। अभी यह भी पता नहीं चला है कि पृथ्वी चलती है, प्रतिपल चलती है। दोहरी गति है उसकी। अपनी कील पर घूमती है..पहली गति; और दूसरा..सूर्य के चारों तरफ परिभ्रमण करती है। मगर हम पृथ्वी पर हैं, इसलिए पृथ्वी की गति का पता कैसे चले? हम उसके अंग हैं। हम भी उसके साथ घूम रहे हैं। और भी शेष सब उसके साथ घूम रहा है। तो पता नहीं चलेगा।

जैसे समझो यहां बैठे-बैठे अचानक कोई चमत्कार हो जाए और हम सब छह इंच के हो जाएं, और हमारे साथ वृक्ष भी उसी अनुपात में छोटे हो जाएं, मकान भी उसी अनुपात में छोटा हो जाए, तो किसी को पता ही नहीं चलेगा कि हम छोटे हो गए हैं। क्योंकि पुराना अनुपात कायम रहेगा। तुम्हारे सिर से छप्पर की दूरी उतनी ही रहेगी जितनी पहले थी। तुम्हारा बेटा तुमसे उतना ही छोटा रहेगा जितना पहले था। वृक्ष तुमसे उतने ही ऊंचे रहेंगे जितने पहले थे। अगर सारी चीजें एक साथ छोटी हो जाएं, समान अनुपात में, तो किसी को कभी कानों-कान पता नहीं चलेगा। तुम जिस फुट और इंच से नापते हो, वह भी छोटा जो जाएगा न! वह भी बताएगा कि तुम छः फीट के ही हो, जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी हो।

इसलिए चारों तरफ मोती बरस रहे हैं, मगर हमें पता नहीं चल रहा। मोती ही मोती बरस रहे हैं! गुलाल ठीक कहते हैं: 'झरत दसहुं दिस मोती!' दसों दिशाओं से झर रहे हैं। अनंत झर रहे हैं। प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है और अमृत बरस रहा है। भर लो अपने घट! मगर तुम्हें पता ही नहीं कि अमृत बरस रहा है। तुम तो कंकड़-पत्थर बीन रहे हो। तुम्हें मोतियों का पता कैसे चले, तुम्हारी आंखें तो कंकड़ों-पत्थर पर अटकी हैं। कंकड़ों-पत्थरों से तुम थोड़े छूटो; आंखों को थोड़ा संवारो, निखारो, कानों को थोड़ा शांत करो; मन को थोड़ा निर्विचार करो; तो शायद वह संगीत सुनाई पड़े जो परमात्मा का संगीत है। जिसे संतों ने अनाहत नाद कहा है। तो शायद तुम्हें वह प्रकाश दिखाई पड़े जो अंधेरे में भी छिपा है, जो अंधेरे में भी मौजूद है, क्योंकि अंधेरा भी उसका ही एक रूप है। तो तुम्हें देह में भी उसकी प्रतीति होने लगे जो अदेही है लेकिन देह में ठहरा हुआ है। तब तुम्हें चारों ओर उसकी

आभा का मंडल अनुभव हो। तभी तुम इन सूत्रों को समझ पाओगे। तभी तुम्हारे भी प्राण कह सकेंगे: 'झरत दसहुं दिस मोती'! और तब कितना आह्लाद, कितना हर्षोन्माद! तब आनंद में रोता है भक्त। तब आनंद में हंसता है, नाचता है। तब आनंद का कोई पारावार नहीं है। और उस पारावार से मुक्त जो आनंद है, उसी का नाम परमात्मा है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। पुनः-पुनः स्मरण रखना! परमात्मा केवल आनंद की अनुभूति का नाम है। अमृत का साक्षात्कार है। चैतन्य की प्रतीति है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा केवल शक्ति है, ऊर्जा है। और ऊर्जा का ही तो सारा खेल है। कहीं वही शक्ति हरी होकर वृक्ष हो गई है, लाल होकर फूल हो गई है, कहीं वही शक्ति सूरज बनी है, कहीं वही शक्ति तारे; वही शक्ति तुम्हारे भीतर सुन रही है अभी, वही शक्ति मेरे भीतर बोल रही है अभी। नहीं उससे कुछ भिन्न है! हम सब उसमें एक हैं, अभिन्न हैं।

गुलाल के संबंध में बहुत ज्यादा पता नहीं है। जरूरत भी नहीं है। वचन ही काफी हैं। वे ही प्रमाण हैं। कहां जन्में, किस घर में बड़े हुए..लेना-देना क्या है? सब घर घर ही हैं। किस गर्भ से पैदा हुए, किस परिवार में पैदा हुए, मां-पिता का क्या नाम था..क्या करोगे जानकर भी? जाना भी तो क्या अर्थ है? नाम-पते इस दुनिया में चलते हैं। झूठी दुनिया में झूठे नाम-पते चलते हैं। उस दुनिया में तो कोई न नाम है, न कुछ पता है; न कोई जाति है; न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है।

इसीलिए संतों के संबंध में व्यर्थ की बातों को हमने संग्रहीत नहीं किया है। इसीलिए संतों के संबंध में हमारी जानकारी न के बराबर है। और यह बड़ी सूचक बात है। सिकंदर के संबंध में बहुत कुछ पता है, और चंगीज खान के संबंध में भी, और नादिरशाह, और एडोल्फ हिटलर, और माओत्से-तुंग, इन सबके संबंध में बहुत कुछ पता है, बहुत कुछ पता रहेगा। इन्हीं से इतिहास बनता है।

गुलाल का नाम तो तुम इतिहास में खोजने जाओगे तो मिलेगा ही नहीं। किसी पाद-टिप्पणी में भी नहीं मिलेगा। जैसे हुए, न हुए! और उसका कारण है। जब अहंकार न रह जाए, तो हुए न हुए बराबर ही है। गुलाल कभी हुए ही नहीं, ऐसा समझो। अगर गुलाल कुछ थे भी तो बस बांस की पोंगरी थे। परमात्मा ने उसमें से कुछ गीत गाए, वे गीत हमारे पास हैं। बस वे गीत काफी हैं। उन गीतों से खबर मिलती है कि बांसुरी भी रही होगी। अब बांसुरी किस बांस से बनी थी, किस रंग का बांस था, किसी ढंग का था, कहां बांस पैदा हुआ था..इस तरह की निष्प्रयोजन बातों में जाने की कोई जरूरत नहीं है।

ऐसी बातों में जाने वाले लोग भी हैं। वे विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य करते रहते हैं। वे इन्हीं व्यर्थ की बातों में लगे रहते हैं..कौन कहां जन्मा, किस तिथि में जन्मा, किस घर में जन्मा? वे व्यर्थ की बातों में इतना उपद्रव मचाए रखते हैं और इतना विवाद चलाते हैं व्यर्थ की बातों का कि जिसका हिसाब नहीं। विश्वविद्यालयों में थप्पियां लगती जाती हैं उनके शोध-कार्यो की। उनके शोध-कार्य को कोई दूसरा पढ़ता भी नहीं, दूसरे शोध-कार्य करने वाले ही पढ़ते हैं, बस। और वे विवाद में व्यस्त हैं। और उन्हें किसी को पता नहीं और किसी को प्रयोजन नहीं कि बांसुरी से जो गीत बहे, उन गीतों को हम समझें, बांसुरी का क्या लेना-देना? बांसुरी कहां आती है? बांसुरी की खूबी यही है कि वह खाली है, रिक्त है, शून्य है। गीत को रोकती नहीं, बस यही उसकी खूबी है। गीत को बह जाने देती है, यही उसका गौरव है।

और गुलाल ने प्यारे गीत गाए! साफ है कि पढ़े-लिखे आदमी नहीं थे; शब्द ही कहते हैं। बेपढ़े-लिखे थे। और अक्सर ऐसा हुआ है, परमात्मा बेपढे-लिखों से ज्यादा आसानी से बोल सका है। क्योंकि पढ़े-लिखे बहुत अड़चन डालते हैं। पढ़े-लिखे अपने को पूरा-पूरा नहीं दे पाते। पढ़े-लिखे तो वह बोले तो उसमें भी बीच में सुधार कर देंगे। कहेंगे: ऐसा नहीं, ऐसा बोलो। यह वेद के अनुकूल है। यह उपनिषद के प्रतिकूल हो गया। यह कुरान से

मेल खाता है, यह मेल नहीं खाता है। यह मैं नहीं बोलूंगा। मैं तो वही बोलूंगा जो कुरान में लिखा है। मैं मुसलमान हूं।

पढ़े-लिखे के आग्रह होते हैं, पक्षपात होते हैं, धारणाएं होती हैं। पढ़े-लिखे का अर्थ यह होता है कि बांसुरी खाली नहीं है, उसमें शास्त्र भरे हुए हैं। और शास्त्रों को पार करके आना बड़ा मुश्किल है! लोहे की दीवालें भी इतनी बड़ी दीवालें नहीं, जितनी शास्त्रों की दीवालें बड़ी दीवालें हैं। ऐसे तो कागजी हैं, मगर यह मन कागजी दीवालों में बहुत उलझ जाता है। यह मन कागजी दीवालों को बहुत मानता है।

गुलाल गैर पढ़े-लिखे आदमी हैं। उनके शब्दों से ही साफ हो जाएगा। इसके पहले कि हम उनके शब्दों में उतरें, उनके सीधे-सादे शब्दों में डुबकी मारें, उनके सीधे-सादे शब्दों का स्वाद लें, एक घटना जो अभूतपूर्व है, जो मनुष्यजाति के पूरे इतिहास में कभी नहीं घटी..गुलाल और गुलाल के गुरु के बीच घटी..उस घटना को पहले समझ लेना जरूरी है, क्योंकि उस घटना के बाद ही ये सारे सूत्र सरल हो सकेंगे। और घटना अभूतपूर्व है। न पहले कोई वैसा उल्लेख है, न बाद में वैसा कोई उल्लेख है। फिर दुबारा कभी घटेगी, इसकी आशा भी नहीं। और बड़ी अलौकिक है!

गुलाल शिष्य थे बुल्लाशाह के। यह तो कोई बात खास नहीं; बुल्लाशाह के बहुत शिष्य थे। और हजारों सद्गुरु हुए हैं और उनके लाखों शिष्य हुए हैं, इसमें कुछ अभूतपूर्व नहीं। अभूतपूर्व ऐसा है कि गुलाल एक छोटे-मोटे जमींदार थे और उनका एक चरवाहा था..बुलाकीराम। लेकिन बुलाकीराम बड़ा मस्त आदमी था, उसकी चाल ही कुछ और थी! उसकी आंखों में खुमार था। उसके उठने-बैठने में एक मस्ती थी। कहीं रखता था पैर, कहीं पड़ते थे। और सदा मगन रहता था। कुछ था नहीं उसके पास मगन होने को..चरवाहा था, बस दो जून रोटी मिल जाती थी, उतना ही काफी था। सुबह से निकल जाता खेत में काम करने, जो भी काम हो, रात थका-मांदा लौटता; लेकिन कभी किसी ने उसे अपने आनंद को खोते नहीं देखा। एक आनंद की आभा उसे घेरे रहती थी। उसके बाबत खबरें आती थीं..गुलाल के पास, मालिक के पास..कि यह चरवाहा कुछ ज्यादा काम करता नहीं, क्योंकि हमने इसे खेत में नाचते देखा, काम यह क्या खाक करेगा! तुम भेजते हो गाएं चराने, गाएं एक तरफ चरती रहती हैं, यह झाड़ पर बैठ कर बांसुरी बजाता है। हां, बांसुरी गजब की बजाता है, यह सच है, मगर बांसुरी बजाने से और गाय चराने से क्या लेना-देना है? तुम तो भेजते हो कि खेत पर यह काम करे और हमने इसे खेत में काम करते तो कभी नहीं देखा, झाड़ के नीचे आंख बंद करके बैठे जरूर देखा है। यह भी सच है कि जब यह झाड़ के नीचे आंख बंद करके बैठता है तो इसके पास से गुजर जाने में ंभी सुख की लहर छू जाती है; मगर उससे खेत पर काम करने का क्या संबंध है!

बहुत शिकायतें आने लगीं। और गुलाल मालिक थे। मालिक का दंभ और अहंकार। तो कभी उन्होंने बुलाकीराम को गौर से तो देखा नहीं। फुर्सत भी न थी; और भी नौकर होंगे, और भी चाकर होंगे। और नौकर-चाकरों को कोई गौर से देखता है! नौकर-चाकरों को कोई आदमी भी मानता है! तुम अपने कमरे में बैठे हो, अखबार पढ़ रहे हो, नौकर आकर गुजर जाता है, तुम ध्यान भी देते हो? नौकर से तुमने कभी नमस्कार भी की है? नौकर की गिनती तुम आदमी में थोड़े ही करते हो। नौकर से तुमने कहा है आओ बैठो, कि दो क्षण बात करें? यह तो तुम्हारे अहंकार के बिल्कुल विपरीत होगा।

खबरें आती थीं, मगर गुलाल ने कभी ध्यान दिया नहीं था। उस दिन खबर आई सुबह ही सुबह कि तुमने भेजा है नौकर को कि खेत में बुआई शुरू करे, समय बीता जाता है बुआई का, मगर बैल हल को लिए एक तरफ खड़े हैं और बुलाकीराम झाड़ के नीचे आंख बंद किए डोल रहा है।

एक सीमा होती है! मालिक सुनते-सुनते थक गया था। कहा: मैं आज जाता हूं और देखता हूं। जाकर देखा तो बात सच थी। बैल हल को लिए खड़े थे एक किनारे..कोई हांकने वाला ही नहीं था..और बुलाकीराम वृक्ष के नीचे आंख बंद किए डोल रहे थे। मालिक को क्रोध आया। देखा..यह हरामखोर, काहिल, आलसी...! लोग ठीक कहते हैं। उसके पीछे पहुंचे और जाकर जोर से एक लात उसे मार दी। बुलाकीराम लात खाकर गिर पड़ा। आंखें खोलीं। प्रेम के और आनंद के अश्रु बह रहे थे। बोला अपने मालिक से: मेरे मालिक! किन शब्दों में धन्यवाद दूं? कैसे आभार करूं? क्योंकि जब आपने लात मारी तब मैं ध्यान कर रहा था। जरा-सी बाधा रह गई थी मेरे ध्यान में। आपकी लात ने वह बाधा मिटा दी। जरा-सी बाधा, जिससे मैं नहीं छूट पा रहा था। जब भी ध्यान में मैं मस्त हो जाता हूं तो यही बाधा मुझे घेर लेती है, यही मेरी आखिरी अड़चन थी। गजब कर दिया मालिक आपने भी! मेरी बाधा यह है कि जब भी मैं मस्त हो जाता हूं ध्यान में, तो गरीब आदमी हूं, साधु-संतों को भोजन करवाने के लिए निमंत्रण करना चाहता हूं, लेकिन है ही नहीं भोजन जो करवाऊं, तो बस ध्यान में जब मस्त होता हूं तो मानसी-भंडारा करता हूं। मन ही मन मैं सारे साधु-संतों को बुला लाता हूं कि आ जाओ, सब आ जाओ, दूर-दूर देश से आ जाओ! और पंक्तियों पर पंक्तियां साधुओं की बैठी थीं और क्या-क्या भोजन बनाए थे, मालिक! परोस रहा था और मस्त हो रहा था! इतने साधु-संत आए थे! एक से एक महिमा वाले! और तभी आपने मार दी लात। बस दही परोसने को रह गया था; आपकी लात लगी, हाथ से हांडी छूट गई; हांडी फूट गई, दही बिखर गया। मगर गजब कर दिया मालिक, मैंने कभी सोचा भी न था कि आपको ऐसी कला आती है! हांडी क्या फूटी, मानसी-भंडारा विलुप्त हो गया, साधु-संत नदारद हो गए..कल्पना ही थी सब, कल्पना का ही जाल था..और अचानक मैं उस जाल से जग गया, बस साक्षी मात्र रह गया।

आंख से आंसू बह रहे हैं आनंद के और प्रेम के, शरीर रोमांचित है हर्षोन्माद से..एक प्रकाश झर रहा है। बुलाकीराम की यह दशा पहली बार गुलाल ने देखी। बुलाकीराम ही नहीं जागा साक्षी में, अपनी आंधी में गुलाल को भी उड़ा ले गया। आंख से जैसे एक पर्दा उठ गया। पहली दफा देखा कि यह कोई चरवाहा नहीं; मैं कहां-कहां, किन-किन दरवाजों पर सद्गुरुओं को खोजता फिरा और सद्गुरु मेरे घर मौजूद था! मेरी गायों को चरा रहा था, मेरे खेतों को सम्हाल रहा था! गिर पड़े पैरों में। बुलाकीराम, बुलाकीराम न रहे..बुल्लाशाह हो गए। पहली दफा गुलाल ने उन्हें संबोधित किया: 'बुल्ला साहिब! ' 'मेरे मालिक, मेरे प्रभु!' साहब का अर्थः प्रभु। कहां थे नौकर, कहां हो गए शाह! शाहों के शाह!

कहते हैं बहुत फकीर हुए हैं, लेकिन बुल्लाशाह का कोई मुकाबला नहीं। और यह घटना बड़ी अनूठी है। अनूठी इसलिए है कि युगपत घटी। सदगुरु और शिष्य का जन्म एक साथ हुआ। सदगुरु का जन्म भी उसी वक्त हुआ, उसी सुबह; क्योंकि वह जो आखिरी अड़चन थी, वह मिटी। इसलिए भी अद्भुभुत है कि वह आखिरी अड़चन शिष्य के द्वारा मिटी। हालांकि गुलाल ने कुछ जान कर नहीं मिटाई थी, आकस्मिक था, मगर निमित्त तो बने! शिष्य ने सदगुरु की आखिरी अड़चन मिटाई। इधर गुरु का जन्म हुआ, इधर गुरु का आविर्भाव हुआ, उधर शिष्य के जीवन में क्रांति हो गई। बुल्लाशाह को कंधे पर लेकर लौटे गुलाल। वह जो लात मारी थी न, जीवन भर पश्चात्ताप किया, जीवन भर पैर दबाते रहे।

बुल्लाशाह कहते: मेरे पैर दुखते नहीं, क्यों दबाते हो? वे कहते: वह जो लात मारी थी...! तीस-चालीस साल बुल्लाशाह जिंदा रहे, गुलाल पैर दबाते रहे। एक क्षण को साथ नहीं छोड़ा। आखिरी क्षण में भी बुल्लाशाह के मरते वक्त गुलाल पैर दबा रहे थे। बुल्लाशाह ने कहा: अब तो बंद कर रे, पागल! पर गुलाल ने कहा कि कैसे बंद करूं? वह जो लात मारी थी!

गुरु को लात मारी! बुल्लाशाह लाख समझाते कि तेरी लात से ही तो मैं जागा, मैं अनुगृहीत हूं, तू नाहक पश्चात्ताप मत कर। लेकिन गुलान कहते: वह आपकी तरफ होगी बात। मेरी तरफ तो पश्चात्ताप जारी रहेगा।

लेकिन एक साथ ऐसी घटना पहले कभी नहीं घटी थी कि सद्गुरु हुआ और शिष्य जन्मा..एक साथ, युगपत! एक क्षण में यह घटना घटी। यह आग दोनों तरफ एक साथ लगी और दोनों को जोड़ गई।

इस घटना से तुम्हें समझ में आएगा झेन फकीरों का व्यवहार। यह तो अचानक हुआ! गुलाल ने जानकर लात मारी नहीं थी कि ध्यान में सहयोग देना है। लेकिन झेन फकीर जानकर यह करते हैं। शिष्य ध्यान में बैठा है और हो सकता है झेन गुरु उसके सिर पर चोट मार दे। कभी-कभी बड़े अद्भुभुत परिणाम हो जाते हैं। क्योंकि कभी-कभी जरा सा झटका और तुम अपने कल्पना-जाल से छिटक जाते हो..एक क्षण को छिटक जाते हो, जरा सी दूरी पैदा हो जाती है तुम्हारे मन में और तुम में..बस उतनी ही दूरी और कपाट खुल जाते हैं! झरोखा खुल जाता है। फिर बंद नहीं होता। एक दफा खुल गया, फिर बंद नहीं होता। लेकिन हर किसी को मारने से यह नहीं हो जाएगा। यह तो उन्हीं के काम आ सकता है, जो बिल्कुल किनारे पर खड़े हों। बुलाकीराम बिल्कुल किनारे पर था, सरहद पर खड़ा था। जरा-सा धक्का और सरहद पार कर गया।

तो सद्गुरु तभी शिष्य को मारेगा, जब देखेगा सरहद पर खड़ा है; सरहद पर अटका है, सीमा नहीं छोड़ पा रहा है। पुरानी आदत, पुराना परिचय सीमा से बाहर नहीं जाने दे रहा है।

हम सबने लक्ष्मण-रेखाएं खींच रखी हैं अपने आस-पास; हम उनके बाहर नहीं जाते हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है..ये सब लक्ष्मण-रेखाएं हैं। कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई शूद्र है..ये सब लक्ष्मण-रेखाएं हैं। ये सारी लक्ष्मण-रेखाएं तोड़ देनी होंगी। इन सबके बाहर जाना होगा। और सबसे बड़ी लक्ष्मण-रेखा है भीतर तुम्हारे; वह विचारों का जाल है, जो तुम्हें हमेशा घेरे रहता है। विचारों की वह जो प्रक्रिया सतत् चलती रहती है, उससे छूटना जरूरी है।

भारत के संतों में झेन फकीरों का अदभुत व्यवहार समझाने वाली और कोई घटना नहीं है, सिवाय गुलाल और बुल्लाशाह के बीच जो घटना घटी, उसके। और यह तो आकस्मिक घटी। लेकिन झेन सदगुरु देखता रहता है शिष्य को, जांचता रहता है शिष्य को..कब क्या जरूरत हो? कब चोट की जरूरत है, तो चोट करेगा। और चोट कभी-कभी काम कर जाती है। अगर ठीक समय पर पड़े, तो अचूक काम कर जाती है।

यह तो आकस्मिक संयोग था। बुल्लाशाह उस मस्ती में था, बस किनारे पर रहा होगा, पड़ी लात, फूट गई मटकी, खो गया मानसी-भंडारा, साधु-संत नदारद हो गए..वे थे नहीं कहीं वैसे भी; कल्पना ही थी, मन की ही कल्पना थी..और एक क्षण को अ-मनी दशा हो गई। बस उस अ-मनी दशा में ही परमात्मा का साक्षात्कार है।

जब तक मन है तब तक परमात्मा नहीं; जब मन नहीं है तब परमात्मा ही है, और कुछ नहीं..सिर्प परमात्मा ही है!

राम मोर पुंजिया मोर धना, निसबासर लागल रहु रे मना।।

गुलाल कहते हैं कि मैंने तो एक ही पूंजी देखी दुनिया में..और वह राम। एक ही धन देखा दुनिया में और वह राम क्यों? क्योंकि धनियों को निर्धन देखा। सच तो यह है कि धनी से ज्यादा निर्धनता का बोध किसी को भी नहीं होता। गरीब को गरीबी इतनी नहीं सालती, इतनी नहीं अखरती, जितनी अमीर को अखरती है। गरीब के पास तुलना का उपाय नहीं होता। उसने अमीरी जानी नहीं; बाहर की भी अमीरी नहीं जानी तो बाहर का तो कोई मापदंड उसके पास नहीं है, भीतर की भी नहीं जानी। गरीबी ही जीवन है। वह गरीबी से अयस्त हो गया है। उसके पास गरीबी के विपरीत कोई अनुभव नहीं है, जिसकी पृष्ठभूमि में वह समझ पाए कि मैं कितना गरीब हूं। अमीर के पास बाहर धन इकट्ठा होता जाता है; जैसे-जैसे बाहर धन के ढेर लगते हैं, वैसे-वैसे भीतर

गरीबी के ग167े साफ दिखाई पड़ने लगते हैं। जहां पहाड़ खड़े होते हैं, वहां खाइयां हो जाती हैं। बाहर पहाड़ खड़े होने लगते हैं धन के और भीतर निर्धनता की खाई साफ होने लगती है। जितना बाहर धन हो उतना ही भीतर अखरता है निर्धन होना। और बाहर का धन भीतर तो ले जाया नहीं जा सकता। उसे भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। कोई मार्ग ही नहीं है! जो बाहर है वह बाहर और जो भीतर है वह भीतर। तुम हीरे-जवाहरातों को भीतर न ले जा सकोगे। भीतर तो केवल चैतन्य के हीरे-जवाहरात जा सकते हैं। झरत दसहुं दिस मोती! जब तुम्हें भीतर मोतियों की वर्षा होने लगे, तभी तुम भीतर से धनी हो सकोगे; नहीं तो बहुत अखरेगी भीतर की अवस्था।

इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती है: जितना ही कोई व्यक्ति समृद्ध होता चला जाता है, उतनी ही उसके भीतर इस बात की स्पष्ट प्रतीति होने लगती है कि बाहर तो धन है, अब भीतर धन कैसे हो?

मैं जरूर कह रहा हूं: कोई गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता! गरीब व्यक्ति तो धार्मिक हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति की इतनी बुद्धिमत्ता हो सकती है कि वह गरीब रहते भी धन की व्यर्थता को समझ ले। इतनी प्रगाढ़ उसकी तेजस्विता हो सकती है, इतनी मेधा हो सकती है। नहीं तो कबीर, दादू, नानक, फरीद, बुल्ला..ये कैसे धार्मिक होते? गरीब आदमी तो धार्मिक हो सकता है लेकिन गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। अमीर व्यक्ति तो अधार्मिक हो सकता है, क्योंकि हो बिल्कुल जड़बुद्धि, लेकिन अमीर समाज बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता, उसे धार्मिक होना ही पड़ेगा। अन्ततोगत्वा उसे खोजना ही पड़ेगा कि असली धन कहां है। नकली धन तो हमारे पास है, पहचान लिया, इससे कुछ सार नहीं पाया।

गुलाल कहते हैं: 'राम मोर पुंजिया!'...राम मेरी पूंजी हैं। ...'राम मोर धना'! श्ठऔर राम मेरा धन हैं। ...'निसबासर लागल रहु रे मना।' कहते हैं: अब तो बस एक ही आकांक्षा है कि यह मेरा मन दिन-रात उसी परम धन में लगा रहे।

आठ पहर तहं सुरति निहारी, ...

अब एक क्षण को भी उस झरोखे को बंद नहीं करना चाहता। अब एक क्षण को भी नहीं चाहता कि उससे टूट जाऊं, कि उसकी तरफ पीठ हो जाए। वही आनंद है। वही मेरा उत्सव है। वही मेरा जीवन है। वही मेरा सर्वस्व है।

आठ पहर तहं सुरति निहारी...

मैं तो उसकी तरफ ही देखते रहना चाहता हूं। आठों पहर आंखें टकटकी लगा कर उसी को देखती रहें। उसके सौंदर्य से क्षण भर वंचित नहीं होना चाहता।

...जस बालक पालै महतारी।

सीधे-सादे आदमी हैं। सीधे-सादे उनके प्रतीक हैं। सीधे-सादे उदाहरण हैं। मगर अर्थपूर्ण। ताजगी से भरे। '...जस बालक पालै महतारी। ' मां बच्चे को पालती है। ऐसे ही साधक को ध्यान पालना पड़ता है..मां की तरह। मां हजार काम करती रहे, ध्यान उसका बच्चे पर लगा रहता है। वह चैके में काम करती हो, बच्चा बाहर आंगन में खेलता हो, लेकिन जरा-सी आवाज और वह भागकर आंगन में आ जाएगी। हजार काम में उलझी हो, लेकिन बच्चे का स्मरण नहीं भूलता। रात आकाश में बादल गरजते रहें, बिजली कड़कती रहे, उसकी नींद नहीं टूटती; लेकिन बच्चा जरा कुनमुनाए और उसकी नींद टूट जाती है। जैसे मां अपने बच्चे की चिंता करती है..प्रतिपल, उठते-बैठते, सोते-जागते, सदा उसे स्मरण बना रहता है..कहीं बच्चा गिर न जाए, कहीं भटक न जाए, कहीं चोट न खा जाए, कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाए, वैसे ही व्यक्ति को अपनी सुरति, अपना ध्यान सम्हालना होता है। चैबीस घंटे। जागते तो

आठ पहर तहं सुरति निहारी, जस बालक पालै महतारी।।

धन सुत लछमी रह्यो लोभाय, गर्भमूल सब चल्यो गंवाय।।

बड़ा प्यारा वचन है! गुलाल कहते हैं कि तू धन में उलझा है, बच्चों में उलझा है, लक्ष्मी में उलझा है, लोभ में पड़ा है। ...इस देश को हम धार्मिक देश कहते हैं। लेकिन यह अकेला देश है दुनिया में जहां लक्ष्मी की पूजा होती है। दीवाली इस देश का सबसे बड़ा त्यौहार। और दीवाली का केंद्र क्या है? ..लक्ष्मीपूजन! और लक्ष्मी की पूजा लोग नगद रुपए रखकर करते हैं। रुपयों की पूजा और धार्मिक देश! पुण्य-भूमि! और सब साधु-संत यहीं हुए!

जागते, सोते-सोते भी!

–ओशो

झरत दसहुं दिस मोती